रामचरितमानस एवं अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में लोकतत्व - एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

RAMACHARITMANAS EVAM ADHYATMA RAMAYANAM KILIPPATTU MEIN LOKATATVA - EK VISHLESHANATMAK ADHYAYAN

Thesis
Submitted to

COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY

For the Degree of

DOCTOR OF PHILOSOPHY

By

बिन्दु ए.के.

BINDHU. A.K.

Dr. A. ARAVINDAKSHAN
Professor & Head of the Department

Rtd. Prof (Dr.) L. SUNEETHA BAI
Supervising Teacher

DEPARTMENT OF HINDI
COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY
COCHIN - 682 022

2005

CERTIFICATE

This is to certify that the thesis entitled **"RAMACHARITMANAS EVAM ADHYATMA RAMAYANAM KILIPPATTU MEIN LOKA TATVA - EK VISHLESHANATMAK ADHYAYAN"** is a bona fide record of work carried out by **Smt. Bindhu. A.K.** under my supervision for the award of the degree of **Doctor of Philosophy** and that no part of this has hitherto been submitted for a degree in any other university.

DEPARTMENT OF HINDI
Cochin University of Science-
and Technology
Kochi-682 022

Rtd. Prof. (Dr.) L. Suneetha Bai
Supervising Teacher

Place Kochi
Date 23-05-2005

DECLARATION

I here by declare that, the thesis entitled **"RAMACHARITMANAS EVAM ADHYATMA RAMAYANAM KILIPPATTU MEIN LOKA TATVA - EK VISHLESHANATMAK ADHYAYAN"** has not previously formed the basis of the award of any degree, diploma, associateship, fellowship or other similar title or recognition.

BK

Bindhu. A.K.

DEPARTMENT OF HINDI
Cochin University of Science and Technology
Kochi-682 022

Place Kochi
Date 23-05-2005

प्राक्कथन

साहित्य मानव जीवन एवं समाज का सही हस्ताक्षर है। मानव-मूल्यों के प्रतिष्ठापन, संरक्षण एवं संवर्धन केलिए सर्वोत्तम साधन साहित्य है। लोकजीवन के स्पन्दन को पहचानकर रचना के माध्यम से उसे प्रस्फुटित करना हर एक साहित्यकार का दायित्व है। किसी भी स्थान-विशेष, भौगोलिक सीमाओं, रूढ़ियों, रीति-रिवाज़ों, संस्कारों, सांस्कृतिक उपलब्धियों और जीवन के अनुकूल-प्रतिकूल प्रभावों को ग्रहण करनेवाली सामान्य जनता ही 'लोक' है। इस लोक की अभिव्यक्ति में जो तत्व मिलते हैं, वे लोकतत्व कहलाते हैं। लोकमन को स्पर्श करनेवाली रामकथा से संबन्धित साहित्य प्राचीनकाल से लेकर आज तक निर्मित होता आया है। इसी रामकथा को लेकर किसी प्राचीन कवि की उक्ति है 'विश्रामस्थानं' कविवरवचसां।' भारतीय संस्कृति का मूल तत्व इस साहित्य में उपलब्ध है। सांस्कृतिक एकता ही साहित्य का प्रमुख लक्ष्य है। रामकथा में लोकमानव की अथाह गहराइयों में निष्पन्न बहुमूल्य भावरत्नों की जगमगाती ज्योति निहित है। लोकजीवन में रामकथा घुल मिल गई है। रामकथा का आधार लेकर साहित्यिक जगत् में अनेक साहित्यकार उत्पन्न हुए हैं। गोस्वामी तुलसीदास और तुंचत्तु रामानुजन एषुत्तच्छन क्रमशः हिन्दी और मलयालम साहित्य जगत् में कालजयी कवि बन गये हैं। इनकी कृतियों में तत्कालीन लोकमानस के संस्कार ही अभिव्यक्त हुए हैं। साथ ही लोकचेतना के अनेक स्तर, काव्यवस्तु से लेकर भाषा तक और अनुभूति से लेकर काव्यरूप तक खुलते हुए प्रतीत होते हैं।

भारतीय साहित्य में तुलसीदास और एषुत्तच्छन का महत्वपूर्ण स्थान है। लोकजीवन में उसकी महती प्रतिष्ठा रही है। वे अमूल्य प्रतिभा संपन्न कवि थे। अनेक लोकतत्वों से युक्त उनका रामचरितमानस और अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु लोकजीवन

के अंतस्थल में प्रवेश कर गये हैं। श्रेष्ठ साहित्य सभी युगों केलिए अत्यंत महत्वपूर्ण और उपादेय होता है। उसका जीवन सन्देश कभी पुराना नहीं पडता। उसमें भाव और विचार सदा प्रेरक ही बने रहते हैं। रामचरितमानस एवं अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु के संदर्भ में यह युक्तिसंगत ही है। अतीत, वर्तमान और भविष्य के संकेत इनमें प्राप्त होते हैं। 'भूतं भव्यं भविष्यं च सर्वं वेदात्प्रसिध्यति' - यही तो प्रमाण है। तुलसी तथा एषुत्तच्छन के संबन्ध में भी यह चरितार्थ होती है। मानस तथा अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में लोकजीवन से संबन्धित जो सत्य चित्रित है वह आज भी प्रासंगिक रहा है। आज सारा संसार दुःख एवं अशांति की भीषण ज्वाला में भस्म होता चल रहा है। ऐसी अवस्था में ये ग्रन्थ जनता को सही रास्ता दिखाकर उनका मार्गदर्शन करते हैं। लोकजनता के हर्ष और विषादपूर्ण क्षणों का स्वाभाविक निरूपण इन ग्रन्थों में हुआ है। ये ग्रन्थ वास्तव में अक्षयविभूति हैं जो मानव-कल्याण में सदा निरत हैं।

मैंने प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध केलिए जो विषय चुना है, वह है 'रामचरितमानस एवं अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में लोकतत्व : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन।' प्राचीनकाव्य के प्रति विशेषतः रामकथा के प्रति मेरी रुचि प्रारंभ से ही रही है। इसी कारण मैंने एम.फिल में अपने लघु शोध-प्रबन्ध का विषय 'रामचरितमानस एवं अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में लोकतत्व अयोध्याकाण्ड के विशेष संदर्भ में' चुना था। लोकहित को लक्ष्य करके लिखे गये इन ग्रन्थों में लोकजीवन से संबन्धित तत्व किस प्रकार चित्रित हुए हैं, इसका विस्तृत अध्ययन ही मेरा लक्ष्य था। विभिन्न प्रदेशों में, भिन्न भाषाओं में रचे हुए इन ग्रंथों में भारतीय जीवन एवं संस्कृति का यथार्थ चित्र प्रस्तुत हुआ है। भारत के लोकजीवन का सही रूप इनमें चित्रित मिलता है। इन ग्रंथों की विषयवस्तु इस प्रकार गुंथी हुई है कि यह काव्य को एक अज्ञात दर्शन से, दर्शन को जीवन से और जीवन को लोक से निरंतर जोडती चली जाती है। यह वास्तव में इन दोनों ग्रंथों की खासियत है।

गोस्वामी तुलसीदास एवं रामचरितमानस और तुंचत्तु रामानुजन् एषुत्तच्छन एवं अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु पर कई शोध प्रबन्ध तथा आलोचनात्मक ग्रंथ प्रस्तुत किये

जा चुके हैं। इनसे संबन्धित तुलनात्मक शोध प्रबन्ध की श्रेणी में रामचन्द्र देव का 'तुलसी और तुंचन, एस भास्करन् नायर का 'तुंचत्तु रामानुजाचार्य एवं गोस्वामी तुलसीदास के रामकाव्य का तुलनात्मक अध्ययन', एम. जार्ज का 'तुलसीदास और मलयालम के रामभक्त कवि एषुत्तच्छन का तुलनात्मक अध्ययन' आदि प्रमुख हैं। लोकतत्व से संबन्धित हिन्दी के आलोचनात्मक ग्रंथों में रवीन्द्र भ्रमर का 'हिन्दी भक्ति साहित्य में लोकतत्व, डॉ. गयासिंह का 'तुलसी काव्य की लोकतात्विक संरचना, डॉ. सत्येन्द्र का मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का लोकतात्विक अध्ययन आदि ग्रंथ उल्लेखनीय हैं। लेकिन तुलसीदास के रामचरितमानस एवं एषुत्तच्छन के अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु के संदर्भ में लोकतत्व का अध्ययन इस दिशा में एक नया प्रयत्न है। आशा है हिन्दी और मलयालम से संबन्धित तुलनात्मक शोध की शृंखला में यह एक नयी कडी जोड देगा।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध पाँच अध्यायों में विभक्त है। पहला अध्याय है 'रामकथा एवं लोकतत्व'। इसके अतर्गत 'लोक' शब्द का सामान्य परिचय, उसकी उत्पत्ति, परिभाषा एवं लोकतत्व का जिक्र करते हुए रामकथा की उत्पत्ति का परिचय दिया गया है। साथ ही हिन्दी तथा मलयालम के लोकगीतों तथा लोकनाट्यों में रामकथा का वर्णन करके लोकजीवन में राम का स्थान निर्धारित किया गया है। रामचरितमानस तथा अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में रामकथा का भी विवेचन किया है।

दूसरा अध्याय है 'रामचरितमानस एवं अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु सामान्य परिचय' इस अध्याय में तुलसी और एषुत्तच्छन के जन्म, लोकविश्वास एवं लोकजीवन का परिचय कराकर रामचरितमानस एवं अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में लोकसमाज और लोकतत्वों का विवेचन करके लोकमंगल की दृष्टि से दोनों ग्रंथों के महत्व पर भी प्रकाश डाला गया है।

तीसरा अध्याय है 'रामचरितमानस एवं अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में लोकसमाज।' यह साहित्य एवं लोकसमाज के संबन्ध को दिखाते हुए रामचरितमानस एवं

अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में चित्रित लोकसमाज के विभिन्न पहलुओं का चित्र हमारे सामने प्रस्तुत करता है। समाज में रहनेवाले तरह-तरह के व्यक्तियों, उनकी रहन-सहन, वेश-भूषा, पारिवारिक संबन्ध आदि का विश्लेषण करके लोकजीवन में प्रकृति तथा लोकसमाज में नारी का चित्र भी प्रस्तुत किया है।

'रामचरितमानस एवं अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में लोकसंस्कृति एवं लोकधर्म' नाम के चौथे अध्याय में लोकसंस्कृति के सामान्य स्वरूप एवं विशेष रूप से मानस एवं अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में चित्रित लोकसंस्कृति का विवरण दिया गया है। सामान्य लोगों के बीच दिखाई पडनेवाली धार्मिक एवं मनोवैज्ञानिक गतिविधियों का मानस एवं अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु के आधार पर विश्लेषण इस अध्याय की विशेषता रही है।

पाँचवाँ अध्याय है - 'रामचरितमानस एवं अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु की शिल्पविधि एवं लोकतत्व' इसके अंतर्गत शिल्प का सामान्य परिचय देकर मानस एवं अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में प्रयुक्त लोकभाषा, लोकशब्दों का प्रयोग, मुहावरे और लोकोक्तियाँ, अलंकार योजना, प्रतीक, बिंब, छंद आदि का चित्रण है।

अंत में उपसंहार के अन्तर्गत लोगमंगल की दृष्टि से रामचरितमानस एवं अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु के महत्व पर विचार किया गया है, और आज के जीवन में इन ग्रंथों के द्वारा दिये गये मार्गदर्शन की ओर संकेत किया गया है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का कार्य कोचिन विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के सेवानिवृत्त प्रोफेसर डॉ. एल. सुनीता बाई के विद्वत्तापूर्ण निर्देशन में संपन्न हुआ है। इस प्रयत्न के दौरान उनसे प्राप्त प्रेरणा, स्नेहपूर्ण प्रोत्साहन, सहज वात्सल्यपूर्ण व्यवहार, उदार दृष्टिकोण, बहुमूल्य सुझाव एवं आशीर्वाद केलिए मैं हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ।

हिन्दी विभाग के अध्यक्ष डॉ. ए. अरविन्दाक्षन एवं विषय विशेषज्ञ डॉ. के. वनजा के प्रति मैं आभार प्रकट करती हूँ जिनसे समय समय पर शोध कार्य केलिए मुझे प्रोत्साहन एवं सहयोग मिला है।

इस विभाग के अन्य गुरुजनों के प्रति भी मैं कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ जिनसे मुझे इस शोध प्रबन्ध के लेखन कार्य में सहायता एवं प्रोत्साहन मिला है।

विभाग के पुस्तकालय के अधिकारियों को भी मैं धन्यवाद देती हूँ जिन्होंने समय-समय पर पुस्तकें प्रदान करते हुए मेरा बडा उपकार किया है। साथ ही तुंचनपरंपु के पुस्तकालय तथा तृश्शूर के साहित्य अकादमी पुस्तकालय के प्रति भी मैं आभार व्यक्त करती हूँ, जिनसे सामग्री इकट्ठा करने केलिए मुझे सहायता मिली है।

मेरे प्रिय मित्रों और शुभ चिन्तकों के प्रति भी मैं आभार प्रकट करती हूँ। जिन्होंने प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में इस शोध कार्य में मेरी सहायता की है।

अंत में मेरे माता-पिता और पति के प्रति भी आभार प्रकट करती हूँ जिन्होंने हर कदम पर मेरा उत्साह बढाया और इस शोध प्रबन्ध की पूर्ति केलिए मेरी सहायता की।

बिन्दु. ए.के.

हिन्दी विभाग
कोचिन विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय
कोचिन-682 022

तारीख :23-05-2005

विषय-सूची

पृष्ठ संख्या

प्राक्कथन

पहला अध्याय 1 - 40

रामकथा एवं लोकतत्व

'लोक' सामान्य परिचय 'लोक' शब्द की उत्पत्ति 'लोक' शब्द की परिभाषा लोकतत्व - रामकथा की उत्पत्ति लोकगीतों में रामकथा लोकनाट्यों में रामकथा लोकजीवन में राम हिन्दी रामकाव्य में लोकतत्व रामचरितमानस में रामकथा केरल के लोकगीतों में रामकथा मलयालम लोकनाट्यों में रामकथा मलयालम रामकाव्य में लोकतत्व - अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में रामकथा निष्कर्ष।

दूसरा अध्याय 41 - 71

रामचरितमानस एवं अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु - सामान्य परिचय

तुलसी का जन्म एवं लोकविश्वास तुलसी एवं लोकजीवन रामचरितमानस और लोकसमाज - रामचरितमानस एवं लोकतत्व एषुत्तच्छन का जन्म एवं लोकविश्वास जन्मस्थान एवं महत्व एषुत्तच्छन एवं लोकजीवन - अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु एवं लोकसमाज अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु और लोकतत्व लोकमंगल की दृष्टि से रामचरितमानस एवं अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु का महत्व निष्कर्ष।

तीसरा अध्याय 72 - 148

रामचरितमानस एवं अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में लोकसमाज

साहित्य एवं लोकसमाज लोकसमाज की विशेषताएँ रामचरितमानस एवं अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में चित्रित लोकसमाज ग्राम्य समाज - रामचरितमानस में ग्राम्य समाज वन्य जातियों का समाज - लोकजीवन और प्रकृति - रामचरितमानस एवं अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में चित्रित प्रकृति मानस तथा अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में परिवार पिता-पुत्र-पुत्री संबन्ध माता-पुत्र पति और पत्नी भाई और भाई - भ्रातृस्नेह की साकार मूर्ति भरत सास और बहू देवर और भाभी मित्रता गुरू और शिष्य लोकमंगल की दृष्टि से मानस एवं अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में परिवार - खानपान- वेश-भूषा आभूषण लोकमनोरंजन - लोकवाद्य - लोकनृत्य - लोकसमाज में नारी पतिव्रता धर्म की साकार मूर्ति सीता सौतियाडाह से जलनेवाली नारी कैकेयी मध्यकालीन राजघरानों की कुटिल दासी मंथरा सेवा-धर्म का प्रतीक शबरी - कुल की महिमा को उजागर करनेवाली नारियाँ मन्दोदरी, तारा दुष्टता एवं दुराग्रह का प्रतिरूप शूर्पणखा निष्कर्ष।

चौथा अध्याय 149 - 228

रामचरितमानस एवं अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में लोकसंस्कृति एवं लोकधर्म

संस्कृति लोकसंस्कृति का स्वरूप हिन्दी और मलायालम भक्तिकाव्य में लोकसंस्कृति - रामचरितमानस एवं अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में लोकसंस्कृति का महत्व मानस एवं अध्यात्मरारमायणम् किळिप्पाट्टु में विविध संस्कृतियों का वर्णन वानर संस्कृति राक्षस संस्कृति - अन्य अवशिष्ट तत्व मानस एवं अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में संस्कार जन्म संस्कार जातकर्म नामकरण विद्याध्ययन विवाह अन्त्येष्टि लोकविश्वास रामचरितमानस एवं अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में लोकविश्वास स्वप्न विचार - शकुन - अपशकुन - कथानक रूढ़ियाँ - आकाशवाणी - फलादि के द्वारा पुत्र जन्म पत्थर का जीवित हो उठना रूप परिवर्तन - पशु-पक्षी द्वारा रक्षा या सहायता राक्षस द्वारा कन्याहरण जादू का युद्ध - लोकधर्म स्वरूप एवं महत्व

रामचरितमानस एवं अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में लोकधर्म - लोकाचार सत्य अहिंसा परोपकार रामचरितमानस एवं अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में भक्ति - धार्मिक संदर्भ - तीर्थो का महत्व व्रत एवं त्योहार निष्कर्ष।

पाँचवाँ अध्याय 229 - 301

रामचरितमानस एवं अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु की शिल्पविधि एवं लोकतत्व

शिल्पविधि सामान्य परिचय लोकभाषा सामान्य परिचय रामचरितमानस एवं अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में लोकभाषा - लोकशब्दों के प्रयोग मुहावरे और लोकोक्तियाँ अलंकार योजना अनुप्रास उपमा उत्प्रेक्षा रूपक प्रतीक योजना बिंब योजना छंद योजना रामचरितमानस में प्रयुक्त छंद दोहा चौपाई सोरठा अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में प्रयुक्त छंद केका काकळी कळकाञ्ची निष्कर्ष।

उपसंहार 302 - 312

परिशिष्ट : संदर्भ - ग्रन्थ-सूची 313 - 328

.....📖.....

पहला अध्याय

रामकथा एवं लोकतत्व

लोक : सामान्य परिचय

'लोक' शब्द की व्याख्या है 'लोकन्ते जनाः अस्मिन् इति लोकः' लेकिन लोक शब्द आजकल जनसमुदाय एवं उससे संबन्धित बातों का द्योतक रहा है, जिसमें हमारा भूत, वर्तमान, भविष्य, सभी संचित रहता है। जनसाधारण की संवेदना को आत्मसात् करना ही लोक से जुडना है। अंग्रेज़ी 'फोक' के पर्यायवाची शब्द के रूप में भी इसे माना गया है। सच्चे अर्थों में किसी भी स्थानविशेष भौगोलिक सीमाओं, रूढ़ियों, रीति-रिवाज़ों, लोक-संस्कारों, संस्कृतिक उपलब्धियों और जीवन के अनुकूल-प्रतिकूल प्रभावों को ग्रहण करनेवाली और उनका अनुपालन करनेवाली जनता ही लोक है। अपने परिवेश, परंपरा, परिस्थिति से प्रभावित रहकर उन्हें भी प्रभावित करनेवाले समाज का सर्वाधिक महत्वपूर्ण अंग 'लोक' शब्द में निहित है।

'लोक' हमारे जीवन का महासमुद्र है। यह परंपरा से संबद्ध रहता है। राष्ट्र एवं दुनिया का जीवन लोक के जीवन में निहित है। लोकसंग्रह, लोकमंगल आदि सामान्य लोक से संबन्धित हैं। 'लोकाः समस्ता सुखिनो भवन्तु', 'सर्वलोकहिताय' ये कथन भी लोक से संबन्धित हैं।

'लोक' शब्द की उत्पत्ति

'लोक' शब्द अत्यंत प्राचीन है। लेकिन आधुनिक युग में अध्ययन की व्यापकता या नई दिशाओं के कारण साहित्य के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण विशेषता के रूप में यह (लोक) प्रतिष्ठित हो गया है। स्थानविशेष, संसार, प्रदेश, जन या लोग, समाज, प्राणी जैसे 'लोक' शब्द के अनेक अर्थ हैं। स्थानविशेष की दृष्टि से देखें तो उपनिषदों में दो लोक माने गये हैं। इहलोक और परलोक। "भूलोक (पृथ्वीलोक) भुवर्लोक (अंतरिक्ष) और स्वर्लोक (द्युलोक) की कल्पना निरुक्त में देखी जा सकती है। इन तीनों को त्रिलोकी कहते हैं।"[1] पौराणिक काल में सात लोकों की कल्पना हुई "भूलोक, भूवर्लोक, स्वर्लोक, महलोक, जनलोक, तपलोक, और सत्यलोक या ब्रह्मलोक। फिर पीछे इनके सात-सात पाताल-अतल, नितल-वितल, गर्भस्तमान, तल, सुतल और पाताल मिलकर चौदह लोक किए गए।"[2]

'लोक' का दूसरा अर्थ 'जनसामान्य' है। इसी का हिन्दी रूप 'लोग' बन गया है। इसी लोक शब्द ने साहित्य में भी स्थान प्राप्त किया। 'सिद्धांत कौमुदि' के अनुसार "लोक शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत के 'लोकदर्शने' धातु से बनी है। इसमें 'घञ्' प्रत्यय लगने से ही लोक शब्द निष्पन्न हुआ है। इस धातु का अर्थ है देखना। इसका लट् लकार में अन्यपुरुष एकवचन का रूप 'लोकते' हैं। अतः 'लोक' शब्द का मूल अर्थ हुआ 'देखनेवाला'। यह समस्त जनसमुदाय जो इस कार्य को करता है 'लोक' कहलाएगा।"[3]

'भगवद्गीता में लोक तथा लोकसंग्रह शब्दों का प्रयोग कई स्थानों पर किया गया है। गीता में लोकसंग्रह का अर्थ साधारण जनता के उच्चारण तथा व्यवहार से किया

---

1. लोक और लोक का स्वर विद्यानिवास मिश्र पृ. 11
2. संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर सं रामचन्द्र वर्मा पृ. 577
3. हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास (भाग 16) राहुल सांकृत्याय पृ. 1

गया है। महाकवि तुलसीदास ने 'लोक' तथा 'वेद' के मूल्यों को प्रेम के आधार पर समान मानते हुए लिखा है

'लोकहुं बेद सुसाहिब रीति।
बिनय सुनत पहिचानत प्रीति।।"[1]

'हिन्दी साहित्य कोश' में 'लोक' का अर्थ साधारण जन और संसार हैं। 'पाणिनी ने अष्टाध्यायी' में 'लोक' तथा स्वर्लोक शब्द का उल्लेख किया है, जिसका अर्थ जनसामान्य से है।"[2]

आचार्य रामचन्द्रशुक्ल ने अपने निबन्ध संग्रह 'चिंतामणि' में 'लोकसामान्य, लोकसत्ता, लोक व्यवहार, लोकधर्म, लोकमंगल आदि शब्दों का प्रयोग स्थान-स्थान पर किया है।"[3] समाज तथा संस्कृति को ध्यान में रखकर उन्होंने इन शब्दों का प्रयोग किया है।

'लोक' शब्द की परिभाषा

सामान्य जन जीवन की कार्यविधियों का संवाहक बनकर 'लोक' शब्द आता है। 'लोक शब्द' की परिभाषाएँ अनेक विद्वानों ने की हैं। चन्द्रभान के अनुसार "लोक उस जनसमुदाय का नाम है, जो आधुनिक सभ्यता और शिक्षा की लहरों से पूर्णतः या अंशतः वंचित है और जिसने अपने में अनेक प्राचीन विश्वास, अनुष्ठान तथा कथा गाथाओं को सुरक्षित किया है। नगरों में असंस्कृत वर्ग रहता है। उस वर्ग की मान्यताओं को भी 'लोक' शब्द की व्याख्या में स्थान मिलना चाहिए।"[4] अर्थात् लोक के केन्द्र में लोकजनता है।

---

1. रामचरितमानस 1/27/3
2. हिन्दी साहित्यकोश डॉ. धीरेन्द्रवर्मा
3. चिंतामणि (पहला भाग) - रामचन्द्रशुक्ल पृ.113...167, 172)
4. रामचरितमानस में लोकार्ता चन्द्रभान पृ. 28

डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल का कथन है कि 'लोक, लोक की धात्री, सर्वभूतमाता, पृथ्वी और लोक का व्यक्त रूप मानव, यही हमारे नये जीवन का अध्यात्मशास्त्र है। इसका कल्याण हमारी मुक्ति का द्वार और निर्माण का नवीन रूप है। लोक-पृथ्वी-मानव, इसी त्रिलोकी में जीवन का कल्याणमय रूप है।"[1] यहाँ लोक को और व्यापक बना दिया है। यह लोक-दृष्टि वह आलोक है, जिसके प्रकाश में मानव अपने हितों को सुरक्षित और आनन्दमय बना सकता है।

डॉ. सत्येन्द्र के अनुसार कभी-कभी लोक जातिबोधक शब्द की भाँति प्रतिष्ठित हो गया है, जिसके अर्न्तगत पिछडी जातियों में प्रचलित अथवा अपेक्षाकृत समुन्नत जातियों के असंस्कृत समुदायों में अवशिष्ट विश्वासों, रीति-रिवाज़ों, कहानियों, गीतों तथा कहावतों को रखा गया है। प्रकृति के चेतन तथा जड़ जगत् के संबन्ध मानव स्वभाव तथा मनुष्य कृत पदार्थों के संबन्ध, भूत प्रेतों की दुनिया तथा उसके साथ मनुष्यों के संबन्धों के विषय जादू-टोना, सम्मोहन, वशीकरण, तावीज़, भाग्य, शकुन, रोग तथा मृत्यु संबन्धी बातें आदिम तथा असभ्य विश्वास इसके क्षेत्र में आते हैं। इसमें विवाह, उत्तराधिकार, बाल्यकाल तथा प्रौढ़ जीवन के रीति-रिवाज़ तथा अनुष्ठान और त्योहार, युद्ध-आखेट, पशु-पालन आदि विषयों के भी रीति रिवाज़ तथा अनुष्ठान आते हैं, तथा धर्मगाथाएँ, लोककहानियाँ, लोकगीत पहेलियाँ तथा लोरियाँ भी इसके विषय हैं।"[2] वस्तुतः यह 'लोक' शब्द लोकजनता की चेतना पर आधारित है।

'लोक' संबन्धी हज़ारिप्रसाद द्विवेदी की परिभाषा उल्लेखनीय है कि "लोक शब्द का अर्थ जनपद या ग्राम्य नहीं है बल्कि नगरों और गाँवों में फैली हुई वह समूची जनता है जिनके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियाँ नहीं हैं। ये लोग नगर में परिष्कृत

---

1. सम्मेलन पत्रिका डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल पृ. 65
2. ब्रजलोक साहित्य का अध्ययन डॉ. सत्येन्द्र पृ. 4

रुचि संपन्न तथा सुसंस्कृत समझे जानेवाले लोगों की अपेक्षा अधिक सरल और अकृत्रिम जीवन के अभ्यस्त होते हैं और परिष्कृत रुचिवाले लोगों की समूची विलासिता और सुकुमारता को जीवित रखने केलिए जो भी वस्तुएँ आवश्यक होती हैं, उनको उत्पन्न करते हैं।"[1] अर्थात् 'लोक' शब्द में विशाल अर्थक्षेत्र शामिल है।

श्याम परमार के अनुसार "यह शब्द वर्ग-भेद रहित अर्वाचीन सभ्यता संस्कृति के कल्याणमय विवेचन का द्योतक है।"[2] अर्थात् नागरिक और ग्राम्य दोनों संस्कृतियों का गतिशील अंग है। स्पष्ट है कि 'लोक' शब्द के अन्तर्गत जनता का सामान्य परिवेश, परंपरा परिस्थिति आदि को ही महत्व दिया गया है।

लोकतत्व

लोकमानस ही लोकतत्व की कसौटी है। आभिजात्य संस्कार, शास्त्रीयता और पाण्डित्य की चेतना और अहंकार से शून्य, बल्कि एक प्रवाह में जीवित लोक की अभिव्यक्ति में जो तत्व मिलते हैं, वे लोकतत्व कहलाते हैं। सामान्य जन में उच्छ्वसित भावनाओं और विचारों तथा प्रचलित रीति-रिवाज़ों और संस्कारों का उद्घाटन लोकतत्व का केन्द्रबिन्दु है। याने जनसाधारण का स्वर लोकतत्व में गूँज उठता है।

साहित्य में लोकतत्व; लोकसंस्कृति, आचार-विचार, रीति-रिवाज़, संस्कार आदि की दृष्टि को छानबीन करके निकाला जा सकता है। "साहित्य को यदि हम मानव मन की अनुभूतियों का इन्द्रधनुषी प्रतिबिंब कहें तो उसमें पर्याप्त लोकतत्व को, उसकी सूक्ष्मतम अंतरंग सतरंगिणी आशा का मूल कहा जाना चाहिए।"[3] वस्तुतः साहित्य एवं लोकतत्व अविभाज्य तत्व है, और साहित्य में लोकतत्व की परिव्याप्ति भी शाश्वत एवं

---

1. जनपद (अक्तूबर 1952) आचार्य हज़ारीप्रसाद द्विवेदी का लेख पृ. 65
2. भारतीय लोकसाहित्य - श्याम परमार - पृ. 10
3. हिन्दी उपन्यासों में लोकतत्व डॉ. इन्दिरा जोशी - पृ. 3

चिरस्थायी सत्य है। युग-युगों से प्रवाहमान यह सत्य लोकजीवन के अंग-प्रत्यंगों में संचरित रहते हुए अपने परिभाषिक रूप में लोकतत्व संज्ञा से अभिहित हुआ है। मनुष्य की सभ्यता और संस्कृति के प्रत्येक पहलू में यह लोकतत्व प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में प्रतीयमान बना रहता है। मानवीय आचरण के सभी पहलुओं, सभी मानवीय मूल्यों में लोकतत्व निहित है। मानवीय व्यवहारों, संकेतों, बोल-चाल, भाषाई परंपराओं, अनुष्ठानों, क्रिया-कलापों से जुडे मुहावरों, लोकोक्तियों, दन्तकथाओं, सादृश्यों, उदाहरणों, दृष्टान्तों आदि के माध्यम से मनुष्य लोकतत्व का आश्रय लेता रहता है। वास्तव में लोकतत्व को काल निरपेक्ष मानवीय अनुभवों की मंजूषा कहा जा सकता है। साहित्य ने समस्त 'लोक' के हित में महत्वपूर्ण स्वरूप इसी 'लोक' से ग्रहण करके शाश्वत सत्यों का निर्माण किया है।

लोक जीवन पर रामकथा एवं उसमें निहित लोकतत्व अवश्य ही प्रभाव डालते हैं। प्राचीनकाल से लेकर आज तक रामकथा से संबन्धित लोकतत्व लोकजनता को, परंपरागत मूल्यों एवं विश्वासों का एक सटीक चित्र प्रस्तुत करके, अनेक नवीन संदेश प्रदान करते हैं।

रामकथा की उत्पत्ति

रामकथा के संबन्ध में आदिकवि वाल्मीकि की भविष्यवाणी है

"यावत् स्थास्यन्ति गिरयः सरितश्च महीतले।
तावत् रामायणकथा लोकेषु प्रचरिष्यति।।"

(अर्थात् जब तक पृथ्वीतल में पहाड और नदियों का अस्तित्व रहेगा, तब तक संसार में रामकथा का प्रचार-प्रसार रहेगा।) यह वाणी भारतीय जीवन में अक्षरशः सत्य सिद्ध हुई है।

लोकजीवन के कण-कण में स्पन्दन उत्पन्न करनेवाली रामकथा का प्रचार-प्रसार लोकवार्ताओं से लेकर पुराणेतिहास ग्रन्थों, काव्यों, नाटकों, आख्यायिकाओं के

जरिये हुआ है। अतः लोकजीवन के अतिरंजित एवं काल्पनिक पक्ष तथा आभिजात्य वर्ग के अद्भुत और अलौकिक पक्ष का सामंजस्य रामकथा में दर्शाया जा सकता है। साथ ही समस्त देश के विश्वासों, रीति-रिवाज़ों, मूल्यों और जीवन शैलियों को बहुत कुछ प्रभावित करने में यह सफल बन गया है। डॉ. सत्येन्द्र के अनुसार "रामकथा का ढाँचा ही लोककथा के आधार पर निर्मित है, जिस पर लोक में प्रचलित प्रेमकथा की छाया देखी जा सकती है।"[1] अर्थात् रामकथा भारतीय कथा साहित्य की रत्नमाला का मणिमेरु है।

रामकथा न केवल एक प्राचीन तथा व्यापक विषय है, अपितु यह अत्यंत आकर्षक एवं लोकप्रिय भी है। इसकी अनेक बातें जन जीवन को सीधे स्पर्श करती हैं, इस कारण इसने विभिन्न समाजों पर भी प्रायः एक समान प्रभाव डाला है। रामकथा की परंपरा का सूत्रपात सर्वप्रथम इक्ष्वाकुवंशीय सूत्रों द्वारा आख्यान काव्य के रूप में हुआ। यही कथा रामायण का आधार बनी, साथ ही भारतीय जन-जीवन की मर्मकथा भी बनी। इस प्रकार रामकथा देशव्यापी और कालव्यापी दोनों है। समय-समय पर बदलते जीवन-मूल्यों के साथ जन-जीवन के युगानुरूप तत्वों का समावेश करके माँ भारती के वरदपुत्र कविर्मनीषियों ने इसे अमर बना दिया है।

रामकथा न केवल भारत की अपितु विश्व की अत्यंत लोकप्रिय कथा है। संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, हिन्दी की बोलियों, भारतीय भाषाओं तथा विश्व की अन्यान्य भाषाओं में रचनाकारों ने अपने देश-काल को प्रेरणा प्रदान करने केलिए रामकथा की विविध काव्यविधाओं के माध्यम से प्रस्तुति की है। रामकथा युगों से होकर जीवन की अंतःसत्ता से विशेष संबन्ध रखती आई है।

हिन्दी और मलयालम साहित्य के विश्लेषण से यह तथ्य सामने आ जाता है कि साहित्यिक विकास के विस्तृत मार्ग में स्थान-स्थान पर उभरे हुए मील के पत्थरों के

---

1. मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का लोकतात्विक अध्ययन डॉ. सत्येन्द्र पृ. 411

समान राम की कथा के आख्यान प्रमुखता पा गए हैं। मलयालम के रामचरितम् कण्णश्शरामायणम्, अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु, हिन्दी के गोस्वामी तुलसीदास का रामचरितमानस आदि इसके उदाहरण हैं, जिनमें समुद्र में नदियों के समान राम संबन्धी छोटी-छोटी कृतियों का समस्त प्रवाह विलीन हो जाता है।

लोकगीतों में रामकथा

प्राचीनकाल से ही रामकथा लोकगीतों एवं लोकनाट्यों का आधार लेकर विकसित होती रही है। गीतों के माध्यम से लोकमन को आसानी से प्रभावित किया जा सकता है। वास्तव में लोकगीत आम जनता की आत्मा की पुकार एवं उनके जीवन की मार्मिक अभिव्यक्ति हैं। ये गीत लोकजनता के सुख-दुःख, आशा-निराशा, पीडा, घृणा, क्रांति और न जाने कितनी भावनाओं के सामूहिक उद्गार हैं। एक पीढ़ी के मुँह से दूसरी पीढ़ी के मुँह तक ये गीत पहुँच गये। इस प्रकार विभिन्न पीढ़ियों के लोगों की जिह्वा पर सुरक्षित गीतों को लोकगीत कहा करते हैं।

आदिमानव के उल्लासमय संगीत की ध्वनि लोकगीतों में सुरक्षित है। दूसरे शब्दों में आदिम मनुष्य के हृदय के गान ही लोकगीत हैं। इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका के अनुसार 'लोकगीत तो स्वतः जन्मा है।'[1] यह न तो नया होता है और न पुराना। जंगल के एक वृक्ष के समान भूतकाल की ज़मीन में इसकी जडें गहरी धँसी हुई हैं। लेकिन इसमें निरन्तर नई डालें, पल्लव और फल आते रहते हैं। लोकसमाज के मानव जीवन की, उसके उल्लास की, उसकी उमंग की, करुणा तथा समस्त सुख-दुःख की कहानी लोकगीत में चित्रित है। 'लोकगीतों में सामाजिक, राजनैतिक परिवर्तनों, ऐतिहासिक घटनाओं, नैतिक मान्यताओं तथा समाज के धार्मिक जीवन का भी वर्णन मिलता है। धार्मिक विश्वास

---

1. इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका (ग्रिम) भाग पृ. 448

भाग्यवाद, व्रतों का विधान, देवी देवताओं की पूजा आदि का वर्णन बडे विस्तार और वैविध्य के साथ लोकगीतों में हुआ है।'[1] लोकगीत प्रायः धार्मिक संस्कारों के अवसर पर या विभिन्न ऋतुओं में गाए जाते हैं। 'मानव के जन्मकाल से लोकगीतों की अक्षुण्णा धाराओं का जो वेगपूर्ण प्रवाह उमड़ा है, वह परस्पर संगठित होकर विशाल भवसागर की सृष्टि कर रहा है। इस सागर की लहराती उछलती तरंगों में युग-युग के मानव की कामनाएँ, भावनाएँ और अनुभूतियाँ आन्दोलित होती हैं। इसके कोलाहल में समस्त स्त्री-पुरुषों के मार्मिक भावों के अनुरंजन, प्रेममय पुलकन, भय-मिश्रित प्रकम्पन, दुःखपूर्ण क्रन्दन, उल्लासयुक्त मिलन और विषादग्रस्त बिछुडन की व्याप्ति है।'[2] याने लोकगीतों में लौकिक सभ्यता, लौकिक आचार व्यवहार, लौकिक रीति-रिवाज एवं परंपराओं का प्रतिबिंब झलकता है। युग-युगों से चली आ रही मानवीय मूल भावनाओं का विशेष भण्डार इनमें सुरक्षित है।

लोकगीतों में लोकजीवन के वास्तविक चित्र प्रतिबिंबित होते हैं। माता-पुत्र का अटूट प्रेम, पिता और पुत्री की आत्मीयता, सास-बहू की ममता, पति-पत्नी की स्नेहशीलता देवर-भाभी का सहज प्रमोद जैसे पारिवारिक संबन्धों की सद्भावनाओं का परिचय लोकगीतों में प्राप्त होता है। हिन्दू समाज के प्रत्येक संस्कार के अवसर पर (पर्व, त्योहारों एवं ऋतुओं के उपलक्ष्य में) लोकगीत गाने की प्रथा है। इस प्रकार जीवन के आरंभ से लेकर अंत तक होनेवाले कार्य-व्यापारों का इन गीतों का सृजन करने में विशेष योग है। अर्थात् लोकगीत लोकजन द्वारा विशेष परिस्थिति, स्थल, कर्म तथा संस्कार के समय हुई अनुभूतियों की लयपूर्ण सामूहिक अभिव्यक्ति है।

---

1. लोकगीतों में रामचरित डॉ. त्रिलोकी नारायण दीक्षित (सम्मेलन पत्रिका मानस चतुश्शती विशेषांक)
2. भारतीय लोकसाहित्य - श्याम परमार पृ. 53

भारत में लोग उत्सव, पर्व जैसे विशेष अवसरों पर ऐसे गीतों एवं मनोरंजनात्मक नाटकों का अवतरण करते आये हैं। लोकनायक के रूप में राम लोकमानस में इस प्रकार जम गए हैं कि लोगों से उन्हें अलग देखना असंभव रह गया है। प्राचीनकाल से लोकजीवन एवं लोकव्यापारों में इस प्रकार राम के चरित्र का सम्मिलन रामकथा के निरन्तर प्रसार को अभिव्यक्त करता है। हरिवंश से लेकर इसका प्रमाण मिल जाता है। यों कहा गया है

"गाथा अन्यत्र गायन्ति ये पुराणविदो जनाः
रामे निबद्ध तत्वार्थ महात्म्यं तस्य धीमता"(1/41/149)

परवर्ती रामचरित गायकों को निस्सन्देह लोकसाहित्य में प्रचलित रामकथा ने प्रभावित किया है। डॉ. भगीरथमिश्र के अनुसार "लोकजीवन की जितनी भी अवस्थायें और परिस्थितियाँ जो वास्तविक अथवा काल्पनिक हो सकती हैं, वे सब रामकथा के विशद विस्तार में समाहित हैं। मनुष्य के बाल्यकाल, युवावस्था एवं वृद्धावस्था के कार्य-कलाप रामकथा में विद्यमान हैं। पारिवारिक जीवन का मोह, ममत्व, ईर्ष्या, द्वेष, छल, प्रपंच, विशेषताएँ एवं उलझन, आंतरिक भावनाओं के द्वन्द्व एवं संघर्ष, विक्षोभ, धैर्य चातुर्य, शील, निष्ठा, विश्वास, समर्पण, दृढ़ता, वत्सलता, सुकुमारता, कर्कशता, त्याग एवं सहनशीलता रामकथा की जीवनधारा में लहरों की भाँति तरंगित होती रहती हैं....लोकजीवन की अशेष संवेदनाएँ रामकथा में उभरती हैं। इसलिए रामकथा लोकजीवन की मार्मिक कथा है।"[1] राम के जन्म से लेकर लोकापवाद के कारण सीता के निर्वासन तक की कथा का वर्णन लोकगीतों में उपलब्ध है।

लोकगीत उस नदी की धारा के समान हैं, जो ग्रामीण गर्भ से निकालकर रास्ते में आनेवाली विभिन्न बाधाओं को पारकर बहा ले जाती है, उसी प्रकार लोकगीत लोकजीवन के समस्त दुःखों को दूर करते हैं। राम का चरित इसका उत्तम उदाहरण है।

---

1. तुलसीदास और युगीन संदर्भ डॉ. भगीरथमिश्र - प. 161

ग्रामीण रीति-रिवाज़, दिनचर्या, आर्थिक विषमता, उल्लास सब कुछ इसमें विलीन हो जाता है। ये लोकगीत जनता के मन को गहराई से स्पर्श करते हैं। उत्तरी लोकगीतों में विशेषकर अवधी लोकगीतों में रामकथा संबन्धी अनेक गीत देखे जा सकते हैं। राम की दिनचर्या, लोकशैली में सुन्दर एवं प्रभावपूर्ण ढंग से चित्रित करने में ये लोकगीत सफल बन जाते हैं। रामकथा की मार्मिकता इन गीतों में राम की कथा को स्थान देने में विशेष रूप से सफल बन गयी है। डॉ. नरेश मेहता का कहना है कि 'लोकगीतों की टेक में 'हो राम' के रूप में राम घुल-मिल गये हैं। इससे स्पष्ट है कि राम की मिथकता रामकथा में नहीं है, बल्कि धर्म ने जिस सत्य का साक्षात्कार इस मिथक के द्वारा किया, वह देश-काल की नाम रूपता से भी परे था।"[1]

अवधी के विवाह गीतों में वर राम हैं, दुलहन सीता है, सास कौसल्या, ससुर दशरथ तथा देवर लक्ष्मण। अवध क्षेत्र के लोकगीतों में प्रायः सब जातियों ने अपने परिवार को दशरथ के परिवार के रूप में ही देखा है। एक अहीर अपने जीवन के सुख-दुःख की अभिव्यक्ति राम, सीता और लक्ष्मण के माध्यम से ही करता है और गाता है

"राम का बगिया सिता के फुलवारी लछिमन देवरा बइठ रखवारी।
तोरि तोरि नेबुआ पठावें ससुरारी वहि ने बुआ का बने तरकारी।"[2]

अहीरों को अपनी ससुराल से बडा प्रेम होता है, इसी कारण खाने-पीने की वस्तुएँ ससुराल भेजते हैं। भ्रातृप्रेम का सुन्दर चित्रण राम, भरत आदि के माध्यम से अवधी लोकगीतों में देखा जा सकता है। अवधी गीतों में राम और सीता लोक नर और नारी के प्रतीक बन गए हैं। राम के प्रति लोकमानस में प्रगाढ़ भक्ति और अटूट श्रद्धा भी है।

---

1. काव्य का वैष्णव व्यक्तित्व नरेश मेहता पृ. 65
2. अवधी का लोकसाहित्य सरोजनी रोहतगी पृ. 240

बुन्देलखण्ड के कण-कण में राम की कथा है। रामचरितमानस के सात काण्डों में श्रीराम के चरित्र का जो गायन किया है, उसे किसी बुन्देली लोककवि ने सिर्फ छः पंक्तियों में बुन्देली बोली में सफलतापूर्वक बाँध दिया है।

"एक राम इक रावन्न। बे छत्री बे वा भन्ना।।
उन्नें उनकी नार हरी। उन्ने उनकी कुगत करी।।
बातन बड़गओ बातन्ना तुलसी रचदओ पोथन्ना।।"[1]

बुन्देली लोकगीतों में भगवान राम को प्रतीक मानकर शादी-विवाह किये जाते हैं। समग्र बुन्देलखण्ड रामभक्ति तथा उपासना से भरपूर है। लोकगीतों की आत्मा में लोकनायक राम का निवास है। प्रत्येक संस्कार में रामकथा तथा राम का स्मरण किया जाता है। चैत्र की रामनवमी को श्रीराम का जन्मोत्सव धूम धाम से मनाया जाता है। राम, सीता, कौशल्या आदि का चित्रण लोकगीतों में आदर्श पात्रों के रूप में हुआ है।

महाकवि वाल्मीकि एवं लोकनायक तुलसीदास जी की कर्मभूमि बुन्देलखण्ड रही है, वाल्मीकि रामायण तथा रामचरितमानस की रचनास्थली भी यही है। अतः यहाँ के लोकजीवन पर मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामजी का प्रभाव सर्वाधिक रहा है। जन्म से लेकर जीवन पर्यन्त प्रायः सभी संस्कार राम के चरित्र से अनुप्राणित हैं। विवाह के लोकगीतों में ज्योनार में गारी गाने की रिवाज़ है। इसका उदाहरण

"राजा दशरथ के तीनि जो रानी, सूरज किरन उजानी।
तिहारो अंग सांवरो काए, कहो कौन सी कारी।"[2]

---

1. बुन्देली का रामकाव्य सरस्वती पत्रिका दिसंबर 1974।
2. बुन्देली लोकगीतों में रामकथा - डॉ. सियाराम शरण शर्मा मानस चन्दन पृ. 21

इससे यह ज्ञात होता है कि रामकथा पर आधारित यह लोकगीत हमारे हृदय को उल्लसित, प्रोत्साहित, पवित्र और भावासक्त कर देते हैं। अनादिकाल से ये गीत जन-जीवन के प्रेरणा स्रोत रहे हैं। इसी प्रकार कृषि से संबन्धित लोकगीत भी राम के जीवन तथा कृतित्व पर आधारित हैं।

इतना ही नहीं लोकगीतों में प्रायः देखा जा सकता है कि सीता जन्म-प्रसंग सर्वत्र महत्वपूर्ण है। अतः सीता के जन्म का वर्णन लोकगीतों में इस प्रकार हुआ है

"अग्निकुण्ड से निकली सीता महारानी।।
भया जनकपुर सारे हों।।
पाँच मोहरि के राज धनुष बनवाये रे।।
देऊ मड़उवा गडवाइ हो।।
जे यहु धनुष का तोरिहै करिहै यहिका नौ खण्ड हो।।
सो सीता का लै जइ है हि वियाहि हो।।"[1]

सीता स्वयंवर, राजतिलक का स्थगित होना, कैकेयी के कोप भवन तथा वर माँगने का वर्णन आदि लोकगीतों में अत्यंत मर्मस्पर्शी ढंग से चित्रित किया गया है। रामकथा का सबसे बडा मार्मिक प्रसंग राम का वनवास है। इसके वर्णन से संबन्धित एक लोकगीत है

"वनको चला दोनों भाई कोई समझावत ना ही
आगे आगे राम चलत हैं पीछे लक्ष्मण भाई
बीच बीच में मात जानकी यह शोभा बरनी न जाई
* * * * * * * *बन को*[2]

1. लोकगीतों में रामचरित - डॉ त्रिलोकीनारायण दीक्षित (सम्मेलन पत्रिका। मानस चतुश्शती विशेषांक) पृ. 175
2. वही पृ. 176

इस प्रसंग के साथ राम-रावण युद्ध, सीताहरण, इसके बाद सीता का वनवास आदि का हूबहू चित्रण हुआ है।

इस प्रकार लोकगीतों में रामकथा का विशेष महत्व है। विशेषकर अवधी तथा बुन्देली लोकगीतों में लोकजनता ने रामकथा के हर एक अंश को अपने जीवन के साथ जोड़ा है।

लोकनाट्यों में रामकथा

लोकनाट्यों में जनजीवन के हर्ष उल्लास को उन्मुक्त रूप में व्यक्त किया जाता है। ये सामूहिक आवश्यकताओं और प्रेरणाओं से निर्मित होने के कारण लोकवार्ता के कथानकों, लोकविश्वासों तथा अन्य तत्वों को समेटकर चलते हैं, इसलिए प्रभावपूर्ण होते हैं। लोकजीवन से सीधे जुडे रहने के कारण ये लोक की भावनाओं का प्रत्यक्ष प्रतिनिधित्व करते हैं। भारत के विभिन्न भागों में अनेक प्रकार के लोकनाट्य प्रचलित हैं। दक्षिण भारत में यक्षगान और वीथी नाटकम्, महाराष्ट्र के तमाशा और ललित, उत्तरभारत के नौटकी, रासलीला और रामलीला इसके प्रमुख उदाहरण हैं।

भारतीय जन-जीवन में लोकनाट्यों का प्राचीनकाल से ही महत्वपूर्ण स्थान है। धार्मिक पर्वों, सामाजिक उत्सवों तथा मेलों में इनसे निरन्तर जन साधारण का मनोरंजन होता रहा। इनके पात्र जिस समाज और वातावरण में पलते हैं, उसका प्रतिनिधित्व करते हैं। उनका उद्देश्य मनोरंजन करना होता है। लोकनाट्यों में संगीत को बडी प्रमुखता दी जाती है। आदि से अंत तक हारमोनियम, ढोलक, मंजीरे, स्वरताल, सारंगी, बाँसुरी आदि पार्श्व संगीत प्रदान करते हैं। सहजता और सरलता लोकनाट्यों का सबसे बडा गुण है। लोक रुचि के अनुसार उनका अनुकूल विधान किया जाता है जिसमें समयानुकूल परिवर्तन कर लिये जाते हैं।

उत्तरभारत में लोकमनोभावों एवं प्रतिक्रियाओं का स्वतंत्र विकास 'रासलीला' रामलीला जैसे लोकनाट्यों में देखा जा सकता है। रासलीला में कृष्ण को लोकरंजनकारी नायक के रूप में चित्रित किया है तो रामलीला में राम को लोककल्याणकारी नायक बना दिया। अयोध्या में राम जन्म के थोडे समय बाद जन-जन में उनकी लीला अभिनय के रूप में प्रश्रय पाने लगी। आज के ग्रामीण जीवन में इनका जो महत्व है, उसके मूल में श्रद्धा और भक्ति है, जो कई शताब्दियों से पोषित लगाव भी है। गाँवों में पाठक और धारक जैसे दो विभागोंवाला दल रामायण का पाठ एवं उसकी व्याख्या करता है। कभी-कभी अभिनय भी इस व्याख्या में सम्मिलित हो जाता है। इसी लोकमंच पर रामलीला ने ख्याति प्राप्त की। लेकिन रामकथा में संवाद-चमत्कार द्वारा रस-भाव उत्पन्न करने की दृष्टि से तुलसी की रचना अधिक संवादात्मक कही जा सकती है। केवल उत्तरभारत में ही नहीं, समस्त भारत में रामलीला का प्रचार-प्रसार देखा जा सकता है। लव-कुश के रामकथा का गायन करने के कारण कुशीलव शब्द पूर्वकाल में गायक एवं अभिनेता के पर्याय के रूप में स्वीकार किया गया है। इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि रामकथा के लिपिबद्ध करने के पूर्व लोकमंच पर राम की जीवन लीलायें आरंभ हो गई थीं। बहुत संभव है कि तुलसीदास ने इस माध्यम को सुव्यवस्थित रूप देने केलिए मानस की रचना नाटक की दृष्टि से की हो। रामानन्द ने भी रामभक्ति के प्रचारार्थ रामलीला का माध्यम अपनाया जिससे लोकजीवन, समाज एवं संस्कृति में रामकथा का गहरा प्रभाव पड़ गया।

राम के जीवन से संबन्धित 'रामलीला' का स्थान वास्तव में धार्मिक लोकमंच की श्रेणी में है। "यह लगभग एक महीने तक चलनेवाला एक श्रृंखलाप्रदर्शन महानाटक है। रामलीला केवल प्रदर्शनमात्र नहीं, बल्कि पढ़ी, सुनी और देखी जाती है। पात्रों, भक्त दर्शकों के साथ ही कलाकार, कारीगर, गायक-वादक, पंडित और नेता सभी अपने ढंग से लीला

में सहभागी होते हैं, अपने ढंग से प्रभु का कीर्तन करते हैं।"[1] याने रामलीला में कुछ पात्र धारक और कुछ पाठक बनते हैं। कुछ लोग राम के गुणों का गान भी करते हैं। रामलीलाओं के प्रदर्शन में लोक को उपदेश देने की भावना भी निहित है।

वारणासी में प्रदर्शन शैली की दृष्टि से तीन प्रकार की रामलालीएँ होती हैं। पहली है, चित्रकूट की रामलीला। यह अपने चमत्कारों तथा दिव्य दर्शन केलिए प्रसिद्ध है। इस लीला का 'भरत मिलाप' प्रसंग महत्वपूर्ण है। दूसरी लीला अस्सीघाट की लीला है। यह लगभग 400 वर्ष पुरानी है। गोस्वामी तुलसीदास को इसके संस्थापक मानते हैं। यों कहा है कि शरद पूर्णिमा के दिन उन्होंने तुलसीघाट पर राजगद्दी की लीला आयोजित की थी। इस लीला में संवाद होते हैं। तीसरी लीला रामनगर की रामलीला है। यहाँ मंच के बदले पात्र अपना कार्य करते हैं। इस रामलीला को अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त हुई। काशी में रामलीला का जुलूस देखा जा सकता है। 'भरत मिलाप' इसमें प्रमुख है। 'आकर्षक विमान, झाँकियाँ और जुलूस के अंत में कंधों पर उठाये विमान पर पाँचों स्वरूपों की दिव्य झाँकी लोगों को मोह लेती है।"[2]

अवधी क्षेत्र में रामलीला का अधिक प्रचार है। शायद राम के अवध के निवासी होने के कारण ऐसा रहा होगा। अवध परिवार के एक अंग के रूप में वहाँ लोकजनता राम को मानती है। अतः प्रतिवर्ष वह राम की लीलाएँ स्थान स्थान पर किया करती है। ऐसा विश्वास है कि तुलसी ने ही चित्रकूट और काशी में रामलीला का प्रचार किया। यों कहा गया है।

"चित्रकूट के घाट पै भइ सन्तन की भीर।
तुलसिदास चन्दन घिसै तिलक देत रघुवीर।"[3]

---

1. रामकथा विविध आयाम - डॉ रमानाथ त्रिपाठी - पृ. 178
2. वही पृ. 180
3. अवधी का लोकसाहित्य - सरोजनी रोहतगी - पृ..353

इससे यह पता चलता है कि तुलसी ने चित्रकूट में कुछ समय केलिए निवास किया था। अवध क्षेत्र का लोकजीवन रामलीला के द्वारा अपनी प्राचीन परंपराओं, मान्यताओं और लोकविश्वासों पर एक दृष्टि डालकर जीवित हो उठता है।

'वाल्मीकि के समय वीर पूजा के निमित्त गाये जानेवाले गीतों और अभिनय में रामकथा का प्रभाव था। लव-कुश तो रामकथा का गायन भी करते थे। कदाचित् इसीलिए 'कुशीलव' शब्द पूर्वकाल में गायक और अभिनेता के पर्याय के रूप में स्वीकार किया गया था।"[1]

सभी देशों में राम को पावन पुरुष के रूप में देखने के कारण रामकथा का विकास आस-पडोस के देशों में व्याप्त हो गया। ऐसा कहा जाता है कि कम्बोडिया, मलया, स्याम, बर्मा आदि को वाल्मीकिरामायण से ही नाट्यकला की प्रेरणा प्राप्त हुई है। 'स्याम' में कठपुतलियों द्वारा रामकथा वर्णित की जाती है तो बाली द्वीप के लोकनृत्यों में रामकथा की घटनाएँ प्रदर्शित की जाती हैं। 'कम्बोडिया के रैयामेकर अथवा स्याम के राम संबंधी ग्रन्थों के अतिरिक्त राम के जीवन से संबन्धित हरिवंशपुराण में एक नाटक खेलने का वर्णन है जो रामलीला के आधार पर खेला गया था।"[2] रामलीला का प्रदर्शन आज भी अनेक प्रांतों में देखा जाता है। विशेष रूप से उत्तरप्रदेश के नगरों और गाँवों में यह अधिक प्रसिद्ध है। दिल्ली में रामलीला की बडी घूम रहती है तो अयोध्या में रामलीला का अनोखा दृश्य देखने को मिलता है। मथुरा आगरा जैसे स्थानों में रामलीला मण्डलियाँ हैं, जो उत्सव आरंभ कर देती हैं। कूर्मांचल में विजयादशमी के अवसर पर रामलीला का प्रदर्शन भी होता है जिसमें वाल्मीकि और तुलसी के रामायण के अंश गाये जाते हैं।

---

1. लोकधर्मी नाट्य परंपरा डॉ. श्याम परमार पृ. 178
2. लोकधर्मी नाट्य परंपरा डॉ. श्याम परमार पृ. 24-25

साधारणतया पूरी रामलीला के प्रति जनसमुदाय में श्रद्धा की भावना रहती है, किन्तु रामलीला के दो स्थल भरत-मिलाप और राजगद्दी जनसमुदाय केलिए उत्सवों के समारोह बन गए हैं। रामलीला की भाषा शुद्ध अवधि नहीं होती। मानस की चौपाइयों और कभी-कभी राधेश्याम कथावाचक के छन्दों के माध्यम से रामलीला प्रदर्शित की जाती है। तुलसी की रामायण में यह विशेषता है कि इसके अनेक संवाद समय समय पर नाटकीय रूप धारण कर लेते हैं। मानस के अनेक संवाद ऐसे हैं। संवादों के कारण चरित्रों के उतार चढ़ाव का भाव स्पष्ट होता है। घनुष यज्ञ के समय परशुराम और लक्ष्मण संवाद, गंगा पार उतरने के समय राम और केवट संवाद आदि लोकजीवन की प्रतिदिन की झाँकी प्रस्तुत करते हैं।

इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि लोकजीवन में गहराई से उतरनेवाली रामकथा किसी एक क्षेत्र तक सीमित नहीं, संपूर्ण देश में इसकी विजयगाथा गूँज रही है। स्थानीय विश्वास, प्रथायें, रीति-रिवाज़, रूढ़ मान्यताएँ, मुहावरे, जीवन-दर्शन आदि सभी तत्व इसमें विद्यमान होने के कारण जन सामान्य की अंतःसत्ता को पकडने में सफल सिद्ध होती है। लोकजनता भी इससे प्रभावित होती है। लोकगीतों की हृदयस्पर्शी शब्दयोजना, मंचीय वैशिष्ट्य रूढ़ अभिनय, पद्यात्मक संवादयोजना आदि सभी तत्वों के समावेश के कारण लोकचेतना के रूप को लेकर भक्ति के साथ ये गीत लोकहृदय में विलीन हो जाते हैं।

लोकजीवन में राम

रामकथा भारतीय जन जीवन की मर्मकथा है। इसका केन्द्र श्रीरामचन्द्र जी मर्यादापुरुषोत्तम एवं एक सच्चे लोकनायक थे। लोक में राम सामाजिक, धार्मिक तथा समकालीन नैतिक मूल्यों के आदर्शों का जीवन्त प्रतीक है। बाल्यकाल से लेकर राम का समस्त जीवन लीलाओं का चित्रण लोकजनता केलिए चिरपरिचित है। लोकजीवन में यह

कभी मिटता नहीं। बाल्यावस्था में राम नगर के सामान्य बालकों के साथ अयोध्या की गलियों में मिट्टी और धूल में खेले थे। किशोरावस्था में पत्नी और भाइयों सहित उन्होंने सखाओं और नागरिकों के साथ सामाजिक उत्सवों में सम्मिलित होकर रंगरेलियाँ मनायी थीं। वनवास के समय कोल-किरातों से मिल-जुलकर उनकी जीवनधारा को नया मोड दिया था। रीछ, वानर आदि अर्धसभ्य जातियों के द्वारा अत्याचारी शासक को समाज के सुख और शांतिपूर्ण जीवन यापन में सहायता की थी। राक्षसों द्वारा पीडित मुनियों की रक्षा की थी। आतंक द्वेष और हिंसा पर आधारित रावण के आसुरी जीवन के उत्तरकाल में सर्वहितकारी रामराज्य की स्थापना कर शांति एवं सुव्यवस्था की अखंड ज्योति स्थापित की थी। लोकजनता ने इसी राम को लोकनायक बना दिया। लोकजीवन में इनके आदर्श को मान्यता दी।

लोकजीवन के प्रत्येक अंग में राम आदर्श सिद्ध हुए हैं। तुलसीदास और एषुत्तच्छन ने अपने मानस एवं अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में लोकजीवन के ऐहिक आदर्शों में राजा, प्रजा, भाई, माता-पिता, पुत्र, गुरू, मित्र, स्त्री, सेवक, शत्रु सभी के स्वरूप को अंकित किया है। जिसमें अलग-अलग कर्तव्यों का स्पष्ट संकेत मिलता है। वास्तव में तुलसीदास और एषुत्तच्छन का प्रमुख उद्देश्य लोकजीवन के इन्हीं आदर्शों को स्पष्ट करना है। ये समाज के लोगों के सामने राम के व्यक्तिगत तथा परिवार के लोगों के आचरण को उपस्थित करते हैं और इस दृढ़ता और विश्वास के साथ उसके कर्तव्य का स्पष्टीकरण कर देते हैं कि हमारे लोकजीवन की उलझनों और समस्याओं को सुलझाने में हमें उनका महत्वपूर्ण प्रकाश प्राप्त होता है।

सचमुच माता-पिता के वचनों का पालन करनेवाला श्रीराम जैसा पुत्र संसार में दुर्लभ है, जो पिता का वचन निभाने केलिए राज्य को त्याग देते हैं और चौदह वर्षों केलिए

तपस्वी के वेश में वन में रहना स्वीकार करते हैं। श्रीराम की यह पितृभक्ति भावावेश नहीं, बल्कि उनके चरित्र की स्थायी प्रकृति है। रामचरितमानस तथा अध्यात्मरामायणम् में यह लोकसत्य और सशक्त बन जाता है।

लोकजीवन में राम का भ्रातृ स्नेह उन्हें और अधिक श्रेष्ठ बनाता है। लड़कपन में खेलते समय भाइयों के प्रति श्रीराम के हृदय में जितना स्नेह या, सयाने होने पर ओर परिपक्व हो गया है। भरत के प्रसंग में उनके भ्रातृप्रेम को हम चरम विकास पर देखते हैं। राम का चित्र एक आदर्श पति के रूप में मानस तथा अध्यात्मरामायण में हैं। इन दोनों ग्रन्थों का अंतिम वर्णन यह है कि सीता सदा पति के अनुकूल रहती हैं, वे शोभा की खान सुशील और विनीत हैं। लेकिन सीता को वन छोडने के कारण लोक जनता उसके इस आदर्श को ठुकराती है। पर एक आदर्श राजा होने के कारण प्रजाहित केलिए उन्हें सीता को त्यागना पडता है। इसी कारण अपवाद भी आ जाता है। किंतु राम का पति हृदय जानने केलिए मानस तथा अध्यात्मरामायणम् में अनेक प्रसंग ऐसे हैं जो राम का पति-प्रेम दिखाने में सक्षम हैं। राम का एक पत्नीव्रत आदर्श माना गया है। सीता की अग्निपरीक्षा लेते समय भीतर से रोना, ऊपर से कठोर बने रहना; ये सभी प्रसंग राम के चरित्र को निखर देते हैं।

राम वनगमन संसार के साहित्य का महानतम प्रकरण है। जिसमें लोक प्रेम के सभी रूपों का पावनतम चित्रण अनायास ही प्राप्त हो जाता है। एषुत्तच्छन का राम मनुष्य के निकट ज़्यादा है। उनके राम का कथन है "मानुष वेषं पूण्डु भूमियिल् पिरन्नु ञान्"। अर्थात् मनुष्य का रूप धारण कर मैं पृथ्वी पर अवतरित हो गया हूँ। राम के माध्यम से एषुत्तच्छन ने इस लोक केलिए एक उत्तम पुरुष प्रदान किया। गुरुजनों के प्रति श्रद्धा भाव रखकर उसकी आज्ञा का पालन करनेवाला राम निश्चय ही लोक का अपना है।

राम का सखा-संबन्ध संसार में देखने योग्य है। कोल-किरातों के साथ वन में जीने केलिए भी वे हिचकते नहीं। राम वनवासियों के बीच साधारण व्यक्ति की भाँति थे और

उनके साथ खाना खाने में भी तैयार थे। निषाद, शबरी, कोल-किरात सभी राम को सखा के रूप में देखते थे। "तथा राजा तथा प्रजा" सिद्धांत भी राम के संबन्ध में सार्थक बन जाता है। एक उत्तम राजा का लक्षण है उसका प्रजा-प्रेम, शील और आदर्श चरित्र। राम प्रजा केलिए सब कुछ करने को तैयार थे। अपनी पत्नी को भी उन्होंने प्रजाहित केलिए त्याग दिया। प्रजा राजा केलिए राज्य का अभिन्न अंग है। लोक में रामराज्य का सभी स्वप्न देखते हैं। इसी दृष्टि से भी लोकजीवन में राम एक आदर्श राजा तथा राम का राज्य एक आदर्श रामराज्य के रूप में सामने आता है।

लोकजीवन में त्याग-भावना का भी महत्वपूर्ण स्थान है। इस दृष्टि से भी राम लोकनायक की श्रेणी में आ जाते हैं। पिता के सत्य का पालन करने केलिए उन्होंने चौदह वर्ष तक राज्य त्यागकर वनवास किया यही राम का पहला त्याग है। जिस भरत केलिए राज्य त्यागकर वनवास स्वीकार किया उसी भरत के कहने पर भी राज्य न स्वीकार करना दूसरा त्याग। सीता परित्याग तीसरा है।

इस प्रकार लोकजीवन में राम एक लोकमहानायक हैं। मर्यादापुरुषोत्तम राम ने व्यवहार का जो आदर्श लोक के सम्मुख प्रस्तुत किया है, वह सार्वकालिक एवं सार्वदेशिंक है। लोकजनता राम को, तथा राम मंत्र को रटकर अपने जीवन को सार्थक बना देती हैं। आदर्श रामराज्य का स्वप्न भी वह देखती है।

हिन्दी रामकाव्य में लोकतत्व

रामकथा भारतीय संस्कृति के मूल्यों की पुनःस्थापना की एकमात्र कथा है। हमारे लौकिक अलौकिक सभी जीवन आयामों को सर्वत्र-सर्वदा प्रभावित करनेवाले राम और उनके चरित की उत्पत्ति परंपरानुसार इक्ष्वाकु के वैभवशाली राजवंश में आख्यानों के रूप में हुई थी। ऐसा माना जाता है कि लव-कुश तो रामकथा का गायन करते थे, जिससे

रामसंबन्धी लोककथा सारे संसार में व्याप्त होने लगी महर्षि वाल्मीकि ने इन आख्यानों को संकलित करके अपने महाकाव्य 'रामायण' का गठन किया। वेदों की रामकथा के संकेतात्मक और प्रतीकात्मक बीजों की व्याख्या पुराणों एवं महाकाव्यों में सुग्राह्य बनाकर कथातत्व के ज़रिए की गयी है। रामायण में भी इसका प्रतिफलन हुआ है। लोक-वेद समन्वित रामकथा अमर हो गयी। वाल्मीकि ने लोक की शाश्वत भावनाओं को दार्शनिक रंग देकर जन-जन के हृत्पटल पर अंकित कर दिया। इस प्रकार के महाकाव्य में सरल और सरस ढंग से प्रकट होनेवाली लोककथाएँ लोगों केलिए अत्यंत प्रिय बन गयी और लोकसामान्य में धीरे-धीरे इनका प्रचार बढ़ता गया।

सीता संबन्धी जो लोककथा है वह वैदिककाल से लेकर जातक कथाओं के बीच से गुज़रकर आज भी चली आ रही है। किसी विद्वान ने इस बात की ओर संकेत करते हुए कहा है कि "यदि सीता का गाथान्तरण होकर विष्णु के अवतारभूत राम की पत्नी जनकपुत्री (जो भूमिजन्या थी और सीता से आर्विभूत हई थी) बनकर महाभारत के रामोपाख्यान की, वाल्मीकि रामायण की कथा की ओर भगवतादि पुराण की रामकथा में गाथादेवी बन गयी तो इसे भी वेद का एक पौराणिक व्याख्यात्मक गाथाभाष्य ही कहा जा सकता है।"[1] इससे यह समझा जा सकता है कि प्राचीनकाल से ही सीता को लोकजीवन में धरती की उर्वरा शक्ति का प्रतीक बनाकर देवत्व की कल्पना की गयी है। दूसरी ओर सोमपुत्री सावित्री का भी रूप दिया गया है। इस प्रकार लोकजीवन से सीता का अटूट संबन्ध रहा है। 'यथा राजा तथा प्रजा' वाला तत्व भी रामकथा का सारस्वरूप है। राम के चरित में यह सौ प्रतिशत सत्य सिद्ध हो गया। बाद में वाल्मीकि ने वैदिक पात्रों को दो रूपों में ग्रहण किया। एक अवतारी के रूप में, दूसरा मानव के रूप में। रामकथा के इस वैदिक ढाँचे पर सबकुछ लोक के स्रोतों से चढा, जिसने आदिकवि को प्रथम लोककवि बना

---

1. हिन्दी सगुण काव्य की सांस्कृतिक भूमिका - रामनरेश वर्मा पृ. 17

दिया। 'काव्योपजीवी कुशीलवों और आदिकवि के शिष्यों ने इस कथा को संपूर्ण जन सामान्य से लेकर राजाओं और ऋषियों तक प्रचरित कर दिया।"[1] अर्थात् रामकथा का विकास मुख्यतः इन लोगों से हुआ।

आदिकवि वाल्मीकि से लेकर आज तक रामकथा परंपरा अनेक कवियों, रचनाकार द्वारा अनेक रूपों में, अनेक भाषाओं में, भिन्न-भिन्न देशों-प्रदेशों में प्रवहित हुई है और देश-काल की दृष्टि से इसने विकास की अनेक मंजिलें पार की हैं। लोकजीवन पर गहरा प्रभाव भी डाला है। संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश तथा समस्त आधुनिक आर्यभाषाओं एवं द्रविड भाषाओं में रामकथा की समृद्ध परंपरा का विकास हुआ है। जैनों और बौद्धों ने भी रामकथा की रचना में लोक में प्रचलित कुछ मौखिक परंपराओं से उपादान ग्रहण किये हैं। बौद्धों ने राम को बोधिसत्व मानकर रामकथा को जातकों में स्थान दिया है तो जैनधर्म में आठवें बलदेव के रूप में राम की प्रतिष्ठा हुई। महाभारत में रामकथा आरण्यपर्व, द्रोण पर्व आदि में मिलती है तो स्कन्दपुराण, देवी भागवत, पद्मपुराण जैसे संस्कृत पुराणों और उपपुराणों में रामकथा का विस्तार हुआ है। इससे रामकथा की लोकप्रियता एवं व्यापकता बढ़ जाती है। डॉ. कामिलबुल्के का निष्कर्ष इससे मेल खाता है कि 'रामकथा न केवल भारतीय अपितु एशियाई संस्कृति का भी एक महत्वपूर्ण तत्व बन गयी है।"[2] वस्तुतः रामकथा की इस व्यापकता तथा लोकप्रियता का श्रेय वाल्मीकि रामायण को है।

रामकथा को उच्च शिखर तक पहुँचाने में रामकाव्य का महत्वपूर्ण स्थान है। रामकाव्य में राम व्यक्ति चरित्र न होकर सामाजिक मर्यादाओं और मानव मूल्यों के सर्वोत्तम प्रतीक हैं। मानवीय जीवन की अनेक अनुभूतियों को प्रभाविष्णु रूप में अभिव्यक्त करना

---

1. तुलसी के कथा प्रबन्ध में लोकतात्त्विक प्रविधि डॉ. गया सिंह पृ. 89
2. रामकथा (उत्पत्ति और विकास) रेवरेंड फादर कमिल बुल्के पृ. 233

तथा मानव मूल्यों को प्रतिष्ठित करना ही रामकाव्य का मुख्य उद्देश्य है। भारतीय संस्कृति की समग्र विशेषताएँ राम के चरित्र में समाहित हैं। अतः भारतीय चरितकाव्यों में रामकाव्य परंपरा का सर्वाधिक महत्व है। हिन्दी और मलयालम साहित्य में मुख्य रूप से वाल्मीकि रामायण और अध्यात्मरामायण को आधार बनाकर रामकाव्य का सृजन हुआ। रामकथा के ओज और मधुर्य को जनमानस पर प्रतिष्ठित करने का श्रेय हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में भक्तिकालीन कवियों को ही प्राप्त है।

रामकाव्य का आरंभ वास्तव में रामानन्द से माना जाता है। उन्होंने संपूर्ण हिन्दी भक्ति काव्य को प्रभावित किया। जनता के मन में भक्ति-भाव को लाने का कार्य इन्होंने किया। हिन्दी साहित्य में रामकथा को उसके सर्वोच्च शिखर पर पहुँचाने का कार्य भक्तिकालिन कवि तुलसीदास ने किया। लोकजीवन, संस्कृति तथा लोकजनता पर प्रभाव डालनेवाले 'रामचरितमानस' की रचना करके वे लोककवि एवं कालजयी कवि बन गये। लेकिन तुलसी के पहले और बाद में ऐसे अनेक साहित्यकार हुए, जिन्होंने अपनी रचना के माध्यम से रामकथा को एक नया रूप दिया। इनमें विष्णुदास, ईश्वरदास, अग्रदास आदि का नाम उल्लेखनीय है। लेकिन इनकी कृतियों में लोकजीवन पर प्रभाव डालनेवाले तत्वों की कमी थी। अतः इनका उल्लेखमात्र करना उचित है।

लोकप्रियता की दृष्टि से संभवतः रामकाव्य परंपरा के सभी कवियों में अग्रणी गोस्वामी तुलसीदास अनन्य रामभक्त एवं समन्वय भावना के अग्रदूत थे। भक्तिभाव एवं पांडित्य के अतिरिक्त तुलसीदास अपनी लोककल्याणकारी काव्य प्रतिभा के कारण समाज में सर्वाधिक लोकप्रिय जनकवि के रूप में प्रतिष्ठित हैं। रामकाव्य के सर्वप्रमुख गायक हैं तुलसीदास। उनके शब्दों में

'हरि अनंत हरिकथा अनंता।

कहहिं सुनहिं बहुबिधि सब संता।'[1]

तुलसीदास की प्रायः समस्त रचनाएँ रामकाव्य को आधार बनाकर लिखी हुई हैं। इनमें रामचरितमानस हिन्दी साहित्य ही नहीं, भारतीय संस्कृति का भी अक्षयनिधि है। मानस की रचना पौराणिक ग्रन्थों की संवाद-शैली में हुई है। राम जन्म से लेकर उनके राज्याभिषेक तक का संपूर्ण वृत्त अनेकानेक हेतुओं से युक्त बना कर प्रस्तुत किया गया है। दोहा-चौपाई छंद एवं लोकभाषा अवधी रामचरितमानस की ख्याति का प्रमुख कारण है। सचमुच तुलसीदास का 'रामचरितमानस' रामकाव्य में मील का पत्थर है। लोकचित्त को आकर्षित करने में यह ग्रन्थ सहायक है। तुलसी ने रामकाव्य को इतना पुष्ट कर दिया कि परवर्ती रामकाव्य केलिए वे निरन्तर प्रेरणा देता रहे और अधिकांश रचनाएँ उनसे प्रभावित भी हैं।

रामकथा को नवीन मूल्यों से युक्त करके प्रस्तुत करना आधुनिक युग का वैशिष्ट्य है। आधुनिक रामकाव्य प्रणेताओं के सम्मुख समकाव्य उपजीव्य या प्रेरक रूप में रहे। इनमें लोकजीवन या लोकसंस्कृति के चित्रण का अभाव था। लोकतत्वों की कमी थी। इस प्रकार गोस्वामी तुलसीदास तक आते-आते रामकथा एक लम्बा सांस्कृतिक मार्ग तय कर चुकी थी। उसका रूप विविध प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक तत्वों से प्रभावित हुआ। हिन्दी समकाव्य में लोकतत्वों से भरा ग्रन्थ तुलसी का रामचरितमानस था। हिन्दी साहित्य में लोकजीवन तथा लोकजनता पर इतना प्रभाव डालनेवाले कवि तथा ग्रन्थ बाद में नहीं हुए। आज भी लोक इस ग्रन्थ से महान् तत्वों को स्वीकार करके तुलसी को अमर बना देते हैं।

---

1. रामचरितमानस 1/139/3

इस प्रकार आख्यानों से विकसित रामकथा को वाल्मीकि ने कथा का रूप प्रदान किया। इसी कथा को अनेक लोकतत्वों से युक्त करके लोकजनता की भाषा में प्रस्तुत करके गोस्वामी तुलसीदास ने लोकमंगल का कार्य किया।

रामचरितमानस में रामकथा

लोकप्रियता की दृष्टि से संभवतः रामकाव्य परंपरा के सभी कवियों में अग्रणी गोस्वामी तुलसीदास अनन्य रामभक्ति एवं समन्वय भावना के अग्रदूत थे। वाल्मीकि रामायण में रामकथा के एक संपूर्ण जीवन की कल्पना प्रस्तुत की गई थी, जिसे तुलसी ने परिष्कृत किया। महाकवि तुलसीदास भक्ति भावना एवं पाण्डित्य के अतिरिक्त अपनी लोककल्याणकारी काव्यप्रतिभा के कारण समाज के सर्वाधिक लोकप्रिय जनकवि के रूप में प्रतिष्ठित हैं। स्वयं लोक की उपज होने के कारण उनका काव्य भारतीय लोकसंस्कृति का विशाल स्वच्छ दर्पण है। तुलसीदास की प्रायः समस्त रचनाएँ रामकाव्य को आधार बनाकर लिखी हुई हैं। विवाह के नहच्छू को चित्रित करनेवाला रामलाला नहच्छु, विवाहवर्णन करनेवाला जानकीमगल, रामकथात्मक गीतों का संग्रह गीतावली, कवितावली सबकुछ रामकथा पर आधारित हैं। इनमें रामचरितमानस सबसे प्रसिद्ध एवं बृहदाकार ग्रन्थ है।

लोक में रामकथा की महिमा, रामकथा का अध्यात्म, रामकथा का माधुर्य, रामकथा का लोक संपर्क तथा रामकथा का जीवन दर्शन सबकुछ तुलसीदास ने बडे मनोयोग से काव्य की विविध सरणियों में काव्य के विभिन्न रूपों में भक्तिभावसहित अभिव्यंजित किया है। गोस्वामी जी ने स्वयं रामकथा का आस्वादन किया है, साथ ही साथ लोकजनता को इसका आस्वादन कराने में सफल बन गये। इसका आस्वादन करनेवाले वक्ता भी हैं और श्रोता भी हैं। रामचरितमानस में संपूर्ण रामकथा चार संवादों में दिखलायी है। शिव-पार्वती संवाद, काकभुशुण्डी-गरुड संवाद, याज्ञवल्क्य-भरद्वाज संवाद तथा तुलसी-जनता संवाद। मानस अपने आपमें एक सरोवर है और ये चार संवाद इस सरोवर के चार

घाट भी हैं। तुलसी की रामकथा इस प्रकार सोद्देश्य जान पडती है। लोकजनता इससे पूर्ण रूप से परिचित भी है।

अपने महान् ग्रन्थ 'रामचरितमानस' में तुलसी ने रामकथा को समग्र रूप में चित्रित करने का प्रयत्न किया है। इस ग्रन्थ के बारे में यों कहा है कि

"नानापुराणनिगमागमसम्मतं यद्
रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि।
स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा
भाषनिबन्धमतिमञ्जुलमातनोति।।"[1]

सात काण्डों में विभक्त इस विशालकाय महाकाव्य को तुलसी ने लोकजीवन को प्रभावित करनेवाले दोहा-चौपाई छन्द एवं अवधी भाषा में प्रस्तुत किया। उत्तरभारत की जनता इसे धर्मपोथी के रूप में मानती है। यही इसकी लोकप्रियता का प्रमाण है। तुलसी की रामकथा ने भारतीय मानस को आत्मबल प्रदान किया है। इस अर्थ में तुलसी की रामकथा भारतीय मानस की निधि है।

तुलसी अपने मानस में इतिहास, साहित्यशास्त्र, अध्यात्म तथा लोकतत्व इन तीन धाराओं का संगम लोकचित्त की भूमि पर कराते हैं। इस प्रकार बालकाण्ड से लेकर उत्तरकाण्ड तक रामकथा के अनेक प्रसंग रामचरितमानस में तुलसी ने चित्रित किये हैं। लोकजीवन में यह किसी न किसी प्रकार प्रभाव डालने में सक्षम है। इसमें कोई संदेह नहीं।

लोकजीवन, लोक की आकांक्षा, लोकमर्यादा लोकाश्रय, सौंदर्यदृष्टि लोक की शक्ति का प्रतिबिंब, लोक भाषा में रचित लोकरक्षक मानव राम के चरित्र में साकार हुआ। इसलिए तुलसी की रामकथा लोक की महान् परंपराओं का छविग्रह बन गयी। लोकरीति,

---

1. रामचरितमानस - 1/7

अंधविश्वास, लोकचेतना, लोकाभिरुचि आदि लोकवार्तागत तत्वों का प्रतिनिधित्व करनेवाले लोकनायक के रूप में गोस्वामी तुलसीदास भी उपस्थित हुए। इस प्रकार रामकथा के विकास में लोकप्रतिभा तथा कल्पना का विशेष हाथ रहा है। समस्त संसार का प्रतिनिधित्व करनेवाली रामकथा के बारे में डॉ. सत्येन्द्र का मत उल्लेखनीय है कि "शिव पार्वती के आख्यान और उनके संवाद का समावेश रामकथा है। समस्त देवताओं में शिव-पार्वती सबसे अधिक लोकवार्तातत्ववाले देवता हैं। अतः रामचरितमानस की मूलकथा लोकसंस्कृति के अनेक तत्वों तथा लोककथा की रूढ़ियों की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है। यही कारण है कि तुलसी के हाथों में पडकर रामकथा संस्कृति और विश्वासों का एक अमोघ माध्यम हो जाती है।"[1] इस प्रकार भारत में प्रचलित सभी प्रकार की रामकथाओं को दृष्टि में रखकर उनके साधक तत्वों को चुनकर तुलसी ने अपनी रामकथा के रूप को खडा किया। लोकजीवन में इसका गहरा प्रभाव भी पडा।

केरल के लोकगीतों में रामकथा

उत्तरभारत के समान दक्षिण में भी रामकथा संबन्धी बहुत लोकगीतों का प्रचार-प्रसार है। लोकसाहित्य एवं लोकककलाओं का संबन्ध वस्तुतः जनजीवन से होता है। ये लोकजीवन के अभिन्न अंग होते हैं। लोकसाहित्य के अंतगत लोकगीतों का महत्वपूर्ण स्थान है। केरल के अपने अनेक लोकगीत हैं। जैसे कृषि-संबन्धी, विनोदपरक, भक्तिपरक उद्योगसंबन्धी, धर्म-संबन्धी आदि।

केरल के लोकगीतों में रामकथा के अनेक प्रसंग दिखाई पड़ते हैं। कृत्रिमता के बदले स्वच्छन्द ताल-लय तथा सरल एवं सहज भावों की अभिव्यक्ति इसकी विशेषता है। आंतरिक उद्‌गारों एवं विकारों को अभिव्यक्त करने में ये गीत अत्यंत समर्थ रहे हैं। केरल

---

1. मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का लोकतात्विक अध्ययन - डॉ. सत्येन्द्र पृ. 425

की एक पिछडी हुई जाति है इनकी कई कलाएँ हैं। 'कुऱवर कळि (कुऱवर नाच) कुऱत्तिपाट्टु (कुऱत्ती गीत) आदि इनमें मुख्य हैं। इनमें रामकथा पर आधारित विशेष प्रकार के लोकगीत प्रयुक्त होते हैं। मारीच स्वर्ण मृग बनकर जब सीता को मोह लेते है, उस समय राम-सीता के आपसी वार्तालाप एक लोकगीत का कथ्य बन जाती है। देखिए

"मारीच स्वर्णमृग बनकर खेलता है सीता के सामने।

तानिनन्ना तानिनन्ना तानिनन्ना।।[1]

यहाँ 'तानिनन्ना' की ताल-लययुक्त धुन के कारण यह लोकगीत अत्यंत रोचक बन गया।

एक लोकगीत में 'कुऱव' जाति की एक स्त्री और पुरुष के अयोध्या पहुँचकर सन्तान के अभाव में दुःखी दशरथ की पत्नियों की हस्तरेखा देखकर फल बताने का चित्रण है। इस भविष्यकथन में रामकथा उभर आयी है।

"निङ्ङ्ळुटे कैक्कु नल्ला योगमुण्टु चोल्वान् मून्नु माताक्कळ्क्कुं कूडि

नालु पुत्रन्मारुण्टां नाल्वरिलुं मूत्तवनु रामनेन्नु पेरां।[2]

(अर्थात् तुम्हारे हाथ बडे तकदीर के हैं। तीनों माताओं के चार पुत्र होंगे। चारों में बडा राम कहलाएगा।)

कुरव जाति में प्रचलित एक ओर ढंग की लोकगीत है कुरत्ती पाट्टु। कुरव की पत्नी (स्त्री) कुरत्ती है। घर-घर जाकर हस्तरेखा देखकर भविष्यकथन करके ये मुख्य रूप

---

1. मारीचन-पोन्मानायिक्कळिच्चिता सीता मुंपिल्।
   तानिनन्ना तानिनन्ना तानिनन्ना।।"
   केरळ् भाषागानङ्ङळ् भाग-2 केरल साहित्य अकादमी पृ. 139
2. केरळ् भाषागानङ्ङळ्, भाग 2, केरल साहित्य अकादमी - पृ. 140

से जीविका चलाती है। उत्तररामायणम् कुऱत्तिप्पाट्टु पाताळरामायणम् कुऱत्तिपाट्टु'[1] भी प्रसिद्ध है।

घर-घर में जाकर बाजा बजा-बजाकर ताल-लय समेत पुराण कथाओं का गायन करके पाणर जाति के लोग भी अपनी जीविका चलाते हैं। इस गीत को पाणप्पाट्टु (पाण गीत) कहते हैं। आषाढ़-श्रावण महीनों में सूर्योदय के पहले ही इस जाति के पुरुष और स्त्री किसी संपन्न घराने में पहुँचकर 'तुडि'[2] बजा-बजाकर घरवालों को जगाते हैं। घरवाले जाकर आँगन में दीपक जलाकर रख देते हैं और फिर पाणर गाने लगते हैं। 'पाणर के लोकगीतों में' रामकथा के अहल्यामोक्ष, सीता-विवाह, रावणवध जैसे प्रसंगों को मुख्य स्थान प्राप्त है। गीत के एक-एक छन्द की इति 'श्री रामजय' के स्तुतिवचनों से होती है।'[3]

वेलर् नामक जाति के लोगों के बीच में ही रामकथा संबन्धित अनेक लोकगीत प्रचलित हैं। ये लोग घर-घर जाकर ढिंढोरा जैसा बाजा बजा-बजाकर शत्रु दोष तथा अन्य बाधाओं के हरण-हेतु ईश्वर के स्तुतिगीत गाते हैं। 'दशावतार' उनमें प्रचलित एक लोकगीत है, जिसमें राम के बारे में कहा गया है।

"भुवनपति दशरथनु
तनयनाय् पिरन्नितयोध्ययिल्
लक्ष्मितन्नुटे हेतुवाले
वधिच्चु रावण राजने।"[4]

---

1. पाट्टुकळ् केरल विश्वविद्यालय भाग 2
2. तुडि डफला जैसा एक वाद्य
3. रामकथा विविध आयाम - डॉ. रमानाथ त्रिपाठी - पृ. 194
4. केरळ् भाषा गानङ्ङळ् (2) पृ. 102

(अर्थात् राजा दशरथ के पुत्र के रूप में अयोध्या में राम ने जन्म लेकर लक्ष्मी हेतु रावण का वध किया। और पृथ्वी को यथाविधि पाला। दुष्ट राक्षसों के वंश का नाश करके शिष्ट जनों को यथाविधि राम ने पाला) राम के लोक-रक्षक रूप का भव्य चित्र इस लोकगीत में अंकित हुआ है।

केरल की नारियों में प्रचलित एक प्राचीन विनोदकला थी 'अम्मानंकळि' जिसकेलिए विशेष ढंग के गीत गाये जाते थे। शादी के समय अम्मानम्[1] गाने की प्रथा प्रचलित थी, जिसमें रामायण की कथा का प्रयोग होता था।' स्त्रियों के द्वारा गीत गा-गाकर उसके ताल-लय के अनुकूल छोटे गेंद या छोटे फल ऊपर की ओर फेंक-फेंक कर पकडने के खेल को 'अम्मानयाट्टं' भी कहते हैं। राम के जन्म से लेकर स्वर्गारोहण तक की कथा लगभग 200 पंक्तियों में अम्मानगीत में प्रस्तुत है।

इसके अलावा राम-सीता के आपसी प्रेम अनेक लोकगीतों का विषय रहा है। राम के साथ वन जाने केलिए उद्यत सीता को किसी न किसी प्रकार मना करने का चित्रण-

रायुमिल्लविडे पकलुमिल्ले।
वेट्टमिल्लविडे वेळिच्चमिल्ले।"[2]

(अर्थात् दिन-रात नहीं है वहाँ, उजाला या रोशनी भी नहीं। वहाँ आदित्य की किरणें पहुँचती नहीं तथा शंखनाद भी सुनायी नहीं पडता। कुत्तों की भौंक भी सुनायी नहीं पड़ती। मुर्गों का रव भी नहीं रहा। वहाँ साँप तथा घोर अजगर है, नर वहाँ चलते भी नहीं। अतः वहाँ मत जाना)

---

1. अम्मानम् केरल के विनोदों में एक है : सिर पर रखे पानी के घडे से गिरनेवाली बूँदों के अनुकरण पर तालबद्ध रूप में नृत्य करने की क्रिया।
2. ओरुन्नूरु नाडन पाट्टुकळ् पृ. 73

यहाँ तत्कालीन लोकमानस का भोलापन दिखाई पडता है।

राम को ईश्वरीय परिवेश देकर या भगवान मानकर उनकी भक्ति में गाये जानेवाले लोकगीत भी उपलब्ध हैं। एक लोकगीत में हनुमान् द्वारा लंका-दहन तथा सीता की खोज की कथा अंतर्लीन है। यों कहा है

"अमृतमितमित्तिरि रसिच्चोरु रामा
सुकृतमिवनेकान् तोषुन्निन्नु निन्ने।"[1]

(अर्थात हे राम! अमृत रस रसिक है। तू मुझे पुण्य प्रदान कर दे। मैं तुमको प्रणाम करता हूँ।)

परम्परा की लीक से हटकर कुछ लोकगीत ऐसे हैं, जो सुनी-सुनायी कथा के आधार पर गाये जाते हैं। केरल में प्रचलित एक लोकगीत के अनुसार सीता परित्याग का कारण धोबी का प्रवाद नहीं, बल्कि सासों का षडयंत्र है। इस गीत के अनुसार सासों के हठ के कारण सीता रावण का चित्र खींचती है। इस पर राम के प्रश्न करने पर सासें सीता को दोषी कहती हैं। और इस कलंकिनी को त्यागने केलिए कहते हैं इस लोकगीत के अनुसार अपनी माताओं के आग्रह पर ही राम सीता का त्याग करते हैं। प्रस्तुत लोकगीत में सास-बहू के बीच के कटु-कर्कश रिश्तों व षडयंत्रों का अच्छा खासा चित्र उभर आया है। रामकथा के प्रसंग की यह लोकमानस की मौलिक उद्‌भावना ही है।

इस प्रकार केरल के लोकगीतों में रामकथा के जो प्रसंग उभर आये हैं, वे प्रचीनकाल से ही केरलीय जनमानस में चिरप्रतिष्ठित राम के प्रति आस्था के सप्राण प्रमाण प्रस्तुत करनेवाले हैं। आज भी अनेक अवसरों पर लोकगीतों की झाँकी देखी जा सकती है। रामकथा लोकमानस तथा लोकजीवन में इतना घुलमिल गयी है कि उसे अलग नहीं कर सकते।

---

1. ओरुन्नूरू नाडन् पाट्टुकळ् पृ. 73

मलयालम लोकनाट्यों में रामकथा

जिस प्रकार केरल के लोकगीतों में रामकथा का प्रचार-प्रसार हुआ, उसी प्रकार लोकनाट्यों में भी रामकथा के विभिन्न प्रसंग देखने को मिलते हैं। कूडियाट्टम, पावक्कूत्त जैसी नाट्यविधायें छठी शताब्दी में पल्लव राजाओं के शासनकाल में शैव मन्दिरों में प्रचलित थीं। केरल में भी यह प्रथा चलती थी। कूडीयाट्टम केलिए रामकथा प्रचुरमात्रा में प्रयुक्त होती थी। रामकथा के महत्वपूर्ण प्रसंगों को विविध भावों में अभिनय करके लोकजनता को आनन्दित करना इसका लक्ष्य था। बाद में कूडियाट्टम का स्थान कथकळि ले लिया।

रामकथा पर आधारित एक महत्वपूर्ण लोकनाट्य है पावक्कूत्त। इस केलिए रामायणकथा प्रसंग सर्वाधिक अनुकूल माने जाते हैं। इसके अधिकांश भाग तमिल के कंबरामायण और संस्कृत से भी लिये गये हैं। गुडियों को डुला डुलाकर संवादों एवं गीतों में विकसित होनेवाली इस नाट्य परंपरा ने निस्सन्देह रामकथा के विकास में अपना सहयोग दिया है। यह ग्रामीण मन्दिरों में विशाल अहातों में प्रस्तुत की जाती थी। राजस्थान की कठपुतलियों से कुछ समानता रखनेवाली इस कला में सिद्धहस्त लोग परदे पर कठपुतलियों से रामायण का अभिनय करते थे। स्वयं गाते, कथा कहते, इस माध्यम से छोटी पीढ़ी से लेकर बुजुर्ग पीढ़ी तक के लोग मनोरंजन और कथा श्रवण करते थे लोकजीवन पर इस कला ने ज़्यादा प्रभाव डाला है।

दक्षिण भारत के तमिळ, तेलुगु, कन्नड भाषा-भाषी क्षेत्र की ग्रामीण जनता में प्रचलित यक्षगान की कथावस्तु भी रामायण, महाभारत और भागवत की पौराणिक एवं लोकप्रिय कथाओं में मानी जाती है। केरल के लोकनाट्यों में यह कला नही। दक्षिण केरल का एक प्रमुख नृत्य है कथकळि, जिसकी कतिपय भाव भंगिमाओं का आधार रामकथा है। खुले मंच पर इसका अवतरण होता है। यह लोकमंच लोकजीवन से संबन्धित कला की

दृष्टि से उनकी सूक्ष्म अभिव्यक्ति लोकजीवन के अनेक अंशों में समुचित व्यंजना है। संगीत में निबद्ध कथा होने के कारण यह जन सामान्य को आसानी से स्पर्श करने में सहायक सिद्ध होती है। 'कथकळि' नाट्यविधा का प्रारंभिक रूप रामनाट्टम था जिसकी रचना कोट्टारक्करा नामक राजा ने की थी। रामकथा के आठ प्रसंगों को आठ दिनों के काव्य का रूप दिया गया। कथकळि धारा के कुछ रामकाव्य हैं - श्रीरामावतारम्, सीताविवाहम्, पादुकापट्टाभिषेकम् आदि। मन्दिरों तथा महलों में भगवान् राम के प्रति भक्ति से पूरित कथकळि काव्य प्रस्तुत किये जाते थे। लोकमानस के विषय में यह लोकनाट्य प्रभावपूर्ण एवं मनोरंजनात्मक भी है।

इस प्रकार लोकनाटकों का अधिकांश आधार लोकगीत हैं। लोकजीवन से इसका नाता गहरा है। धार्मिक तत्वों से परिपूरित होते हुए भी सामाजिक जीवन का चित्र, अभाव, दैन्य, चमत्कार, हास, परिहास, की सामग्री उनके गतिशील जनसुलभ भावों का प्रतिनिधित्व भी करती है।

वस्तुतः उत्तरभारत के समान रामकथा दक्षिण में भी लोकगीतों एवं लोकनाट्यों के रूप में अवतार लेकर जन-जीवन को परिपुष्ट बनाती है। प्रचीनकाल से ही ये धाराएँ जन-जीवन के साथ इतना अटूट संबन्ध रखती आई हैं कि इसे अलग करना असंभव है। रामकथा संबन्धी समस्त लोकतत्व से परिपूरित एषुत्तच्छन और उनके अध्यात्मरामायणम् आज भी लोकजीवन में एक अमूल्य संपत्ति की तरह विराजित हैं। इनका प्रभाव मलयालम रामकाव्य पर अवश्य देखा जा सकता है।

मलयालम रामकाव्य में लोकतत्व

जिस प्रकार हिन्दी में रामकथा का विकास लोकगीतों से शुरू होता है, उसी प्रकार मलयालम में रामकथा की उत्पत्ति एवं विकास लोकगीतों से माना जाता है। मलयालम साहित्य में रामकथा संबन्धी सर्वप्रथम गीत चीरामन नामक कवि द्वारा रचित

रामचरितम् में देखा जा सकता है। प्राचीनकाल में केरल के एक छोर से दूसरे छोर तक रामचरितम् का प्रचार-प्रसार रहा है। गीतों में रचित यह काव्य लोकजनता के साथ अटूट संबन्ध स्थापित करने में सफल रहा। वाल्मीकि रामायण के युद्धकाण्ड को आधार बनाकर द्राविड छन्द में इसकी रचना हुई। कम्बर एवं वाल्मीकि का प्रभाव भी इस पर विद्यमान है। तमिष़ प्रभाव के कारण तमिष़ शैली का आगमन इस काव्य को और पुष्ट बनाता है। मुख्य प्रतिपाद्य युद्धकाण्ड होते हुए भी अयोध्याकाण्ड, सुन्दरकाण्ड आदि को मनोहर ढंग से चित्रित करके कवि ने लोक के साथ तादात्म्य प्राप्त किया है। यह कृति गीतों में रचित होने के कारण सामान्य जनता केलिए चित्ताकर्षक रही और उनके प्रतिदिन के जीवन से अटूट संबन्ध रखने वाली रही।

रामचरितम् के बाद रामकथा के संपूर्ण स्वरूप को गीतों में व्यक्त करके अय्यप्पिल्लि आशान के रामकथापाट्टु ने लोकसाहित्य और लोकजीवन में गहरा प्रभाव डाला। तमिल शब्दों का प्रयोग, द्रविड छन्दों की अधिकता, गीतों में कथा रचना आदि इस कृति को लोकप्रिय बनाने में सहायक सिद्ध हुए। वैष्णव मन्दिरों में गायी जानेवाली यह कृति 'चन्द्रवलय' नामक वाद्य के माध्यम से गायी जाती थी। 'रामचरितम्' की तरह युद्धवर्णन को प्रतिपाद्य के रूप में लेने के कारण लोकमन पर गहरा प्रभाव डालने में यह ग्रन्थ सफल रहा। अक्सर युद्ध कथाएँ सुनने-सुनाने में लोग तत्पर दिखाई पडते हैं। "रामचरितम् के समान गीतों में विरचित इस कृति को ऐतिहासिक एवं लोकमहाकाव्य के रूप में माना जाता है। प्रस्तुत कृति का मुख्य उद्देश्य भी रामचरितम् की कमियों को पूरा करते हुए जनता को संगीतमाधुरी में रामकथा का आस्वादन कराना बताया गया है।"[1] समय वर्णन, व्यंग्यार्थ प्रधानता, शब्द सौन्दर्य, नाटकीयता आदि विशेषताओं से भरपूर यह कृति जन-जन में जीवित है। केरल के सर्वप्रथम गेय महाकाव्य के रूप में इसे माना गया है। आज भी

1. रामकथाप्पाट्टु अय्यप्पिल्लि आशान भाग 1 पृ. 35-36

तिरुवनन्तपुरम के पद्मनाभस्वामी मन्दिर में उत्सवों के समय इसका गायन होता है। वाल्मीकि का अन्धानुकरण न करके रामकथा का नवीन आख्यान करने के कारण साधारण जनता के बीच उतरकर जनता को आकृष्ट करने में यह कृति सफल बन गई है।

रामकथा का प्रारंभ तो वास्तव में रामचरितम् में हुआ था, लेकिन इससे भिन्न संस्कृत के विशेष आवृत्त में रामकथा का समुचित विकास मलयालम में रामप्पणिक्कर के कण्णश्शरामायण में ही आकर हुआ। गीतों से होकर स्वच्छन्द काव्य विहरण करके मलयालम साहित्य को विजयोन्नति की ओर ले जानेवाले कवियों में निरणम कवियों का नाम प्रसिद्ध है, विशेषकर रामप्पणिक्कर और उनका कण्णश्शरामायणम्। अपनी विशिष्टता एवं मनोहारिता के कारण कण्णश्शरामायणम् लोकजनता को आकर्षित करने में सफल बन गया। सर्वप्रथम रामकथा को भक्ति के सुन्दर आवरण में सजाने का कार्य भी उन्होंने किया। इस दृष्टि से तुलसी एवं एषुत्तच्छन के निकट वे आते हैं। रामप्पणिक्कर ने भक्ति के विशुद्ध भाव को काव्य में प्रवाहित करने एवं रामकथा को तद्वारा केरलीय मन के संशोधन के उपयुक्त बनाने का प्रेरणात्मक कार्य भी किया। इस रामायण का महत्व इस बात में है कि यह परवर्ती समस्त रामकथाओं केलिए मार्गदर्शक एवं प्रेरणादायक रहा है।

कण्णश्शरामायणम् को आधार बनाकर रचित मलयालम रामकथात्मक रचनाओं, में पुनम नंपूतिरी का 'भाषा रामायण चम्पु' सबसे आगे हैं। संस्कृत ग्रन्थों के श्लोकों, शब्दों, प्रसंगों, एवं शैलियों का सहज, चित्रण होते हुए भी सामान्य जन जीवन को प्रभावित करने में यह सफल बन गया। चाक्यारों केलिए प्रियंकर इस चम्पू के विभिन्न प्रसंग कई बार 'कूत्तु' एवं 'कूडियाट्टम' केलिए प्रयुक्त किये गये हैं। ये कलाएँ लोकजनता को मनोरंजन प्रदान करनेवाली हैं। कथाकथन, वर्णनात्मकता, विकारों की अभिव्यक्ति और संवाद, शब्द और अर्थ के समुचित योग, सजीव वर्णन, सूक्ष्म एवं सरस भावयोजना आदि अत्यंत हृदयाकर्षक हैं। इस प्रकार लोकोत्तर वैशिष्ट्य से युक्त रामायण-कथा को मनोहर कथाशिल्प में उतारकर

उसे एक समुन्नत स्थान पर प्रतिष्ठित करने का सफल कार्य पुनम ने किया है। रावणोत्सव, रामावतार, अहल्यामोक्ष, सीता स्वयंवर बालिवध जैसे 24 प्रबन्धों में संपूर्ण रामकथा का प्रतिपादन हुआ है।

इसके अतिरिक्त मलयालम की रामकथा संबन्धी रचनाओं में सर्वाधिक लोकप्रिय सोलहवीं शताब्दी में जीवित एषुत्तच्छन ही रहे हैं, जो विषय एवं भक्ति चित्रण में तुलसीदास के अधिक निकट है। उनका अध्यात्मरामायणम् केरलीयों की धर्मपोथी है। एषुत्तच्छन का अध्यात्मरामायणम् मुख्यतः संस्कृत अध्यात्मरामायणम् का ही मलयालम रूपान्तर है। अध्यात्मरामायणम् के विशेष गंभीर प्रसंगों में बाललीला, अहल्यामोक्ष, विच्छिन्नाभिषेक, अगस्त्यस्तुति, रावण मारीच संवाद, लंकादहन आदि प्रमुख है। अध्यात्मरामायणम् में एषुत्तच्छन ने किळिप्पाट्टु नामक काव्य रूप को प्रस्तुत किया। आगे विस्तार से इसका वर्णन किया गया है।

एषुत्तच्छन के बाद रामकथात्मक काव्यों में केरलवर्मा के केरळवर्मा रामायण, आट्टक्कथा के रूप में रचित कोट्टारक्करा तंपुरान का रामनाट्टम् आदि का प्रमुख स्थान है। वाल्मीकि रामायण पर आधारित काव्य होने के कारण केरलवर्मा रामायण का दूसरा नाम 'वाल्मीकि रामायण किळिप्पाट्टु' है। लोकजीवन से इसका यह संबन्ध है कि लोकजीवन से जुडी हुई कथकळि काव्यधारा को इस रामकाव्य ने बहुत कुछ दिया। इस नाट्यप्रधान काव्य का प्रारंभिक रूप रामनाट्टम था। रामकथा के आठ प्रसंगों को आठ दिनों के काव्य का रूप दिया गया। तुळ्ळल काव्यधारा के प्रमुख कवि श्री कुंचन नंपियार ने छः प्रमुख रामकथाश्रित तुळ्ळल काव्य लिखे हैं। सीता स्वयंवर इसमें उल्लेखनीय है। आज भी अनेक ग्रामीण मन्दिरों में उत्सवों के समय इस कला का प्रदर्शन होता है। लोकजनता इसे अपनी कला के रूप में मानती है। आधुनिक युग में रामकाव्य का वह स्वरूप नहीं रहा जो प्राचीन युग में था। मलयालम रामकाव्य परंपरा में सर्वलक्षणों से युक्त

महाकाव्य के रूप में अष्कत्तु पद्मनाभकुरुप्प कृत रामचन्द्रविलास को श्रेष्ठ माना जाता है। तुलसी रामायण से विकसित श्रीराम भक्ति इस रचना का मार्गदर्शक है।

अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में रामकथा

जिस प्रकार उत्तरभारत की जनता गोस्वामी तुलसीदास और उनके रामचरितमानस को कण्ठहार के रूप में मानकर अपने को धन्य मानती है, उसी प्रकार दक्षिण केरल की जनता के सामने एषुत्तच्छन और उनके अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु का स्थान ऊँचा है। पहले देखा जा चुका है कि हिन्दी की तरह मलयालम साहित्य में भी रामकथा की उत्पत्ति लोकगीतों से हुई है। ये लोकगीत लोकजीवन में गहरा प्रभाव डालने में सफल भी बन जाते हैं। भारतीय जनता के आराध्य पुरुष श्रीराम के चरित को भक्ति से परिपुष्ट करते हुए एक आध्यात्मिक विद्वान के सर्वश्रेष्ठ तल पर रहते हुए एषुत्तच्छन ने केरलीय जनता केलिए प्रस्तुत किया। रामकथा पर आधारित उनका 'अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु' केरल की जनता केलिए अमूल्य रत्न है। इसमें वे रामकथा का सीधा वर्णन नहीं करते,बल्कि एक शुकी को कथा के वर्णन केलिए निमंत्रित करते हैं। इस प्रकार रामकथा से संबन्धित अन्य कृतियों की अपेक्षा इसमें उन्होंने किळिप्पाट्टु शैली को स्वीकार किया। एषुत्तच्छन रामकथा के क्षेत्र में इस नूतन रीति को लानेवाले लोककवि थे ।

एषुत्तच्छन ने अपनी इन्द्रधनुषी कल्पना, मधुवेष्टित भावना और सुनियोजित जीवन दर्शन के अतिरिक्त अनेक लोकतत्वों को जुटाकर अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु को लोकजनता के सम्मुख प्रस्तुत किया। एषुत्तच्छन ने बालकाण्ड के आरंभ में इष्ट देवता श्रीराम की वन्दना की है, और अपने उद्देश्य को स्पष्ट किया है। जैसे

"वेदसम्मितमाय मुंपुळ्ळा श्रीरामायणम्
बोधहीनन्मार्कऱियान् वण्णम् चोल्लिडुन्नेन्।"[1]

---

1. अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु पृ. 4

(अर्थात् वेदों में वर्णित यह रामायण साधारण जनता केलिए प्रस्तुत करता हूँ।) जनसाधारण की भाषा में साहित्य सृजन करने का आह्वान इसमें हुआ है। राजधर्म, समाजधर्म, जीवन धर्म आदि का समावेश इस कृति में हुआ है, जो लोक केलिए अत्यंत उपयोगी है। इस कृति के माध्यम से कवि केरल में सांस्कृतिक नवजागरण का मार्ग प्रशस्त कर रहे थे। आस्था और आशा से जीवन को आलोकमय बनाने का संदेश उसकी विशेषता है।

लोकजीवन के यथार्थ से परिचित एषुत्तच्छन के रामायण में एक शताब्दी का स्पन्दन गूँज उठता है। सत्य और मूल्यों की स्थापना वे चाहते थे। रामचरितमानस की तरह अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु का आरंभ भी उमा-महेश्वर संवाद से है। अध्यात्मरामायणम् में छः काण्डों में रामकथा वर्णित है। यह कृति संस्कृत अध्यात्मरामायण का छायानुवाद है। केरल की ग्रामीण जनता के नाम जप परंपरा को याद दिलानेवाले श्रीराम से संबन्धित कथाएँ इसमें भरी हुई हैं। श्रीराम को लोकनायक के रूप में एषुत्तच्छन ने भी चित्रित किया है। उनके दार्शनिक विचारों का राम ईश्वर भी हैं। फिर भी लोकजीवन से मिलता जुलता जीवन बितानेवाले एक सच्चे मानव के रूप में उन्होंने राम का चित्रण किया है। रामचरितमानस की तरह इसकी रामकथा ज़्यादा विस्तारपूर्ण नहीं। संपूर्ण रामकथा को एषुत्तच्छन ने एक क्रांतदर्शी कवि के रूप में देखा। इसलिए इसमें उतना विस्तार दिखाई नहीं पडता।

मलयालम वर्ष के 'कर्कटकम्',[1] महीने में भक्ति के साथ लोग इसका परायण करते हैं। यह इस बात का प्रमाण है कि एषुत्तच्छन तथा उसका अध्यात्मरामायणम् जन-जन में जीवित है, जिसके माध्यम से रामकथा अब भी प्रख्यात बन गयी है। रामचरितमानस की तरह अध्यात्मरामायणम् में भी लोकचेतना, लोकाभिरुचि, रीति-रिवाज़ का चित्रण करके लोकजीवन के साथ तादात्म्य प्राप्त करने का प्रयास किया गया है।

---

1. आषाढ़ का अंतिम तथा श्रावण का पहला भाग

निष्कर्ष

रामकथा भारतीय जन-जीवन में गहराई में पैठकर आत्मा को शुद्ध करने का साधन बन गई है। आधुनिक युग में मनुष्य ने पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावित होकर अपनी संस्कृति, अपने ज्ञान-विज्ञान और शक्ति का भरोसा छोड दिया। घोर अनास्था से युक्त विज्ञान के इस युग में जब तक मानवता की वृद्धि नहीं होती, निम्न वर्गों के प्रति उदार दृष्टिकोण नहीं होता, भ्रष्टाचार, कुण्ठा, स्वार्थलिप्सा आदि का समापन नहीं होता, तब तक रामकथा के माध्यम से ही विश्वमानवता की भावना सरलता एवं सहजता के साथ अभिव्यक्त हो सकती है। सब कहीं यांत्रिकता एवं जड़ता फैल रही है। भारतीय पारिवारिक मूल्य राम परिवार के आधार पर ही बने और आज भी भारतीय मानस इन मूल्यों में विश्वास करता है। रामकाव्य इन सब मूल्यों का एक भण्डार है। हिन्दी और मलयालम साहित्य में लोकगीतों से विकसित यह रामकथा विकास की चरमोन्नति तक पहुँच गई है। रामकथा को उच्च शिखर तक पहुँचाने का कार्य हिन्दी में गोस्वामी तुलसीदास और मलयालम में एषुत्तच्छन ने किया। लोकमंगल की साधना से युक्त मानस एवं अध्यात्मरामायणम् भारतीय सांस्कृति एवं साहित्य की दो अमूल्य निधियाँ हैं। इसी दृष्टि से ये दोनों ग्रन्थ लोकजीवन, लोकसंस्कृति से अटूट संबन्ध रखकर लोककाव्य की श्रेणी में पहुँचते हैं। अनेक लोकतत्वों के साथ विरचित ये रामकथात्मक ग्रन्थ संपूर्ण विश्व में राम के चरित का गायन करके हर एक के मन में ज्योति जगा देते हैं।

.....📖.....

दूसरा अध्याय

रामचरितमानस एवं अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु - सामान्य परिचय

साहित्य, संस्कृति, दर्शन, कला से सुसंपन्न भारत की विशेषता रही है अनेकता में एकत्व की भावना। अनेक पुण्यात्माओं को जन्म देनेवाले इस परिपावन देश के उत्तरी और दक्षिणी छोर ऐसी दो कडियाँ हैं, जिनमें लोकजीवन के साथ अपने को जुडाकर उसी लोकजीवन का एक अभिन्न अंग बनकर गोस्वामी तुलसीदास एवं तुंचत्तु रामानुजन् एषुत्तच्छन अवतरित हुए। भारत देश इनके आगमन से सूरज के पुनीत, पावन स्पर्श की तरह पवित्र हो गया।

बाहरी रहन-सहन में भिन्न-भिन्न रहते हुए भी आन्तरिक तौर पर तुलसी एवं तुंचन एक ही रहे हैं। उत्तरभारत में तुलसी का रामचरितमानस एवं केरल में एषुत्तच्छन का अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु असली अर्थों में भारतीय संस्कृति रूपी लंबे सूत्र में पिरोये गये दो अमूल्य सुमनों के समान हैं। लोकजीवन का सुन्दर चित्र दोनों कृतियों में लहराता दिखाई पड़ता है। तुलसी और तुंचन समकालीन रामभक्ति की छाया में अपने व्यक्तित्व निर्माण एवं रचना प्रक्रिया का श्रीगणेश करके पले और बढे हुए थे। प्रादेशिक भिन्नताओं के होते हुए भी एक ही मूल प्राचीन सांस्कृतिक स्रोत की ओर लक्ष्य करनेवाली ये समान बातें भारत-भर में एक ही स्तर पर प्राचीनकाल से आज तक चली आ रही हैं। मध्यकाल के भक्तिमय वातावरण में हिन्दी और मलयालम में रामकाव्य लिखनेवाले श्रेष्ठ व्यक्तित्व के धनी थे तुलसी और तुंचन। 'भक्ति-तत्व, लोकानुभव, अद्वैत-पाठ, शब्द-संपत्ति, यथार्थ

कवितास्वादन की सरणि आदि के साथ अपनी चारों तरफ़ की परिस्थिति को उठाते हुए ईश्वर को दिखाकर निस्वार्थ और निष्काम कर्म करनेवाले जनसमूह की सेवा करनेवाले लोकनायक थे तुलसी और तुंचन।"[1] लोगों के रीति-रिवाज़ एवं लोकजीवन को मनोवैज्ञानिक गहराइयों की पृष्ठभूमि में तथा सशक्त ढंग से चित्रित करने का महान् कार्य इन्होंने किया।

तुलसी और तुंचन की अपूर्व प्रतिभा, कवन-कौशल एवं राम के प्रति विशेष भक्ति ने ही सामान्य जनता को रामचरितमानस एवं अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु की ओर आकर्षित किया। संस्कृत के ज्ञाता एवं पण्डित होते हुए भी इन्होंने 'भाग्यभोग्यारोग्ययोग्य पीयूष' का लोकभाषा में ही प्रणयन किया था। राम के शील को लोकभाषाओं में सर्वसुलभ बनाकर इन कवियों ने सच्चे प्रेम के मोहन रूप को सामान्य जनता के बीच प्रचलित किया। इस प्रकार स्थानगत एवं भाषागत अंतर को तोडकर समय की एक ही आवश्यकता की पूर्ति करने में ये दोनों कवि सफल बन गये। देश, समाज-तत्व, विश्वास, संस्कार, रीति-रिवाज़ आदि के प्रति इनका जो दृष्टिकोण है, यह ज़रूर ही उन्हें लोककवि घोषित करने में सहायता करता है। लेकिन तुंचन की अपेक्षा तुलसीदास का प्रभाव क्षेत्र ज़्यादा व्यापक है। 'तुलसीदास ने जिस भाषा में काव्य निर्माण किया, उसका संबन्ध भारतवर्ष की 46.3 प्रतिशत (पंजाबी और उर्दू को मिलकार) जनता से है जबकि तुंचन की भाषा का संबन्ध, केवल 164 लाख (4.1 प्रतिशत) मलयालियों से।'[2] सचमुच मानव-मन की मुक्ति को काव्य का प्रयोजन माननेवाले उच्चकोटि के कवि थे तुलसी और तुंचन।

भारतीय जीवन एवं संस्कृति के यथार्थ चित्र को प्रस्तुत करनेवाले तुलसी का रामचरितमानस एवं एषुत्तच्छन का अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु कालजयी रचनाएं हैं।

---

1. एषुत्तच्छनु ओरु अवतारिका - प्रो. कुञ्जिकृष्ण मेनोन् पृ. 24
2. हिन्दुस्थान इयर बुक-एस.सी. सरकार - पृ. 431

इन कृतियों में ग्राम्य और नागरिक भेद या वर्ग-भेद के गन्ध के बदले केवल रामभक्ति के अनुपम चित्र हैं, जो समस्त मंगल का मूल रहा है। लोकजीवन की प्रतिष्ठा केलिए लिखे गये इन श्रेष्ठ ग्रन्थों में लोकजीवन के स्वास्थ्य केलिए प्रत्येक औषधि मौजूद है। सनातन धर्म इनका प्रतिपाद्य होते हुए भी जनधर्म का विवेचन इनमें ज़्यादा है। रामचरितमानस और अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु ऐसे महाकाव्य है, जिनमें मानव जीवन की अनेक समस्याओं का समाधान होता है। ये लौकिक-आध्यात्मिक दोनों क्षेत्रों के अद्‌भुत मार्गदर्शक ग्रन्थ हैं। तुलसी तथा तुंचन ने इन ग्रन्थों में ऐसी मानवता की कल्पना की है, जिसमें उदारता, क्षमा, त्याग, धैर्य सहनशीलता आदि सामाजिक शिवत्व के गुण अपनी पराकाष्ठा पर मिलते हैं। इसी वैशिष्ट्य के कारण ये दोनों ग्रन्थ श्रेष्ठ काव्य के साथ ही धर्मग्रन्थ के रूप में लोकमान्य है और चिरकाल तक लोकप्रिय बने रहेंगे। भाषा-भाव, काव्य-सिद्धांत, रस-परिपाक, प्रबन्ध-चातुरी, साधुमत, लोकमत, अतीत-कथा, भविष्य पथप्रदर्शन आदि दृष्टियों से ये ग्रन्थ अपूर्व हैं। गरीब की झोंपडी से लेकर महाराजाओं के महलों तक ये ग्रन्थ पूजनीय माने जाते हैं। मानस तथा अध्यात्मरामायणम् आदर्शों से भरपूर होने के कारण वैयक्तिक हित, पारिवारिक सामंजस्य, सामाजिक संस्कार, राज्य परिष्कार तथा आध्यात्मोन्नयन के दृष्टिकोण से अनुपम रचनाएँ बन पड़ी है। सामान्य जनता इनसे अत्यधिक प्रभावित है। इन दोनों रचनाओं के ये लोकमंगलकारी तत्व चिरकाल तक लोकजीवन को प्रभावित रखेंगे।

तुलसी का जन्म एवं लोकविश्वास

रामचरितमानस के प्रणेता गोस्वामी तुलसीदास समस्त लोकस्पन्दन और युगचेतना के महान प्रतीक हैं। महान कलाकार की उन्नति उसके लोकानुभव से संपन्न होकर समाज में परिपुष्ट है। यहाँ तुलसीदास ऐसे एक लोककवि हैं जिनमें लोकमानस एवं लोकजीवन का असीम आकाश प्रतिच्छायित हो उठता है। तुलसी की अनुभूति इतनी व्यापक, संवेदनशील, सत्यकेंद्रित तथा दायित्वचेतना से परिपूर्ण है कि सभी युगों केलिए परम ग्राह्य है।

अधिकांश विद्वानों के मातानुसार तुलसी का जन्म संवत् 1589 में राजापुर गाँव के आसपास हुआ है। तुलसी के जन्म पर बधाइयाँ बजीं किंतु शीघ्र ही भविष्य की आशंकाओं से बन्द हो गई, और जननी-जनक को पुत्र-जन्म से परिताप भी हुआ। प्राचीनकाल में लोकसमाज में प्रचलित आम विश्वास को आधार बनाकर उसको परिपोषित करते हुए मानस में मूल नक्षत्र में जन्मे हुए बच्चे तुलसी को घर का नाश करनेवाला बताकर घर से निकाल देने का चित्रण किया है। ऐसा विश्वास है कि अभुक्त मूल नक्षत्र में जन्मे बच्चे का मुँह देखनेवाले की मृत्यु हो जाती है। यह विश्वास जनता के बीच प्रचलित था। 'विनयपत्रिका' में कवि ने यों कहा है

"जननी जनक तज्यो जनमि, करम बिनु बिधिहू सूज्यो अवडेरे।

*   *   *   *   *   *   *   *

तनु तज्यो कुटिल कोटि ज्यों, तज्यो मात पिताहू।"[1]

इससे यह सिद्ध होता है कि कवि को जन्म लेते ही उनके माता-पिता ने त्याग दिया था। परिणामस्वरूप माता-पिता के प्यार तथा संरक्षण से वह बाल्यावस्था से ही वंचित हो गये थे। घर की सुरक्षा एवं ममता से दूर राह का भिखारी भूख प्यास से मारा, दर-दर भटकता अनाथ हो गया। "चार चनों को भी चार पुरुषार्थ माननेवाला, टुकडों का मुहताज, कुत्तों से झगड़नेवाला, उनके मुँह में रोटी का टुकडा देखकर ललचानेवाला, दाँत निपोरकर, पेट को खलाकर करुणा जगानेवाला, अन्न वस्त्र से हीन, भाग्य-भलाई से विहीन तुलसी दुःख को भी दुःखी करने लगा।"[2] इस प्रकार जन्म से लेकर लोकजीवन की वास्तविकताओं को तुलसी ने चुनौती दी। कवितावली में भी इस तथ्य का उद्घाटन हैं

---

1. विनयपत्रिका 227/2
2. लोककवि तुलसी - सरला शुक्ल - पृ. 13

"मातु पिता जग जाय तज्यो बिधिहूँ न लिखी कछु भाव भलाई।।"

नीच निरादर भाजन कादर कूकर टूकन लागि ललाई।।"[1]

अन्न के दाने-दाने केलिए तरसनेवाले तुलसीदास बचपन में लोकजीवन की वास्तविकताओं से बिल्कुल परिचित थे। वे दुःख ही में जन्मे, दुःख ही में पले और फिर जब तक जिये तब तक दुःख को सहोदर की भाँति अपने हृदय से उन्होंने चिपकाये रखा और फिर अपने तपोबल से उसी दुःख को सुख बनाकर संसार को सौंप दिया। उस चमत्कारी बालक का नाम 'रामबोला' था, जो पीछे गोस्वामी तुलसीदास के नाम से विख्यात हुआ। तुलसीदास का जीवन चरित दुःखों का मर्मभेदी इतिहास है।"[2]

अभुक्तमूल नक्षत्र में जन्म लेने की वजह से अपने परिवार से निष्कासित तुलसी के सामने एकमात्र आलंबन रामभक्ति थी। राम नाम को तुलसी अपने संपूर्ण जीवन का सारतत्व मानते थे। पहले उनका नाम 'रामबोला' था।'[3] यों कहा गया है कि राम-राम बोलकर भीख माँगने के कारण उनका नाम रामबोला पड़ा। नाम के बारे में उनका कथन था कि

'राम का गुलाम रामबोला राख्यो राम।'[4]

वह पेट का भार उठाए हुए, राम-राम बोलते हुए, पेट की आग बुझाने केलिए स्वजाति, विजाति और कुजाति सबके घरों में खीस काढ़कर, पेट दिखाकर और बार-बार पैरों पर सिर रखकर टुकडे माँगता फिरा, और केवल अपनी निष्ठा से उसने करोडों मनुष्यों केलिए कल्याणकारी अपने जीवन को मृत्यु से लगभग नब्बे वर्षों तक बचाये रखा।

---

1. कवितावली (उत्तरकाण्ड) पृ. 57
2. तुलसीदास और उनका काव्य रामनरेश त्रिपाठी पृ. 9
3. तुलसी ग्रन्थावली (दूसरा खण्ड) - विनयपत्रिका - पृ. 504
4. विनयपत्रिका 77/9

इससे यह पता चलता है कि जन्मकाल से ही अपार दुःख को भोगनेवाले तुलसी केलिए लोकजीवन के सभी तत्व खुले आसमान की तरह परिचित हैं। सचमुच तुलसी लोक में पले और बढ़े हुए। लोकहित उनका लक्ष्य था।

तुलसी एवं लोकजीवन

तुलसी ने संसार को खुली आँखों देखा था और उसके झकोरों का प्रत्यक्ष अनुभव किया था। घर से निकलने के बाद जब तुलसी की भेंट गुरू बाबा नरहरिदास से हुई तो उनके जीवन का एक महत्वपूर्ण अध्याय खुला। अपने गुरु के मुँह से राम नाम का मंत्र सुना जिससे उनके ज्ञान की वृद्धि हुई। रामचरितमानस में उन्होंने यों लिखा है कि

"मैं पुनि निज गुरु सन सुनी कथा सो सूकरखेत।
समूझी नहिं तसि बालपन तब अति रहेउँ अचेत।"[1]

इस प्रकार बाल्यकाल से ही रामकथा के मर्म को पहचानने का प्रयास किया। सूकरक्षेत्र में गुरु से रामकथा सुनकर, सत्संगति के सुखद संयोग से तुलसी के कष्टों का निवारण हो गया।

तुलसी पहले भक्त थे, बाद में कवि। तुलसी साधु समाज की आत्मा, उच्चवर्ग का विश्वास और निम्नवर्ग का अवलंब थे। उनकी यह लोकप्रियता केवल उनके श्रेष्ठ कवि होने के कारण नहीं है, इसका रहस्य है तुलसी के भारत का सांस्कृतिक परिवेश। तुलसी जीवन भर अभावों में जिए। पण्डे, पुरोहित, धर्म-घुरन्धरों तथा शासकों ने इन्हें सदैव तिरस्कृत, उपेक्षित तथा परेशान किया। तुलसी ने अपने को कुलीन लोगों का नहीं, साधारण जन का अर्थात् लोक का कवि बताया है। उन्होंने सब कुछ लोक से लिया। उपेक्षित और पीड़ित लोग उनके सबसे प्रिय जन रहे।

---

1. रामचरितमानस - 1/30

देशाटन और संत्संग से पर्याप्त लोकज्ञान अर्जित करके तुलसी ने अपनी समन्वय भावना के साथ लोकजीवन में भक्ति का बीज बोया। मध्यकालीन भारत में विदेशी मुसलमानों के आक्रमण से त्राहि-त्राहि करनेवाली जनता को रामरसामृत पिलाकर विभिन्नता में एकता लाने का महान् कार्य इन्होंने किया। 'तुलसी ने केवल अपनी ही नहीं, अपने युग की व्यथा को वाणी दी तथा भक्ति की अलौकिक भूमिका में निवास करते हुए भी लोकसामान्य के स्तर पर उतरकर अपने समय के साधारण जन के दुखदग्ध हृदय को विशुद्ध मानवीय संवेदना प्रदान की।"[1]

तुलसी के समय लोकजीवन अत्यंत ह्रासोन्मुख स्थिति में था। सब कहीं मर्यादाविहीनता दिखाई पड़ती थी। मानस के उत्तरकाण्ड को देखिए। दूसरों का धन हडपनेवाला सयाना, मिथ्याभाषी ही गुणवान और दूसरों की बुराई करनेवाला ही बडे आचारों का पालन करनेवाला माना जाने लगा था।

'सोई सयान जो परधन हारी। जो कर दंभ सो बड़ आचारी।"[2]

तुलसीदास ने अनुभव किया कि जिस समाज में बडों का आदर, विद्वानों का सम्मान तथा वीरों के प्रति श्रद्धा-भाव का लोप हो, परंपरागत मान्यताओं की अवहेलना हो, एवं उत्तम कर्मपूर्ण संस्कारों का अभाव हो, वह समाज कभी सुख-शान्ति लाभ नहीं कर सकता। तुलसीदास ने अपनी समकालीन परिस्थितियों पर भी प्रकाश डाला है। लोग धर्म विमुख होते जा रहे थे। देश में बेकारी थी। किसान को खेती करना कठिन था और भिखारी को भीख नहीं मिलती थी। अनेकों पाखण्डों का ज़ोर था। लोकजीवन की इस दर्दनाक स्थिति का अनुभव, लोकजीवन के सूक्ष्मतम स्वरों तक पैठने और लोकप्रवृत्ति के विभिन्न रूपों के अन्वेषण की उनकी क्षमता को बढाने में सहयता रहा। इसमें उनकी लोककल्याण की भावना निहित है।

---

1. दस्तावेज़ 80, 'तुलसीदास अंक' विश्वनाथ प्रसाद त्रिपाठी पृ. 9
2. मानस 7/97/3

तुलसी की कृतियों में समकालीन जन जीवन के जो सटीक तथा सजीव चित्र मिलते हैं, वे इसी के परिणाम है। रामचरित के माध्यम से लोकजीवन, लोकपरंपरा, लोकचित्त एवं लोकादर्श कविलेख में एकचित्र हो गये। तुलसी की कविता गहरे लोकानुभव की कविता है। इसी लोकानुभव के नाते उनकी कविता लोगों की ज़ुबान पर रहती है। संस्कृतज्ञ होते हुए भी उसकी अवहेलना करके लोकजीवन की बोली को वे अपनी कविता का माध्यम बनाते हैं। लोकजीवन में धड़कनेवाली उसी भाषा का प्रयोग तुलसी अपनी कविता में करते हैं, जिसके मूल उत्स परंपरागत भाषा में निहित हैं। यह उनके लोकजीवन से संबन्धित विस्तृत ज्ञान का परिचायक नहीं है तो और क्या? लोकादर्शी तुलसी ने जनता के हृदय की धड़कन को पहचाना और रामचरितमानस के रूप में समन्वय का वह अद्‌भुत आदर्श प्रस्तुत किया।

तुलसीदास अपनी यात्रा के दौरान चित्रकूट, काशी, अयोध्या आदि स्थानों में गये। काशी की महामारी का वर्णन इस प्रकार है

"संकर-सहर सर नर नारि बारिचर
बिकल सकल महामारी मांजा भई है।"[1]

जनता इससे बहुत पीडित थी। यह दर्दनाक परिस्थिति तुलसी केलिए दुःखदायक थी। बाल्यकाल से ही आश्रयहीन हो जाने के कारण तुलसीदास को, समाज को अत्यंत निकट से देखने का अवसर मिला। उन्होंने यौवनावस्था में ही गृहस्थाश्रम त्यागकर वैराग्य धारण करके देश के नाना भागों का पर्यटन किया। पर्यटन के फलस्वरूप कवि को देश की वास्तविक स्थिति, जनता का जीवन, धर्म की दशा आदि का गहरा ज्ञान हो गया। तुलसी के जीवन का अंतिम समय अत्यंत कष्टपूर्ण परिस्थितियों से गुज़रा। बाहु-पीडा एवं

---

1. तुलसी ग्रन्थावली (दूसरा खण्ड) कवितावली - पृ. 247

बरतोड से पीडित तुलसीदास की अवस्था दोहावली, विनयपत्रिका और कवितावली में स्पष्ट झलकती है। अंतिम समय तक विपरीत परिस्थितियों तथा समाजविरोधी तत्वों से संघर्ष करते हुए लोकजीवन का यथार्थ रूप तुलसी ने प्रस्तुत किया।

सचमुच राम-राम रटते ही दुःखों के पहाड़ को गिरानेवाले तुलसीदास लोकजीवन, विश्वास, रीति-रिवाज़ एवं लोकसंस्कृति के साथ अपने को जुड़ाने के साथ ही राम को एक लोकपुरुष के रूप में चित्रित करते हैं। रामचरित के माध्यम से समस्त संसार में शांति की कामना करके, लोकमंगल केलिए कार्यरत एक महान विभूति थे तुलसीदास।

रामचरितमानस और लोकसमाज

लोकजीवन एवं संस्कृति का अक्षयनिधि है तुलसीदास का रामचरितमानस। यह ग्रन्थ उत्तरभारत की जनता की धर्मपोथी के रूप में विराजित है। तुलसी के समय उत्तरभारत के जन-जीवन में रासलीला और रामलीला का प्रचार था। साधारण जनता को समझाने लायक ढंग से चित्रित इन नाट्यरूपों में जनता के मनोभावों एवं प्रतिक्रियाओं का स्वतंत्र विकास दिखाई पडने लगा। रूढ़ व्यंजना अनुष्ठान, लोकविश्वास, पूजा-अर्चना, नृत्य-गीतों से परिपुष्ट इन लीलाओं ने लोकमन को गहराई से प्रभावित किया। साधारण भाषा में प्रस्तुत ये लीलाएँ लोकजीवन एवं संस्कृति से जुडी रहती हैं।

लोकजीवन में संगीत का स्थान ऊँचा है। मानव मन के मनोविज्ञान को जानने का महत्वपूर्ण साधन संगीत है। इस संगीत तत्व ने इन कलाओं के माध्यम से जन-जीवन को शीतल बनाया। शृंगारात्मकता होने के कारण मनोरंजन का भी इसमें प्रमुख स्थान रहा है। इसी मनोरंजन के फलस्वरूप रामलीलायें उत्तरभारत में सामने आ गयीं, जिनका प्रमुख आधार था रामकथा के प्रमुख प्रसंग। इसलिए यह सटीक माना जा सकता है कि इसी माध्यम को व्यवस्थित रूप देने के उद्देश्य से तुलसी ने रामचरितमानस की रचना लोकनाट्य

तत्वों को भी मिलाकर की। उत्तरभारत के लोकजीवन में रामलीला का महत्वपूर्ण स्थान है। यह इसका प्रमाण है कि आज भी राम तथा उनकी कथा लोकजीवन में जीवित है। लोक कल्याणकारी तत्वों से भरपूरित यह नाट्यरूप सचमुच लोकमंगलदायक है। तुलसी का रामचरितमानस इसका उत्तम उदाहरण है। उत्तरभारत से आगे विश्व भर के जन-जीवन का स्पर्श करनेवाले महत् ग्रन्थ के रूप में उनका रामचरितमानस भी प्रसिद्ध है। शताब्दियों से यह उत्तरभारत के लोकजीवन का मुख्य आध्यात्मिक संबल रहा है। साक्षर निरक्षर, धनी-निर्धन नागर-गँवार आदि समाज के विभिन्न वर्गों के लोगों द्वारा यह ग्रन्थ पूजा जाती है। लोगों की धार्मिक भावनाओं को परिपोषित करने केलिए यह ग्रन्थ सहायक बन जाता है।

भक्तिमार्ग के अनुसार भक्ति केलिए वर्गगत तथा जातिगत भेद-भाव नष्ट हो जाता है। भक्ति का यह आदर्श दक्षिण से रामानुज-रामानन्द आदि की परंपरा से होता हुआ उत्तरभारत को भी आप्लावित कर गया था। रामानंद की परंपरा में तुलसी लोककवि संतरूप में प्रकट हुए थे। इसी कारण अपने देश-काल और समाज का चित्रण रामचरितमानस में भी प्रतिबिंबित हुआ है। तुलसीकालीन समाज का एक दर्पण है रामचरितमानस। याने तत्कालीन लोकसमाज का तीखा चित्रण मानस में देखा जा सकता है। मानस के आरंभ में तुलसी ने उसकी रचना तिथि दी है

"संवत् सोरह सौ एकतीसा। करउँ कथा हरिपद धरि सीसा।
नौमी भौमवार मधुमासा। अवधपुरी यह चरित प्रकासा।"[1]

समस्त मानवता का कल्याण ही मानस का उद्देश्य है। मानस का कथानक इसलिए सर्वोत्कृष्ट है कि वह मानव समाज को सत्कर्म की ओर प्रेरित करता है। रामचरितमानस में कवि ने रामकथा को ही सांगोपांग वर्ण्य विषय के रूप में अपनाया है।

---

1. मानस 1/33/2

कथा के दृष्टिकोण केलिए अध्यात्मरामायण, कथा-विस्तार केलिए वाल्मीकि रामायण, लक्ष्मण-परशुराम संवाद केलिए हनुमन्नाटक, पुष्पवाटिका वर्णन केलिए प्रसन्नराघव, सूक्तियों केलिए श्रीमद्भागवत का सहारा लिया है। इस प्रकार रामचरितमानस की कथा के निर्माण में लोक के तार बडी सावधानी के साथ पिरोये गये हैं। यह कथा लोकप्रसूत होने के कारण ही इतनी अधिक लोकप्रिय है।

रामचरितमानस में विभिन्न समाजों के चित्रण द्वारा हर्ष-विषाद, सुख-दुःख, विरह-मिलन, जन्म-मृत्यु, जय-पराजय, प्रकृति का नित नूतन चिरनवीन रूप और जीवन का सघन अनुभव भर दिया गया है। तुलसी ने अपने मानस के माध्यम से दीन-हीन, पीडित, उपेक्षित वर्ग के लोगों के जीवनमूल्यों को स्वर देने का कार्य किया। उन्होंने अपने ग्रन्थ में लोकभाषा का प्रयोग किया। मानस की यह लोकभाषा अल्पशिक्षित साधारण जनों को भाव-विभोर कर देती है। मानस में रावण के अत्याचारों का वर्णन करते हुए मानस नेत्रों के सामने समकालीन मुगल-शासन बरबस आ जाता था।

"बरनि न जाइ अनीति, घोर निसाचर जो करहिं।
हिंसा पर अति प्रीति तिन्ह के पापहि कवनि मिति।"[1]

नीचे दरिद्रता, ऊपर दशानन का क्रूर शासन, यही चक्की के दो पाटे थे, जिनके भीतर पडे हुए असंख्य मानव कंकाल नृशंसतापूर्वक पिसे जा रहे थे। उनका आर्त क्रन्दन लोककवि तुलसी की वाणी में मुखरित होता है।

इस प्रकार तुलसी का काव्य विशेषकर रामचरितमानस मुख्यतः लोकसमाज विन्यास तथा विशाल भारतीय वाङ्मय का एकरथ रसात्मक निदर्शन है। 'रामचरितमानस, विनयपत्रिका, कवितावली, जानकीमंगल, पार्वतीमंगल आदि बारह ग्रन्थों का सृजन करनेवाले

---

1. मानस 1/183

तुलसीदास केलिए ख्याति का मूलाधार उनका महाकाव्य रामचरितमान ही है। लोकजीवन और संस्कृति की विराटता जितनी इस ग्रन्थ में मिलती है, उनकी अन्य कहीं नहीं मिलती।

रामचरितमानस एवं लोकतत्व

रामचरितमानस में लोकतत्व का महत्व एवं प्रयोजन विशेष महत्वपूर्ण है। किसी भी काव्य का सही मानदण्ड उसमें समाविष्ट लोकतत्व एवं उसके प्रयोजन के आधार पर स्थिर किया जा सकता है। निश्चय ही तुलसी ने मानस के कथानक को लोकतत्वों से संशोधित किया है। इन लोकतत्वों के अध्ययन से हम अपनी आदिम सभ्यता और संस्कृति का ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं। तुलसीदास का लोकमहाकाव्य 'रामचरितमानस' की रचना सन् 1631 में मानी जाती है। लोकजीवन का यथार्थ चित्रण इसमें मिलता है, साथ ही साथ इसमें जो लोकमंगल की भावना निहित है, उसे तुलसीदास ने संसार के कोने-कोने तक व्याप्त करते हुए लोकजीवन केलिए संजीवनी औषधि बनाया। अयोध्या में रहकर वहाँ के रीति-रिवाज़ों से परिचित तुलसी ने रामचरितमानस में इस पुण्यभूमि का चित्रण लोककल्याणकारी दृष्टि से किया।

लोकतत्व की दृष्टि से देखें तो काव्य में लोककथा, लोकगीत, लौकिक रीति-रिवाज़, लोकविश्वास एवं अन्धपरंपराएँ, लोकोक्तियाँ, मुहावरे, पहेलियाँ, सूक्तियाँ सभी का कुछ न कुछ महत्व एवं प्रयोजन अवश्य है। शिक्षा एवं संस्कृति से सहित मानव केलिए ऐसे साहित्य की आवश्यकता थी, जो विभिन्न लोकतत्वों से परिवेष्टित हो। इसमें तद्‌युगीन लोकचेतना एवं लोकसंस्कृति की छवियाँ अंकित हुई हैं। इस दृष्टि से सभी तत्वों का समाहार मानस में देखा जा सकता है।

---

1. द ग्रोथ ऑफ लिट्रेचर (भाग-2) चैडविक, ब्रदर्स पृ. 526

लोककथाओं में विश्वबन्धुत्व की भावना प्रबल रूप से काम करती है। लोकमानव परंपरागत रूढ़ियों, लोकविश्वासों एवं अंधपरंपराओं पर अखण्ड आस्था रखता है। उनका समस्त जीवन ही इन रूढ़ियों और अन्धविश्वासों से घिरा हुआ है। लोककथाओं में इन विभिन्न रूढ़ियों और विश्वासों का वर्णन पाया जाता है। प्रायः देखा जाता है कि लोककथाओं में सत्य की विजय और असत्य की पराजय का उल्लेख मिलता है। रामकथा अपने मौलिक रूप में एक सामान्य कोटि की वीरगाथा थी, जिसका वर्ण्य विषय किसी निर्वासित राजकुमार, उसकी पत्नी और उसके अनुज का वह पराक्रम था जिसे उन लोगों ने दक्षिण भारत के जंगलों में प्रदर्शित किया।[1] रामचरितमानस में भी असत्य पर सत्य का; अधर्म पर धर्म का विजय देखी जा सकती है।

रामचरितमानस की नस-नस में लोक की कथा रही है। लोकजीवन में लोककथाओं का प्रमुख स्थान है। कथा सुनना और सुनाना प्राचीनकाल से ही हमारे यहाँ प्रचलित है। तुलसी ने जिस रामकथा को अपनाया, वह पहले शिवजी के मस्तिष्क में स्फुरित हुई।[1] भारतीय साहित्य की अनेक कथाएँ शिव-पार्वती संवाद, याज्ञवल्क्य-भरद्वाज, काकभुशुण्डी-गरुड, तुलसी-जनता संवाद जैसे चार संवादों में रामचरितमानस में देखी जा सकती है। देखिए:-

"संभु कीन्ह यह चरित सुहावा। बहुरिकृपा करि उमहि सुनावा।।

सोइ सिव कागभुसुंडिहि दीन्हा। राम भगत अधिकारी चीन्हा।।

* * * * * * *

समुझी नहि तसि बालपन तब अति रहेऊँ अचेत।।"[2]

---

1. रामचरितमानस में लोकवार्ता - चन्द्रभान - पृ. 100
2. रामचरितमानस - 1/29/2

इस प्रकार कहने-सुनने की अंतिम कडी तुलसी के गुरु थे, जिनसे सूकरखेत में यह कथा उन्होंने सुनी। यह कथाकथन शैली लोक की यथार्थ शैली के प्रस्तुतीकरण में सक्षम है। सामान्य भक्त ही इस कथा को सुनने का अधिकारी बनता है। इस प्रकार लोककथात्मक शैली तुलसी के रामचरितमानस को लोकप्रिय बनाती है। भूत-प्रेत, देवी-देवता, राक्षस और किन्नर एवं गन्धर्व आदि अतिमानवीय शक्तियाँ लोककथाओं और लोकप्रचलित विश्वासों की निजी वस्तुएँ हैं।

लोकगीत लोकमानव की सहज एवं स्वाभाविक अभिव्यक्ति है। हमारी आदिम संस्कृति की सच्ची झलक लोकगीतों में ही प्राप्त हो सकती है। लोकगीत हमारे जातीय विकास के इतिहास की अमूल्य निधि हैं। जातीय हृदय की उथल-पुथल, सुख-दुःख, संयोग-वियोग आदि की भावनाएँ भिन्न-भिन्न तरह के गीतों के रूप में हुई हैं। लोकगीतों में लौकिक रीति-शैलियाँ, लौकिक काव्यरूप और लोकप्रचलित छन्द साहित्यिक काव्यधारा को नयी प्रेरणा, नयी दिशा और नया रूप प्रदान करते रहे हैं। अक्षरज्ञान से रहित अहीर, धोबी, चमार नाई, कहार आदि जातियों के लोग मानस की चौपाइयाँ अपने जातीय गीतों में मिलाकर गाते और नाचते हैं। गोस्वामी तुलसीदास ने अपने मानस में अनेक अवसरों पर स्त्रियों द्वारा मंगलगान करने का उल्लेख किया है। राम-जन्म, सीता का गौरी पूजन, सीता-स्वयंवर, सीता-राम विवाह इत्यादि समस्त अवसरों पर स्त्रियाँ सुमधुर गीतों का गायन करती हैं। तुलसीदास ने लोकगीतों की व्यापक महत्ता का प्रदर्शन किया है।

लोकप्रचलित रीति-रिवाज़ एवं विभिन्न लौकिक अनुष्ठानों का भी प्रयोग रामचरितमानस में देखा जा सकता है। अयोध्या में रहकर वहाँ के रीति-रिवाज़ों से परिचित तुलसी ने रामचरितमानस में इस पुण्यभूमि का चित्रण लोककल्याणकारी दृष्टि से किया। पुत्रजन्म के अवसर पर छठी पूजा जाना, सोहर गाया जाना तथा अन्य प्रकार की परंपरा

प्रथित रीति-रिवाज़ों का चित्रण मानस में है। लोकोत्सव, पर्वोत्सव तथा अन्य छोटे-मोटे पर्व-त्योहारों का प्रसंगानुसार समावेश भी मिलता है।

लोकमानव सरल और भावनाशील होता है। अतिप्राकृतिक, अप्राकृतिक और अमानवीय तत्वों में उसे पूर्ण विश्वास होता है। सामान्य जनता अन्ध आस्था के साथ परंपरा और रूढ़ियों को स्वीकार कर लेती है। जादू-टोना, मंत्र-तंत्र, परी, देवता, शाप-वरदान और दैवी शक्ति में तुलसी-निरूपित समाज को पूरा विश्वास है। ये लोकसमाज जड-चेतन तत्वों से संबन्धित शकुन-अपशकुन शुभाशुभ संबन्धी मान्यताओं तथा अन्य मूढाग्रहों तथा अन्धविश्वासों को पूरी दृढ़ता से अपनाए हुए है।

लोकभाषा अवधी में तुलसी ने मानस का प्रणयन किया। उस समय सामान्यतः समस्त ग्रन्थ संस्कृत में लिखे जाते थे। लेकिन लोककवि तुलसी ने अपनी रचना केलिए लोकभाषा को ही चुन लिया। मानस में उन्होंने स्वयं कहा है - 'भाषानिबन्ध मतिमंजुलमातनोति।' रामकथा अवध के जनपद में लोकमानव की जिह्वा पर प्रचलित थी। मानस की यह लोकभाषा अल्पशिक्षित साधारण जनों को भाव-विभोर कर देती है। सामान्य लोक से गृहीत अनेक शब्द जो रामचरितमानस में मिलते हैं, इसी बात की पुष्टि करते हैं। उदाहरण केलिए अवध में बोले जानेवाले माहुर, राउर, फुर, अनभल ताकना आदि शब्द और चित्रकूट के समीप के जन समूह में बोले जानेवाले कुराय, सुआर आदि। लोकभाषा अवधी के कोमल-कठोर शब्द यहाँ प्रसंगानुकूल प्रयुक्त होकर काव्य के सौंदर्य को बढाते हैं। ऐसे शब्दों में अछत, उछाहू, महतारि अवसेरि आदि भी लिये जा सकते हैं। लोकजीवन में लोकोक्तियों एवं मुहावरों से भाषा को समृद्ध बनाना भी तुलसी के लोकनायकत्व का परिचय देता है।

सामान्य लोक से प्रतीक, अलंकार एवं छंदों को लेकर जनता के साथ अटूट संबन्ध स्थापित करने में तुलसी सफल बन गये। साधारण जनता को समझने-समझाने लायक लोक में प्रचलित दोहा-चौपाई को उन्होंने स्वीकार किया। लोककथाओं केलिए ये

छंद अत्यंत उपयुक्त है। इस प्रकार मुहावरे, लोकोक्तियाँ, सूक्तियाँ, अलंकार, प्रतीक, बिंब आदि लोककाव्य के विभिन्न तत्वों रूपों का समाहार मानस में मिलता है।

इस प्रकार मानस एक श्रेष्ठ काव्य है और इसमें लोकतत्वों का समाहार खुलकर किया गया है। इसमें लोककथा, लोकगीत, लौकिक रीति रिवाज़, लोकविश्वास एवं अन्ध परंपराएँ तथा लोकभाषागत विशिष्टताओं का भरपूर समावेश हुआ है जिनमें लोकमानव के लौकिक, धार्मिक, आर्थिक, ऐतिहासिक, भौगोलिक और नैतिक आचरणों की ओर संकेत किया गया है। इसमें उल्लिखित ये विभिन्न तत्व काव्य में लोकतत्व की महत्ता और उसके प्रयोजन की ओर निर्देश करते हैं तथा हमारे ज्ञान-द्वार खोलकर अतीत की संस्कृति से परिचित कराते हैं। ये लोकतत्व आज भी समाज में प्रचलित हैं।

एषुत्तच्छन का जन्म एवं लोकविश्वास

जिस प्रकार तुलसीदास लोकजीवन के यथार्थ चित्र को लेकर साहित्यिक क्षेत्र में उतरे, उसी प्रकार सोलहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में अपनी युग की आवश्यकताओं केलिए एक महान् एवं नवीन संदेश के साथ 'तुंचत्तु रामानुजन् एषुत्तच्छन' ने काव्यक्षेत्र में पदार्पण किया। इनका केरल के लोकजीवन से बडा संबन्ध रहा है। केरलीय जीवन तथा मलयालम साहित्य में कवि, दार्शनिक, समाज-सुधारक, आचार्य सभी रूपों में एषुत्तच्छन को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। 'भक्ति के माध्यम से जनता को शान्त, दृढ़, उदात्त तथा कल्याण मार्ग पर अग्रसर करनेवाले एक लोकनायक थे एषुत्तच्छन।'[1] सचमुच वर्ग-भेद, अन्धविश्वास एवं अनाचारों में पिसी हुई लोकजनता के सामने एक महान् लोकनायक के रूप में एषुत्तच्छन अवतरित हुए। असाधारण कथा-कथन-चातुर्य के साथ रामकथा एवं भारतकथा केरलीयों के बीच में प्रतिष्ठापित करने का कार्य एषुत्तच्छन ने किया। 'मातृभक्ति, पितृभक्ति,

---

1. भारतीय साहित्य शिल्पिकळ् 'एषुत्तच्छन' - के राघवनपिल्लै पृ. 7

गुरुभक्ति, ईश्वरभक्ति, सज्जनभक्ति जैसी सदाचारनिष्ठाओं केलिए अचंचल संकेतों से युक्त साहित्य उन्होंने केरलीयों को प्रदान किया।'[1] संस्कृत भाषा से अनिभज्ञ मलयालियों (लोकजनता) को प्राचीन भारतीय संस्कृति के बारे में जानकारी प्रदान की। यही उनका महत्व है।

हमारे देश-संस्कृति का अस्तित्व मिट जाने पर उसे पुनःस्थापित करनेवाले एक महान् आत्मा का इंजिनीयर था एषुत्तच्छन। जीवन की वास्तविकताओं के प्रति जनता को परिचित कराकर भक्ति के माध्यम से मुक्तिमार्ग दिखाना एषुत्तच्छन का उद्देश्य था। टागोर की भाषा में कहें तो वह 'जनमनोनायक' हैं। जनजाति के दबे हुए विकार, उनके मानसिक पटल पर उठे संस्कार सागर के अवतार थे एषुत्तच्छन। तुलसीदास के समग्र जीवन चरित की सामग्री भी अनुपलब्ध है, उसी प्रकार एषुत्तच्छन के जीवन से संबन्धित सामग्री अब तक अनुपलब्ध है। केरल के प्रसिद्ध समालोचक 'श्री. पी.के. नारायणपिल्लै'[2], 'श्री आर. नारायणपणिक्कर'[3], 'महाकवि उल्लूर परमेश्वर अय्यर'[4] आदि प्रसिद्ध विद्वान तुंचन का समय ईस्वी सन् की सोलहवीं शती में ही स्थिर करते हैं। अब तक उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर इनका निर्णय ही सर्वमान्य समझा जाता है। सोलहवीं-सत्रहवीं शती में ये जावित रहे हैं।

एषुत्तच्छन के जीवन से संबन्धित अनेक लोककथाएँ प्रचिलत हैं। कहते हैं कि एक दिन एक ज्योतिषी ब्राह्मण दक्षिण के त्रिवेन्द्रम से 'मुरजपम्'[5] में भाग लेने के बाद

---

1. पञ्चानन्टे विमर्शनत्रयम् - साहित्यपञ्चानन् पी.के. नारायणपिल्लै - पृ. 244-245
2. तुंचत्तेषुत्तच्छन करुणाकरन् नायर् - पृ. 19
3. रामानुजन एषुत्तच्छन आर. ईश्वरपिल्लै - पृ. 7
4. केरल साहित्य चरित्रम् (वाल्यम 7) उल्लूर एस. परमेश्वर अय्यर पृ. 495
5. त्रिवेन्द्रम के प्रसिद्ध पद्मनाभ स्वामी मन्दिर में ट्रावनकोर के महाराजा मार्तांडवर्मा द्वारा अयोजित एक धार्मिक समारोह है, जिसमें चारों वेदों का पाठ किया जाता था।

उत्तर केरल के मलबार जिले के वेट्टत्तुनाडु आ पहुँचे। रात होनेवाली थी। आस-पास ब्राह्मण गृह न दिखाई पडने के कारण उन्होंने तेल पेरनेवाली एक नायर जाति की स्त्री (कवि की माता) के गृह में रात बिताया। उस दिन पुत्रोत्पत्ति का असुलभ मुहूर्त जानकर एवं स्त्री की प्रार्थना के अनुसार ब्राह्मण देवता ने पुत्रोत्पत्ति से उस स्त्री को अनुग्रहीत किया। इसके फलस्वरूप जो बच्चा पैदा हुआ, वह एषुत्तच्छन के नाम से विख्यात है।

एषुत्तच्छन के नाम से संबन्धित अनेक मत प्रचलित थे। लेकिन नारायणपणिक्कर की राय प्रमुख है - "एषुत्तच्छन का यथार्थ नाम रामन् है।"[1] बाल्यकाल में एषुत्तच्छन माता के साथ मन्दिर में दर्शन केलिए जाया करता था। ईश्वर संबन्धी कथाएँ माता प्रतिदिन उसे सुनाती थी। इसी कारण बचपन से ही भक्ति का बीज एषुत्तच्छन के मन में उगने लगा। बचपन में अलौकिक ज्ञान संपन्न एषुत्तच्छन ने ब्राह्मणों का गलत वेदोच्चारण सुनकर वन-वन कहा। 'ब्राह्मणों ने उसे असाधारण बालक समझकर, उसके बडे होने पर संभाव्य आपत्ति की चिंता करते हुए अभिचार प्रयोग पूर्वक 'प्रसाद' दिया। तबसे बच्चा मूक ही रह गया। एक बार परदेश से जब ब्राह्मण पिता आये तो उन्होंने अभिचार दोष के परिहार केलिए पुत्र को मदिरा पिलाई। लोगों का कहना है कि बाद में मदिरापन करने पर तुंचन के मुँह से कविता फूट पडती थी। उनकी रचनाओं में से अत्यंत प्रवाहमयी तथा प्रसादगुण युक्त भाषा के अनेक प्रसंगों को लोग उद्धृत भी करते हैं।'[2] इस ऐतिह्य से यह ध्वनित होता है कि बचपन से ही अलौकिक ज्ञान संपत्ति के धनी थे एषुत्तच्छन। यह ज्ञान उन्हें लोक से प्राप्त हुआ।

तुंचन की जन्म संबन्धी ये कथाएँ कहाँ तक सार्थक हैं? इस पर संदेह है। लेकिन आज भी लोकजनता इस पर विश्वास करती है। वह अपने विश्वासों को बदलना नहीं चाहती।

---

1. रामानुजन् एषुत्तच्छन - आर. नारायणपणिक्कर पृ. 22
2. तुलसी और तुंचन रामचन्द्रदेव पृ. 37

जन्मस्थान एवं महत्व

तुंचत्तु रामानुजन एषुत्तच्छन का जन्म मलबार जिले के पोन्नानी तालुका के तृक्कंडियूर में हुआ था। अब यह स्थान 'तुंचनपरंपु' नाम से जाना जाता है। आज भी लोग इसे पवित्र तीर्थ के समान मानते हैं। वहाँ की धूल शिशुओं के विद्यारंभ संस्कार केलिए अत्यादरपूर्वक काम में लाते हैं। केरल में पुराने ज़माने में प्रथमतः धूल या चावल में 'हरिश्री गणपत ये नमः' लिखवाकर, शिशुओं का विद्यारंभ कराया जाता था। लोगों का विश्वास था कि तुंचनपरंपु की धूल से विद्यारंभ कराने पर बच्चे पढ़ने में तेज़ निकलते हैं। वहाँ पर एक 'कारस्कर वृक्ष'[1] अब भी वर्तमान है, जिसके बारे में कहा गया है कि उसी की छाया में आचार्य ध्यान-मग्न बैठा करते थे। इसीलिए उस वृक्ष की पत्तियाँ कडवी नहीं है, ऐसा लोकविश्वास भी है। 'तुंचनपरंपु से मिट्टी ले जाकर बच्चों को ज़मीन पर लिखना सिखानेवाले बुजुर्ग और वहाँ के कारस्कर वृक्ष को आदर के साथ पूजनेवाले आचार्य और भक्त केरल में बहुत हैं।'[2] वहाँ अब एक गुरुमठ भी दिखाई पडता है। उसके समीप एक तालाब और एक कुआँ भी है। रामानुजाचार्य की आराधना मूर्तियाँ तथा 'नारायं' आदि उस कुएँ में हैं यही जनता का विश्वास है। लोकमन पर एषुत्तच्छन ने कितना प्रभाव डाला है, ये सब इसका सबूत है। एषुत्तच्छन के जन्म के कारण पवित्र तुंचनपरंपु ने लोकमन एवं जीवन पर गहराई से प्रभाव डाला है।

एषुत्तच्छन एवं लोकजीवन

एषुत्तच्छन बडे ही भावुक एवं सात्विक वृत्ति के व्यक्ति थे। वे उच्चकुलोत्पन्न नहीं थे। तुलसी की भाँति एषुत्तच्छन ने भी बाल्यावस्था में अनेक तीर्थस्थानों का दर्शन किए। विद्योपार्जन केलिए वे बाल्यावस्था में ही घर से निकले। कहते हैं कि तीस वर्ष की

---

1. एक वृक्ष विशेष जिसके पत्ते, फूल, फल सब अत्यंत कडवे होते हैं।
2. एषुत्तच्छन केलिए एक अवतारिका प्रो. पी. कुञ्जिकृष्णमेनोन् पृ. 24

अवस्था तक वे देशाटन करते रहे। देशाटन के कारण उनका ज्ञान और अनुभव बढ़ गया तथा इनका संबन्ध लोगों से जुड गया। लौकिक सुख से उन्हें पूर्ण विरक्ति थी। पर लोककल्याण उनके जीवन का एकमात्र लक्ष्य था। उनकी सहानुभूति मात्र मनुष्य तक सीमित नहीं, बल्कि छोटे, बडे सभी प्राणियों तक व्याप्त थी।

एषुत्तच्छन के समय लोकजनता अनाचारों, अन्धविश्वासों की जाल में फँसे हुए थे। सर्वत्र मूल्य विहीनता दिखाई पडती थी। इससे मुक्ति पाने केलिए जनता को जागरूक बनाना आवश्यक था। एषुत्तच्छन ने भक्ति को इसका माध्यम बनाया। उन्होंने भक्ति-मुक्तिदायक रामायण आदि कृतियाँ गाँवों, घरों तक पहुँचाकर लोकजनता के हृदयों को आर्द्र और सफल बना दिया। केरलीय संस्कृति के नवोत्थान की मशाल जलानेवाले एषुत्तच्छन को केरल के पिता के रूप में आज भी माना जाता है।

केरल में एषुत्तच्छन के पहले ही रामायण का प्रचार-प्रसार था। "रामायण, महाभारत, भागवत की पौराणिक एवं लोकप्रिय कथाओं से लिये जानेवाले यक्षगान का प्रचार तमिल, तेलुगु, कन्नड आदि भाषा-भाषी क्षेत्र के ग्रामीण जीवन में प्रचलित था। केरल में इसी पुराण कथाओं का उल्लेख कथकळि, कठपुतलियों का खेल आदि में दिखाई पडता है।"[1] यहाँ नृत्य-नाट्य कथकळि का प्रचार आज भी जारी है। संगीत में निबद्ध कथा होने के कारण लोकजीवन पर उसका गहरा प्रभाव पडा। इस प्रकार रामकथा बहुत प्राचीनकाल से ही उत्तर भारत की तरह दक्षिण भारत में भी प्रचलित रही। इन लोकनाट्यों को किळिप्पाट्टु शैली में प्रस्तुत करके जन सामान्य को उसकी ओर आकर्षित करने का महान् कार्य एषुत्तच्छन ने किया है। इसी दृष्टि से उनका अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु भी मार्मिक तत्वों से परिपूरित होते हुए भी सामाजिक जीवन का चित्र, अभाव, दैन्य, चमत्कार

---

1. लोकधर्मी नाट्य परंपरा - आचार्य श्याम परमार पृ. 72

और हास-परिहास की सामग्री, गतिशील जन सुलभ भाव आदि के साथ प्रस्तुत करता है। स्वस्थ जीवन का विश्वास जनता के हृदय में रामभक्ति के माध्यम से भरपूरित करने में वे अद्वितीय है। साधारण जनता को समझने योग्य एवं आसानी से आस्वादन की जानेवाली लोकभाषा में उन्होंने अपनी रचना का प्रस्तुत की। अनेक भाषाओं में पाण्डित्य अर्जित करने के कारण विविध संस्कारों से परिचित एषुत्तच्छन सच्चे अर्थों में लोकवादी थे। तुलसी की भाँति एषुत्तच्छन भी पहले भक्त और बाद में कवि के रूप में जाने जाते हैं।

लोगों का विश्वास है कि देशाटन के बाद एषुत्तच्छन अपने देश वापस आये और शिष्यों को पढ़ाकर शिष्ट ज़िन्दगी बिताया। बाद में उत्तर चिट्टूर में उनके द्वारा स्थापित गुरुमठ में उनकी समाधि हुई। एषुत्तच्छन का समाधि-उत्सव आज भी वहाँ के मन्दिरों में चलाया जाता है। वहाँ के राम मन्दिर के कुछ उत्सव एषुत्तच्छन से संबन्धित हैं। "नवरात्री (विद्यारंभ) के दिन इस मन्दिर में चलाया गया दीपावली का उत्सव 'एषुत्तच्छन विळक्क्' नाम से जाना जाता है।"[1] लोगों का विश्वास है कि एषुत्तच्छन की समाधि के बाद उन वस्तुओं, जैसे चन्दन की खाडाऊँ तथा योगदण्ड आदि को चिट्टूर मठ में अनुस्मारक के रूप में रखा है।

इस प्रकार लोकजनता के हृदय में भक्ति का बीज बोकर उनकी जीवन रीति का पुनःस्थापन चाहनेवाले एषुत्तच्छन सचमुच लोकनायक हैं। साथ ही उच्च आदर्शों द्वारा मानवता के उन्नयन की तत्परता और लोकसंग्रह की प्रवृत्ति उन्हें मनुष्य हृदयरूपी कमल को विकसित करनेवाले सूर्य की उपाधि देती है।

---

1. भारतीय साहित्य शिल्पिकळ् एषुत्तच्छन - के. राघवन् पिल्लै पृ. 12

अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु एवं लोकसमाज

तुलसी ने लोकजीवन को अपनी रचना का आधार बनाया, उसी प्रकार एषुत्तच्छन ने भी लोकजनता केलिए अपनी तूलिका चलाई। लोक के साथ अपने को जुडाकर निचली श्रेणी की जनता का संस्कार करते हुए लोकोन्नति केलिए कार्य करनेवाले एक लोकनायक थे एषुत्तच्छन। विदेशी आक्रमणों के उत्पात तथा आन्तरिक कलहों और उपद्रवों से अभिभूत जनता को अस्तव्यस्तता से जीवन के शाश्वत प्रकाश की ओर अग्रसर करने की आवश्यकता थी। साहित्यकार की कृति सामाजिक गतिविधियों का प्रतिबिंब तथा प्रेरक है। अपनी युगान्तकारी रचना 'अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु' के माध्यम से उन्होंने तत्कालीन समाज को एक नयी दिशा एवं गति प्रदान की।

एषुत्तच्छन और उनकी किळिप्पाट्ट शैली एक नूतन युग की कडी है। किळिप्पाट्टु में चिडिया द्वारा गवानेवाले एषुत्तच्छन की कथाशैली लोकमन पर बहुत गहरा प्रभाव डालती है। एषुत्तच्छन की रचनाओं में मुख्य स्थान अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु, भागवतम् और महाभारतम् को है। ये कृतियाँ लोक संस्कृति, चिंतन एवं भक्ति से जनता को एक नवीन दृष्टिकोण प्रदान करने में सफल बन जाती हैं। इसके अलावा देवी माहात्म्य, चिन्तारत्नम्, इरुपत्तिनालुवृत्तम् आदि को भी एषुत्तच्छन की कृतियों के रूप में माना जाता है, पर इसमें मतभेद है। एषुत्तच्छन का अध्यात्मरामायणम्, भागवतम् और महाभारतम् के प्रचार से लोक में भक्ति एवं मूर्तिपूजा व्यापक रूप से बढ़ने लगी। इसके फलस्वरूप मूर्तिपूजा एवं मन्दिरों के विधि-विधान केरल के हिन्दू धर्म के अन्तर्गत स्थान पा गये। फिर भी यहाँ के पुरातन मूल्य या विश्वास का कोई ह्रास नहीं हुआ। सर्पबलि, कालिपूजा, शबरिमला तीर्थाटन आदि आज भी प्रचलित हैं। अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में भी इन सब विश्वासों का सशक्त रूप से समर्थन हुआ है।

शिक्षित-अशिक्षित सबको समान रूप से आकर्षित एवं प्रभावित करनेवाला उनका अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु वास्तव में संस्कृत के अध्यात्मरामायणम् का छायानुवाद है। जनश्रुति के अनुसार चेंपकश्शेरि राजा की आज्ञा के अनुसार ही उन्होंने 'अध्यात्मरामायणम्' को आधार बनाकर अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु की रचना की। कथानक, घटनाचित्रण, पात्रनिरूपण, भक्ति-भावना, सभी दृष्टियों से यह मूल से बहुत कुछ मिलता है। औपनिषदिक मूल्य एवं कांति से युक्त यह महान ग्रन्थ परंपरागत रामकथाओं में एक नवीन कडी जोड़ देता है। घटनाओं के अनुभूतिपरक सुन्दर यथार्थ वर्णन इस ग्रन्थ की विशेषता है, जो भक्ति से मिलकर सामान्य जनता के हृदयों को आवर्जित करता चलता है।

एषुत्तच्छन के अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु को केरलीयों की धर्मपोथी के रूप में माना जाता है, जिसमें राम-लक्ष्मण का बाल्यकाल, कौसल्या का वात्सल्यपूर्ण मातृहृदय आदि के वर्णन से होकर वह सामान्य जन-जीवन के अंतः सूत्रों से गहरा संबन्ध स्थापित कर जाता है। रामकथा को एक नूतन परिवेश में रखकर परंपरागत कथातत्व के साथ गीतशैली में चित्रित करते हुए एषुत्तच्छन ने इनमें सोने में सुगन्ध का काम किया है। एषुत्तच्छन के सामने संस्कृत की रामकाव्य परंपरा तो थी, साथ ही मलयालम के पूर्वकालीन कवियों का भी अनुकरण करते हुए उन्होंने अपने प्रयोग के ज़रिए काव्य को अत्यंत आकर्षक एवं उज्वल बनाया। अपने अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु के ज़रिए किळिप्पाट्टु शैली का प्रयोग मलयालम साहित्य के अंतर्गत उन्होंने किया। "एषुत्तच्छन के पहले ही केरल के लोकगीतों एवं रामचरितम् में किळिप्पाट्टु के अनेक छन्द दिखाई देते हैं।"[1]

एषुत्तच्छन का अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु अनेक मार्मिक तत्वों से परिपूरित होते हुए भी सामाजिक जीवन का चित्र, अभाव, दैन्य, चमत्कार और हास-परिहास की सामग्री, गतिशील जनसुलभ भाव आदि के साथ प्रस्तुत करता है। स्वस्थ जीवन का विश्वास

---

1. एषुत्तच्छनु ओरु अवतारिका - प्रो. कुञ्ञिकृष्ण मेनोन - पृ. 12

जनता के हृदय में राम भक्ति के माध्यम से भर देने में वे अद्वितीय हैं। जन्म से ही कवित्वपूर्ण सिद्धियों से युक्त होकर भी उनमें भक्त व्यक्तित्व कविव्यक्तित्व पर शासन करता था। यह शक्ति मूल रूप से राम पर टिकी हुई थी। अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु भक्ति आन्दोलन का प्रेरणा केन्द्र था, इसने रामकथा को अद्वैत में आवृत करके भक्ति का चित्रण किया। इस ग्रंथ ने जनता को आत्यधिक प्रभावित एवं आकर्षित किया। यह रामकथा एवं रामभक्ति का एक नूतन आयाम प्रस्तुत करनेवाला अद्‌भुत ग्रन्थ था। उन्हें लगा कि भक्ति के प्रभावकाल में यही ग्रन्थ मूल रामायण से अधिक सामान्य जनता केलिए आकर्षक बन सकता है।

आज भी केरल के हिन्दू घरों में दिया जलाकर भक्तियुक्त एषुत्तच्छन के अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु का वाचन करते हैं। 'आषाढ़ के महीने में केरल के हर एक घर में धार्मिक मूल्यों को पुनस्थापित करने के उद्देश्य से अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु का परायण किया जाता है।'[1] यह इसका प्रमाण है कि एषुत्तच्छन तथा उनका अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु लोक हृदय में जीवित है।

अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु और लोकतत्व

रामचरितमानस की तरह अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में लोकतत्व का महत्व एवं प्रयोजन विशेष उल्लेखनीय है। मानस में तुलसी ने जितना लोकतत्व दिखाया, उतना अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में नहीं। फिर भी संस्कृति के महान् आदर्शों एवं विश्वासों पर जीनेवाली लोकजनता का चित्रण एषुत्तच्छन ने किया है। अनेक विश्वासों, रीति-रिवाज़ों के आधार पर जीवन बितानेवाले जन समाज केरल में भी है। लोकजीवन से बिलकुल परिचित एषुत्तच्छन ने अपने अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में लोकजनता के

---

1. एषुत्तच्छनु ओरु अवतारिका - प्रोफ. पी. कुञ्ञिकृष्णमेनोन् - पृ. 12

इन विश्वासों को स्थान दिया। साधारण जनता को समझने योग्य लोकभाषा में उन्होंने अपनी रचना का निर्माण किया।

लोककथात्मक शैली अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु को लोकजनता के सामने ओर भी श्रेष्ठ बनाती है। प्राचीन काल में तोता, मैना आदि चिडियों को दूत के रूप में भेजने की रीति थी। यहाँ एषुत्तच्छन ने तोते के माध्यम से रामायण कथा कहलवाया है। चिडिया के द्वारा कथा गवाने के कारण यह किळिप्पाट्टु नाम से जाना जाता है। हंस, कोकिल, भ्रमर आदि के द्वारा गाये जानेवाले गीत भी 'किळिप्पाट्टु' के अंदर रखे जा सकते हैं।' विष्णुगीत हंसप्पाट्ट, चिडिया-भ्रमरगीत आदि इसका उदाहरण है।"[1] एषुत्तच्छन ने चिडिया को कथा कहने केलिए क्यों चुन लिया? इस पर अनेक मत हैं। चिडिया निष्कलंक एवं निर्मलता का प्रतीक है। मन की बात को उसी रूप में चिडिया कहती है। पुराण कथा कहनेवाले शुकमहर्षि का स्मरण करके ऐसा किया गया है। ऐसा भी एक मत है। कुछ लोग कहते हैं कि ईश्वर ने कवि को शुक के रूप में ज्ञानोपदेश दिया, इसी कारण एषुत्तच्छन ने ऐसा किया है। अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में एषुत्तच्छन ने चिडिया से यों कहा है

> *"श्रीरामनामं पाडि वन्न पैंकिळिप्पेण्णे। श्रीरामचरितं नी चोल्लीडु मडियाते*
> *शारिकप्पैतल् तानुं वन्दिच्चु वन्दूयनमारे श्रीराम स्मृतियोडे परञ्ञुतुडङिङनाळ्।"*[2]

(अर्थात् श्रीराम के नाम की स्तुति करके पहुँचनेवाली चिडिया से जल्द ही उनके चरित को कहने केलिए एषुत्तच्छन ने कहा। उस समय वह चिडिया सभी पूज्य लोगों का स्मरण करके कथा कहने लगी) अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में कथा उमा-महेश्वर संवाद से आरंभ होती है। इसमें किळिप्पाट्टु छन्दों को भी स्वीकार किया गया है। लोकजनता इस लोककथात्मक शैली से प्रभावित भी है।

---

1. किळिप्पाट्टु डॉ. एन. मुकुन्दन पृ. 5
2. अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु पृ. 2

पारिवारिक संबन्धों एवं आचारों विश्वासों पर जनता विश्वास रखता है। पितृ-पुत्र संबन्ध, भाई-भाई संबन्ध, गुरू-शिष्य संबन्ध आदि को पवित्र रूप में मानना चाहिए। अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में इन सबका लोककल्याणकारी रूप देखा जा सकता है। एषुत्तच्छन के अद्भुत मनोधर्म और स्वच्छन्द प्रतिभा-विलास उल्लेखनीय है। रामायण के वन वर्णन, आश्रम-वर्णन, कोल किरात आदि का राम के प्रति भक्ति-भाव, केवट प्रसंग आदि का वर्णन लोकजीवन एवं इसके प्रति एषुत्तच्छन की संसक्ति को दिखानेवाला है। दर्शन एवं हितोपदेश रामायण की एक प्रमुख विशेषता है। इसमें वनयात्रा केलिए राम के साथ निकलनेवाले लक्ष्मण के सामने सुमित्रा का कथन है, यह पर्याप्त लोकोपदेश से भरा हुआ है। राम जन्म, राम सीता विवाह, आदि के अवसर पर अनेक लोकतत्व दिखाई पडते है। साहित्य के समाज सापेक्ष होने केलिए उनमें महत्वपूर्ण आदर्शों का होना आवश्यक है। लोक से परिचित होने के कारण एषुत्तच्छन के अध्यात्मरामायणम् में अनेक लोकतत्व भी भरे पडे हैं।

लोकमानस में प्रतिष्ठित विश्वासों और मूढ़ाग्रह का वर्णन भी एषुत्तच्छन के अध्यात्मरामायणम् को लोकहृदय में स्थान देने का कारण बन गया। नाना-प्रकार के लोकप्रचलित विश्वासों पर आधारित शकुन-अपशकुन विचार की पद्धति लोकजीवन की अपनी वस्तु है। एषुत्तच्छन की आख्यान रीति और भाषा जनता के हृदय को आकर्षित करने लायक थीं। मणिप्रवालम् और गीत इन दो शाखाओं ने एषुत्तच्छन की कृतियों में अद्भुतपूर्ण एकीकरण का भाव पैदा किया। इसके फलस्वरूप मलयालम कविता में एक बल पैदा हुआ। कविता की भाषा और जनता की भाषा जब दो ध्रुवों में खडी थी, तब जनता की भाषा को प्रधानता देकर एषुत्तच्छन ने इस असंतुलित अवस्था को सुलझाया। केरलीय संस्कृति के नवोत्थान की मशाल को जलानेवाले एषुत्तच्छन को केरल के पिता के रूप में आज भी माना जाता है। एषुत्तच्छन का हृदय संगीतमय था। अर्थ की गति के

अनुसार शब्द प्रवाह तथा छन्दोबद्धता एषुत्तच्छन की कृतियों की विशिष्टताएँ हैं। केका, काकळी, कळकाञ्ची जैसे लोकछन्दों उपमा, रूपक जैसे लोकअलंकारों, लोक से प्रतीकों, बिंबों, लोकोक्तियों मुहावरों आदि को ग्रहण करके एषुत्तच्छन ने अध्यात्मरामायणम् को लोकतत्वों से संपन्न किया। एषुत्तच्छन की सूक्तियाँ आज भी लोकजनता के बीच प्रचलित हैं। उदाहरण केलिए

प्रत्युपकारं मऽक्कुन्न पूरुषन् चत्ततिनोक्कुमे जीविच्चिरिक्किलुं।"[1]

(प्रत्युपकार भूलनेवाले मनुष्य जीते जी मृत के समान है) इस प्रकार अनेक सारोपदेश लोगों तक पहुँचाकर लोकजनता को प्रभावित करने में एषुत्तच्छन सफल बन गये। अनेक लोकतत्वों एवं धार्मिक मूल्यों से भरा हुआ अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु जनता केलिए पूजनीय बन गया।

लोकमंगल की दृष्टि से रामचरितमानस एवं अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु का महत्व।

तुलसीदास का रामचरितमानस और एषुत्तच्छन का अध्यात्मरामायण् लोकमंगल की साधना केलिए लिखे गये ग्रन्थ हैं। उत्तरभारत के हर हिन्दू परिवार में रामचरितमानस की पहचान है तो एषुत्तच्छन का अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु केरल के हर एक घर में रहता है। साधारण जनता भी मनोयोगपूर्वक इन ग्रन्थों को पढ़ती है, और बडे-बडे विद्वान भी उसकी गहराइयों में उतरते हैं और उसका उपयोग करते हैं। इसका मूल कारण यह है कि इन दोनों ग्रन्थों में ऐसी बुनियादी तत्व निहित हैं, जो सामान्य जन-जीवन से जुड़े हुए हैं और जिनका अनुसरण प्रत्येक व्यक्ति के चारित्रिक गठन में अत्यंत सहायक रहता है। तुलसी और एषुत्तच्छन पहले भक्त थे, फिर कवि। भक्तों का अंतरंग हमेशा पवित्र रहता है

1. अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु - पृ. 283

और वे बाहरी दुनिया में भी इसी पवित्रता के दर्शन करते हैं। क्योंकि बाहरी दुनिया में मन का ही प्रतिफ़लन होता है। जहाँ मन स्वच्छ होता है, वहाँ सारा संसार स्वच्छ दिखाई पडता है। इसी मानसिक प्रवृत्ति का प्रतिफलन मानस में यो हुआ है कि

"सुरसरि सम सब कहँ हित होई।"[1]

इस पंक्ति में भारतीय संस्कृति की चिरकालीन प्रवृत्ति 'सर्वे सुखिनः सन्तु, वसुधैव कुटुम्बकम्' आदि का प्रभाव देखा जा सकता है।

तुलसीदास के रामचरितमानस और एषुत्तच्छन के अध्यात्मरामायणम् में भारतीय चिंतन और अनुभूति की अनेक अन्तर्धाराएँ आकर मिल जाती हैं। गहराई की दृष्टि से देखें तो इन दोनों के चिंतन, अनुभूति, और साँस्कृतिक पृष्ठभूमि असल में एक है। प्रदेशगत भिन्नता के कारण बाहरी तौर पर थोडी बहुत भिन्नताओं के दिखाई पडने पर भी मूल में दोनों एक ही हैं। मानस एवं अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु की लहरों में लोकमानस एवं लोकजीवन का असीम आकाश प्रतिच्छायित हो उठता है। ये दोनों ग्रन्थ किसी विशेष वर्ग या संप्रदाय से जुडे हुए नहीं हैं, बल्कि उनके समय के समष्टिगत विचारों का ही प्रतिफलन हैं। तुलसीदास और एषुत्तच्छन जैसे महत्ताग्राही कलाकार लोकस्पन्दन के प्रतिनिधि हुए बिना कैसे रह सकते हैं? उनकी कृतियों में 'लोक' की महत्ता की 'निधि' समायी रहती है। स्थानीय भेद यहाँ लुप्त होते हैं। वर्ग-भेद का नामो निशान तक नहीं रहता। यही लोकमंगल की प्रतिष्ठा है। इन दोनों ग्रन्थों में जनधर्म ही निहित है, जो नित्य सनातन कहा जा सकता है और इसमें भारतीय संस्कृति का प्राचीन एवं नवीन समग्र रूप झलकता रहता है। इनको पढ़कर क्या करना चाहिए? क्या नहीं करना चाहिए? इसका विवेचनात्मक रूप पाठकों के सामने आ जाता है। रामचरितमानस तथा अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु सच्चे अर्थों में

---

1. रामचरितमानस 1/13/5

लोकमंगल की भावना से अनुप्रेरित और लोकहित के कार्यों से ओतप्रोत काव्यग्रन्थ हैं। इसी कारण यह न केवल भारत के सभी वर्गों, वर्णों और जातियों के बीच इतना लोकप्रिय है बल्कि विदेशों में भी मानव मात्र का काव्य समझकर इसका समादार हुआ है। विश्व की अनेक भाषाओं में रामचरितमानस का अनुवाद भी हुआ है।

आधुनिक युग में जबकि विज्ञान प्रमुख रहा है, और मूल्यों का विघटन हो रहा है, ऐसी अवस्था में आज के लोगों को चाहिए कि वह मूल्यों का परीक्षण करते हुए उन्हें पूरी शक्ति से, व्यवस्थापित करने का प्रयत्न करे। आधुनिक दृष्टिकोण भौतिक है। प्राचीन दृष्टिकोण आध्यात्मिक है। रामचरितमानस एवं एषुत्तच्छन के रामायण में आध्यात्मिकता की पृष्ठभूमि में ही कथा को सजाया है। यही इन दोनों ग्रन्थों की प्रमुख विशेषता रही है। दोनों ग्रन्थों में काम क्रोध रहित आचरण पर बल दिया गया है। राम के जीवन से उदाहरण देकर काम क्रोध रहित आचरण का चित्रण दोनों ग्रन्थों में किया गया है। दोनों कवियों केलिए समष्टिगत लोककल्याण ही प्रिय रहा है। काम क्रोध रहित आचरण पर बल देकर तुलसीदास कहते हैं

"तात तीनि अति प्रबल खल काम क्रोध अरु लोभ।"[1]

ये काम और क्रोध दुष्ट होते हैं और प्रत्येक व्यक्ति की दुष्टता को बढ़ावा देते हैं। एषुत्तच्छन ने अध्यात्मरामायणम् में काम क्रोध, लोभ आदि को मन की मलिनता कहा है। इसलिए इन सबको छोडकर मन को स्वच्छ एवं निर्मल करने से ही कल्याण होता है। काम-क्रोध आदि को गीता में नरक का द्वार कहा गया है और आत्मा के नाशक माना है। चित्तशुद्धि के साथ-साथ दया, क्षमा आदि का विकास काम-क्रोध-जन्य अमंगल को दूर करता है और मंगल की स्थापना करता है। संसार में सुखपूर्ण जीवन बिताने केलिए सहज

1. रामचरितमानस - 3/38

ज्ञान एवं शाश्वत शांति की ज़रूरत है, यह शांति लोभ, क्रोध, वैर, ईर्ष्या, आदि को नष्ट भी करती है। इस प्रकार के अनेक तत्व मानस एवं अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु को उच्चकोटि पर पहूँचाने में सफल रहे हैं।

भारतीय संस्कृति के अध्यात्मिक स्वरूप के अंतर्गत सत्य, अहिंसा, परोपकार लोकसंग्रह आदि का महत्वपूर्ण स्थान है। संसार में सत्य की महत्ता को श्रेष्ठ माना गया है। तुलसी एवं एषुत्तच्छन राम को सत्य की साकार मूर्ति मानते हैं। मानस में यों वर्णित है

"सत्यमूल सब सुकृत सुहाए।"[1]

वेद की मर्यादा का रक्षक एवं सत्यप्रतिज्ञ श्रीरामचन्द्रजी का अवतार जगत् के कल्याण केलिए हुआ। इस प्रकार आज के युग के अनुकूल कई तत्व मानस एवं अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में प्राप्त होते हैं। प्राचीन के गर्भ से इन नये तत्वों को निकालकर उन्हें प्रगतिशील युग के योग्य बनाने का काम आज के लोगों का है। आज के विशृंखलित वातावरण में शांति का बीज बोने केलिए इन ग्रन्थों का महत्वपूर्ण स्थान है। प्राचीन को छाँटकर साधक तत्वों को अपनाते हुए बाधक तत्वों को छोड देना आज के बुद्धिजीवियों का काम है। ऐसा करने से प्राचीन धरातल पर नवीन संस्कृति का निर्माण किया जा सकता है। मानवता का उद्धार करके लोकमंगल की स्थापना करना इन रचनाकारों का उद्देश्य है। आज के युग में यह बहुत आवश्यक है।

निष्कर्ष

तुलसी और तुंचन लोकजीवन से गहरी आस्था रखनेवाले कवि थे। दोनों परमभक्त एवं योगी थे। तुलसी की अपेक्षा तुंचन का प्रभावक्षेत्र बहुत कम दिखाई पडता

---

1. रामचरितमानस - 2/27/3

है। तुलसी साहित्य संभवतः हिन्दी साहित्य का सबसे संपुष्ट अंग है। संसार की प्रायः समस्त भाषाओं में रामचरितमानस का अनुवाद भी हो गया है। जिस प्रकार तुलसीदास ने मानस में 'नानापुराणनिगमागमसम्मत' होने पर भी अपनी मौलिकता के अलग दर्शन कराये हैं वैसे ही एषुत्तच्छन का अध्यात्मरामायणम् संस्कृत के अध्यात्मरामायण पर आधारित होते हुए भी मौलिक उद्‌भावनाओं के बल पर स्वतंत्र रहनेवाला काव्य है। भक्ति-रस इनकी कविता का प्राण है, और इसका प्रभाव भी प्रस्तुत ग्रन्थ में देखा जा सकता है। उत्तर एवं दक्षिण भारत के लोगों के बीच में ही नहीं पूरे भारत में इन ग्रन्थों की ख्याति बढ़ गयी है। दोनों रचनाएँ सुखी जीवन बिताने केलिए आवश्यक सदाचरण और लोकोत्तर सत्य को प्रस्तुत करने में सक्षम है।

इस प्रकार भारत के किसी कोने में स्थित न रहकर समूचे भारत को शोभित करनेवाले, उत्तर-दक्षिण की सांस्कृतिक एकता को दिखानेवाले कवि थे तुलसीदास और एषुत्तच्छन। इन्होंने तड़पती जनता को अपनी अमृतनिष्यंदिनी भक्तिधारा से सिंचित किया, जिसके फलस्वरूप उसमें प्राणों का संचार फिर से हुआ। इस महान कार्य केलिए रामकथा एवं रामभक्ति उनकेलिए आधार एवं माध्यम के रूप में ख़डी हुई। समग्र लोकजीवन को शीतलता प्रदान करके बहनेवाली स्रोतस्विनी धारा के समान रामचरितमानस एवं अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु आज भी महत्वपूर्ण रहे हैं। लोकजीवन की नस-नस से परिचित ये दोनों रचनाकार अपनी कृतियों के माध्यम से लोकजनता के यथार्थ जीवन की झाँकी प्रस्तुत करते हैं। लोकमंगल की साधना से युक्त ये दोनों रचनाएँ आज के युग केलिए बहुत उपयोगी हैं।

.....📖.....

तीसरा अध्याय

रामचरितमानस एवं अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में लोकसमाज

साहित्य एवं लोकसमाज

साहित्य में समाज की परिव्याप्ति शाश्वत एवं चिरस्थायी तत्व है। भारतीय संस्कृति का मूल तत्व भारतीय साहित्य में उपलब्ध है। सभी साहित्य लोक से जन्म लेकर आगे बढ़ते हैं और ऊँचा उठते हैं। भारत की सांस्कृतिक, राजनैतिक और सामाजिक जटिलताओं में जो उतार-चढ़ाव भारतीय लोकमानस को झेलने पडे हैं, उसमें लोक साहित्य की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। 'साहित्य को लोकचित्त का प्रतिबिंब कहा जाता है।'[1] अर्थात् साहित्य लोकजीवन की व्याख्या ही नहीं, जीवित रहने की प्रक्रिया भी है। मानव की चिरंतनता साहित्य में सुरक्षित रहती है। इस संदर्भ में उसके समक्ष 'लोक' होता है और इसी लोक केलिए उसके शब्दों में तीक्ष्णता और प्रखरता आती है। भारतीय साहित्य को प्रभावित करने में भारतवर्ष की आध्यात्मिक और दार्शनिक परंपराओं और सिद्धान्तों का योगदान महत्वपूर्ण है। रामायण, महाभारत की काव्यात्मकता उतनी ही प्रखर और ओजपूर्ण है जितनी उनकी आध्यात्मिक गहनता। लोकमानस को स्पर्श करनेवाला रामकथा संबन्धी अनेक साहित्य प्रचीनकाल से लेकर आज तक प्रचलित है।

साहित्यकार, साहित्य और लोकजीवन का अन्योन्याश्रित संबन्ध है। साहित्यकार अपने परिवेश तथा परिस्थितियों से अवश्य प्रभावित होता है। समाज से संबद्ध रखकर ही

---

1. समाज और संस्कृति सावित्री चन्द शोभा - पृ. 1

उसकी रचना-दृष्टि का विकास होता है। वह लोकजीवन से अर्जित जीवन्त अनुभवों को साहित्य के माध्यम से अभिव्यक्ति देकर लोकचेतना का परिष्कार करता है। "साहित्यकार का दायित्वबोध तथा जनकल्याणकारी भावनाओं का सत्य साहित्य में लोकचेतना के सहज प्रवाह में ही विद्यमान रहता है। इसलिए रचनात्मक साहित्य की उपादेयता साहित्यकार द्वारा प्रीतपादित लोककल्याणकारी भावनाओं के प्रसार में ही निहित रहती है।"[1] मतलब लोकभाषा-साहित्यकार ही लोकसमाज के सच्चे चितेरे हैं। इनके काव्य में लोकजीवन के ऐसे चित्र उभरते हैं कि उनकी यथार्थता उनको प्रभावित कर देती है। जनमानस की मान्यताएँ, कामनाएँ, सुख-दुःख, सन्ताप-उल्लास आदि इनके साहित्य की भाव-भूमि बनती है। सत्यं, शिवं, सुन्दरं का सहज रूप लोक-कवि के चिन्तन में सदैव विद्यमान रहता है।

लोकसमाज़ की विशेषताएँ

मनुष्य एवं अन्य अनेक तत्वों को अपने में समेटकर चलनेवाली एक संस्था है समाज। यही संस्था बाद में व्यक्तियों केलिए एक व्यवस्था बनाती है। इस प्रकार व्यक्ति और समाज के बीच एक पारस्परिक संबन्ध रहता है। सचमुच व्यक्ति का विकास समाज द्वारा संभव है। "मनुष्य के संघ को समाज कहते हैं। मनुष्य का वास्तविक परिचय समाज द्वारा ही होता है।"[2] समाज शब्द का अर्थ है अच्छी तरह रहना। इसकी व्युत्पत्ति यों बतायी गई है-

'सम्यक् अजन्ति गच्छन्ति जना अस्मिन् इति समाज :'[3]

जहाँ लोग एक दूसरे की सहायता, उपकार करते हुए सभी की कल्याण कामना करते हुए समष्टि चेतना से प्रभावित होकर रहते हैं, वही वास्तव में समाज है। एक ही समाज में

---

1. लोकचेतना और हिन्दी कविता डॉ हरिशर्मा पृ. 2
2. महाभारतकालीन समाज सुखमय भट्टाचार्य पृ. 9
3. भारतीय समाज का स्वरूप डॉ सीताराम श्याम झा पृ. 76

विविध प्रकार की धार्मिक एवं सांस्कृतिक भावनाओं को लेकर प्रत्येक व्यक्ति अपनी-अपनी जाति को कायम रखने केलिए स्वतंत्र है। र्‌यूटर ने स्पष्ट ही कहा है

"A society is a permenant and continuing grouping of men, women and children able to carry on independently the process of racial perpetuation and maintainance on their own cultural level"[1]

इस प्रकार समाज का अर्थ बहुत व्यापक है।

समाज का अभिन्न अंग व्यक्ति है। वास्तव में समाज व्यक्तियों के अन्तः संबन्धों की उपज एवं एक जटिल व्यवस्था है। समाज और व्यक्ति के अन्तः संबन्ध के बारे में प्रसिद्ध समाजशास्त्री लापियर का मत है कि "The term society refers not to a group of people, but to the complete pattern of the norms of interaction that rise among and between them"[2] प्रत्येक व्यक्ति जन्म से ही समाज का सदस्य होता है। यहाँ भिन्न जाति के भिन्न पेशों के लोग रहते हैं, जिनमें पुरुष, स्त्री, बच्चे आदि भिन्न वर्गों को देखा जा सकता है। लेकिन ये सब अपने भावों और सांस्कृतिक विचारधाराओं को स्वतंत्रता के साथ व्यक्त कर सकते हैं। समाज रूपी नींव पर व्यक्ति और उसके ज़रिए परिवार तथा अन्य तत्वों का निर्माण एवं भरण-पोषण संभव है।

लोकसमाज में सामान्य जन जीवन का सच्चा तथा स्वाभाविक चित्रण याने जीवन का यथार्थ झलकता है। सामाजिक संस्थाओं तथा संस्कारों के वर्णन से लोकसमाज का एक संपूर्ण चित्रण उभरता है। लोकसमाज में पर्व, त्योहार आदि का बहुत महत्व माना गया है। क्योंकि ये ऐसे अवसर होते हैं, जबकि सामाजिक विचारधारा फलीभूत होती है। ये संस्कार लोगों के हृदय-पटल पर सदा अंकित हो जाता है। समाज की आस्था, विश्वास,

---

1. Society - R.M. Meckaver and Charles - P. 5
2. Sociology - Lapier - P 9

अनुष्ठान, पूजा आदि प्रायः परंपरा से लोकजनता के जीवन में प्रवेश पा गए हैं। लोकगीत, लोकसंस्कृति, धर्म तथा अनेक नैतिक आदर्श लोकसमाज को और श्रेष्ठ बनाते है। लोकसंबन्धी विचार लोकसमाज में लोगों की आशाओं और आत्मभावों से संबन्धित है। सामान्य जन समूह के बीच लोक की युग युगीन वाणी साधना समाहित रहती है। इसमें लोकमानस प्रतिबिंबित रहता है। सामाजिक आदर्श बनाये रखने में सत्य, त्याग, दान, परोपकार जैसे तत्वों का बहुत बड़ा हाथ रहा है। 'सत्यं वद, धर्म चर' लोक केलिए महत्वपूर्ण है। पिता का त्याग, पुत्र का अनुराग, भाई बहन का पवित्र संबन्ध ये सब लोकजीवन की अपनी महान् संपत्ति हैं। आज सभ्यता की लहरों ने सामाजिक गतिविधियों में परिवर्तन किया है। फिर भी लोकसमाज में भारतीयता का अंश आज भी वर्तमान है। बडों का आदर करना, मातृधर्म, पुत्रधर्म, पत्नीधर्म आदि को लोकजनता श्रेष्ठ मानती है। 'मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, आचार्यदेवो भव आदि की गूँज लोकजनता के बीच दिखाई पड़ती है। यहीं से लोकमंगल की शुरुआत है।

लोकजीवन की पहचान, लोकमानस या लोकहृदय या जिसे लोकचित्त, कहते हैं; उसकी परख करके पूरी जीवंतता में उद्घाटित कर पाना एक बहुत बडी अपलब्धि है, जो भक्तिकालीन कवियों को हासिल हुई और जिसे आज भी हम अप्रतिम मान सकते हैं। 'हम लोकजीवन के यथार्थ, लोक के कष्ट, पीडा या दुःख, दर्द, हर्ष उल्लास की अभिव्यक्ति में सच्चे मानवीय साहित्य की पहचान मानते हैं और भक्तिकाव्य हमें उसकी बानगी देता है।'[1] इस तथ्य को जानने केलिए वेद और पौराणिक साहित्य की ओर पीछे मुडकर देखना अपेक्षित है। भक्तिकालीन लोकनायक के रूप में उत्तरभारत में तुलसीदास और दक्षिणभारत में एषुत्तच्छन का आविर्भाव लोकजनता को प्रभावित करने केलिए पर्याप्त था। तुलसी का रामचरितमानस तथा एषुत्तच्छन का अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु उत्तर तथा दक्षिण के

---

1. भक्तिकाव्य और लोकजीवन शिवकुमार मिश्र - पृ. 7

लोकजीवन को ही लेकर चलते हैं। ये दोनों ग्रन्थ लोकजीवन एवं संस्कृति की अक्षयनिधि हैं। लोकसमाज की सभी विशेषताओं से ओतप्रोत ये ग्रन्थ कालसीमा को लाँघकर कुटी से राजमहल तक सुशोभित रहते हैं।

रामचरितमानस एवं अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में चित्रित लोकसमाज

तुलसीदास का रामचरितमानस एवं एषुत्तच्छन का अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु लोकसंग्रह एवं लोककल्याण को लेकर चलनेवाली रचनाएँ हैं। इनमें सर्वसाधारण जनता का राजा से लेकर रंक तक, सुखी, दीनहीन, शोषित, पतित-पीड़ित सभी लोगों का चित्रण है; जिनका कवियों ने सामान्य मानव के स्तर पर चित्रण प्रस्तुत किया है। वास्तव में तुलसीदास और एषुत्तच्छन का प्रमुख उद्देश्य लोकजीवन के इन्हीं आदर्शों को स्पष्ट करना रहा है। ये जिन परिस्थितियों में जिए, अपनी तीर्थयात्राओं में इन्होंने जिस लोकजीवन के दृश्यों को अनुभव किया और बाद के जीवन में जिन चुनौतियों का सामना किया उन सबसे लोक को प्रत्यक्ष रूप में देखा। तुलसी एवं एषुत्तच्छन लोकविद् थे। इन्होंने लोकसंस्कृति का निरीक्षण ही नहीं किया था, वरन् उसमें रहकर उसे पढ़ा था और ठीक तरह से अपनी अनुभूति में ढाला था।

रामचरितमानस एवं अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में समाज का विविध रूप दर्शाया गया है। मानस में समाज को व्यापक अर्थों में प्रयुक्त किया गया है। मानस तथा अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में त्रिविध समाज का उल्लेख है। रामकथा के श्रोता पुर, ग्राम तथा नगर के रहनेवालों को बताया गया है। तीनों प्रकार के श्रोताओं के समाज रामकथा सरिता के दोनों किनारों पर बसे हैं। इनमें ग्राम्य समाज ही पुर या नगर समाज से ज़्यादा लोक से जुडे हुए हैं। क्योंकि प्राचीनकाल से ही ग्राम्य जनता लोकसंस्कृति की वाहक थी। मानस तथा अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में भी इसका विशेष उल्लेख है।

लोक और ग्राम्य समाज

भारत में सदैव से ही नगरों की तुलना में गाँवों की संख्या कहीं अधिक रही है। गाँव की ज़िन्दगी लोकजीवन के निकट है। नगरों के लोगों की अपेक्षा ग्रामीण लोगों में भोलापन, निष्कपटता आदि गुण दिखाई पडते हैं। रामचरितमानस एवं अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में वनखण्डों, चित्रकूट एवं ग्राम्य वधुओं का चित्रण मर्मस्पर्शी होते हुए भी किसी भी काल और देश पर समान रूप से लागू हो सकते हैं। तुलसी और एषुत्तच्छन ग्रामीण एवं जन जातियों के भोलेपन और सहृदयता का वर्णन करते हैं। तुलसी ने एषुत्तच्छन की अपेक्षा ग्रामों की रचना, उनका महत्व एवं कार्यविधियों पर विशेष प्रकाश डालने पर भी बहुसंख्यक ग्रामीणों के सरल और सौहार्दपूर्ण जीवन तथा गाँवों और खेडों को बसाने की प्रक्रिया को अपना आधार बनाया है। गाँव से तुलसी का तात्पर्य उन सभी लघु बस्तियों से है जो नगरों से बाहर नदियों, पर्वतों के समीप तथा वन्य प्रदेशों के मध्य बसे हैं। ग्राम्य जनों में भी तुलसी सरलहृदय किसानों के साथ जन जातियों, कोल-किरात, भील आदि को सम्मिलित कर लेते हैं। एषुत्तच्छन की अपेक्षा तुलसीदास ने मानस के ज़रिए ग्राम्य जन-जीवन के खुले चित्र को प्रस्तुत किया।

रामचरितमानस में ग्राम्य समाज

तुलसीदास ने रामचरितमानस के अयोध्याकाण्ड में गाँववासियों का चित्रण अत्यंत सुन्दर ढंग से किया है। गाँववासियों के चित्रण में लोकसंस्कृति के चित्रों की अनुपम सजावट है। सभ्य समाज की अपेक्षा लोकसमाज में भाव की प्रधानता होती है। फलतः सहानुभूति, सहृदयता और पर-दुःख कातरता, के भाव लोक अथवा ग्राम संस्कृति में नागरिक संस्कृति से अधिक मिलते हैं। राम, लक्ष्मण तथा सीता के प्रति ग्राम-निवासियों की सहानुभूति और उनका स्नेह गहरा है। यों देखिए

'राम लखन सिय रूप निहारी। पाइ नयन फलु होहिं सुखारी।।

सजल बिलोचन पुलक सरीरा। सब भए मग्न देखि दोउ बीरा।।"[1]

यमुना के किनारे राम, सीता, लक्ष्मण के पहुँचते समय ये ग्रामीण स्त्रियाँ उनकी इस नियति पर अपना दुःख प्रकट करते हैं। भरद्वाज के आश्रम में श्रीराम के आने की खबर सुनकर प्रयागनिवासी, ब्रह्मचारी, तपस्वी, मुनि, सिद्ध सब आये। प्रयाग में भरद्वाज से भेंट होने के पहले मार्ग में राम-सीता-लक्ष्मण का ग्रामवासियों से भेंट होती है। ग्राम्य संस्कृति का चित्र यहाँ देखा जा सकता है। साथ ही इन स्थलों में मनोवैज्ञानिक चित्रण ही किया है। भरद्वाज के आश्रम से लौटते वक्त किसी गाँव के पास से होकर निकलते वक्त भी स्त्री-पुरुष दौडकर उनके रूप को देखने लगते हैं। नगरों की अपेक्षा गाँववासियों के ये चित्रण लोकसंस्कृति में अधिक मात्रा में देखे जा सकते हैं।

देखिए

'सीता लखन सहित रघुराई। गाँव निकट जब निकसहिं जाई।

सुनि सब बाल वृद्ध नर नारी। चलहिं तुरत गृह काजु बिसारी।'[2]

यमुना के किनारे पर रहनेवाले स्त्री-पुरुष उन्हें देखकर अपने भाग्य की बडाई करने लगे। उनके मन में बहुत ही लालसाएँ भरी हैं। पर वे नाम, गाँव आदि पूछने पर सकुचाते हैं। उन लोगों में वयोवृद्ध और चतुर लोग हैं उन्होंने श्रीरामचन्द्रजी को पहचान लिया। यहाँ स्पष्ट रूप से गाँववासियों के भोलेपन को दर्शाया गया है।

ग्राम्य संस्कृति में अतिथि सत्कार का महत्वपूर्ण स्थान है। सच्ची सहानुभूति वहाँ कार्य कर रही होती है। उनके आतिथ्य की एक स्वाभाविक झाँकी तुलसी के शब्दों में इस प्रकार है

---

1. रामचरितमानस - 2/113/2
2. मानस 2/113/1

'एक देखि वट छाँह भील डासि मृदुल तृन पात।

कहहि गवाँइअ छिनुकु श्रमु गवनब अबहि कि प्रात।।

एक कलस भरि आनहिं पानी। अँचइस नाथ कहहिं मृदु बानी।'[1]

यहाँ स्त्री-पुरुष श्रीराम, सीता तथा लक्ष्मण की थकावट को दूर करने केलिए उत्साहित थे। वे लोकरीति से अनभिज्ञ नहीं थे।

राम के विषय में जानने के औत्सुक्य के कारण ये गाँववासी अत्यंत सकुचाकर सीता से पूछते हैं

'कोटि मनोज लजावनिहारे। सुमुखि कहहु को आहिं तुम्हारे।।'[2]

किन्तु पति का नाम लेने अथवा पति है कहने पर लोकसंस्कृति में न जाने कितने विशवास गढ़े रखे हैं। ऐसा कहने से पति की आयु घट जाती है आदि। इन विश्वासों के भीतर छिपी हुई 'लज्जा' को सभ्य संस्कृति में स्पष्ट कर लिया गया। 'लज्जा' का नग्नरूप ग्राम्य संस्कृति में नहीं मिलता। वहाँ लज्जा विश्वासों के आवरण में लिपटी है। अत: पति के परिचय का स्त्री द्वारा व्यक्त करने की एक शैली लोकसंस्कृति में बनी उसका रूप अयोध्याकाण्ड में यों वर्णित है

'तिन्हहि बिलोकि बिलोकति धरनी। दुहूँ सकोच सकुचति बरबरनी।।'[3]

आगे इस परिचय का लोक संस्कृतिपरक रूप इस प्रकार खडा होता है

"बहुरि बदनु बिधु अंचल ढाँकी। पिय तन चितइ भौंह करि बाँकी।।

खंजन मंजु तिरीछे नैननि निज पति तिनहि कहेंउ सिय सैननि।।"[4]

---

1. मानस 2/114/1
2. वही 2/116/1
3. वही 2/116/2
4. वही 2/116/3

इस प्रकार केवल सैनों से अपने पति का परिचय देना अपने पति के प्रति आदर भाव दिखाना ग्राम्य एवं लोकसंस्कृति का ही परिचायक है। लेकिन लक्ष्मण द्वारा रास्ता पूछते वक्त उन लोगों की उदासीनता दर्शायी जाती है। बाद में जटा-वल्कल धारण करके भरत को आते देखकर उनके बारे में ग्रामीण स्त्रियों के बीच जो तर्क है, ये सब ग्रामीण जीवन की सहजता का द्योतक है। तुलसीदास ने चित्रकूट के पथ पर अग्रसर राम को अनेक ग्रामनिवासी, नरनारियों से मिलाया है तथा अनेक ग्रामों में से होकर अनेक मार्गों को चित्रित किया है। कुलवधू की मर्यादा, ग्राम देवताओं की पूजा आदि ग्राम्य जीवन की विशेषताएं है। ग्राम्य जीवन का यथार्थ चित्रण मानस में देखा जा सकता है। तुलसी भी लोक में अतुल्य बन गये। एषुत्तच्छन के अध्यात्मरामायणम् में इस प्रसंग का उल्लेख नहीं। ग्राम्य समाज का वर्णन इन्होंने नहीं किया। लेकिन इसके अंतर्गत आनेवाले वन्य समाज का चित्रण किया है।

वन्य जातियों का समाज

ग्राम्य जीवन के अंतर्गत ग्रामवासियों के चित्रण के साथ वन्य जातियों का चित्रण भी आता है। राम वनवास के अवसर पर शृंगिवेरपुर में निषादराज गुह से भेंट मानस एवं अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु के आयोध्याकाण्ड में अत्यंत सुन्दर ढंग से चित्रित है। निषादराज तथा अन्य वन्य जातियों को लगभग उसी साँचे में ढाला है, जिसमें मार्ग के अन्य ग्रामवासियों को। इससे यह ध्वनित होता है कि निषादों पर लोकसंस्कृति का प्रभाव पड चुका था। उदार तथा सरल संस्कृति के सभी अंगों को इस जंगली जाति ने अपना लिया था। अतिथि सत्कार की भावना इनमें भी देखी जा सकती है। तुलसी के अनुसार

'यह सुधि गुह निषाद जब पाई। मुदित लिए प्रिय बंधु बोलाई।
लिए फल मूल भेंट भरि भारा। मिलन चलेउ हियँ हरषु अपारा।।'[1]

1. मानस 2/87/1

एषुत्तच्छन के अध्यात्मरामायणम् के अयोध्याकाण्ड में भी इसका उल्लेख है।

'रामगमनमहोत्सवमेत्रयुमामोदमुळ्क्कोंडुकेट्टुगुहन तदा
स्वामियायिष्टवयस्यनायुळ्ळोरु रामन्तिरुवडियेक्कण्डु
वन्दिप्पान् पक्वमनस्सोडु भक्त्यैव सत्वरं पक्वफलमधुपुष्पादिकळेल्लां
कैकोण्डुचेन्नुरामाग्रेविनिक्षिप्य भक्तैवदण्डनमस्कारवुं चेय्तु।'[1]

(श्रीराम का आगमन सुनकर निषादराज गुह ने उसे देखकर प्रणाम करने केलिए अत्यधिक आदरपूर्वक शान्त मन से भक्ति के साथ मीठे कन्द, शहद, फूल आदि लेकर राम का दण्डनमस्कार किया।)

यहाँ निषाद की भक्ति, भोलापन आदि दर्शनीय है। अतिथि का उचित सत्कार करने में वे समर्थ हैं। भरत आगमन के अवसर पर भी गुह ने मछली, फूल फल आदि से उन्हें सम्मनित किया। इस भेंट में वन्य भौतिक संस्कृति और भी स्पष्ट हो जाती है। इसमें उनका शिकारी जीवन तथा मछुआ जीवन स्पष्ट है। ये लोकसमाज की खास विशेषताएँ हैं। प्रकृति, पेड-पौधे तथा पशु-पक्षियों से मनुष्य का जितना संबन्ध था, यह देखा जा सकता है। श्रीराम-सीता को सोने केलिए गुह ने कुश और कोमल पत्तों की सुन्दर साथरी सजाकर बिछा दी। गुह का निष्कपट प्रेम यहाँ देखा जा सकता है। राम-सीता की इस अवस्था को देखकर उनके हृदय में विषाद भी हो गया। ग्राम-जीवन की निस्वार्थता, सरलता और स्वाभाविकता का मूर्त रूप गुह में दिखाई पडता है।

दूसरी सूचना गुह के केवट होने से मिलती है। राम-लक्ष्मण सीता को गंगा पार कराके उन्हें रास्ता दिखाने केलिए भी वे तैयार हो जाते हैं। यहाँ नाव पर चढ़ते समय केवट ने राम का चरण कमल पखारने के लिए कहा। तुलसी ने इसका चित्रण इस प्रकार किया है कि

1. अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु - पृ. 128

'एहिं प्रतिपालउँ सबु परिवारू। नहिं जानउँ कछु अउर कबारू।।

जौं प्रभु पार आवसि गा चहहू। मोहि पद पदुम पखारन कहहू।।"[1]

अध्यात्मरामायणम् में एषुत्तच्छन ने केवट की मनोभूमि इस प्रकार व्यक्त की है

'स्वामिन्नियंद्रोणिकां समारुह्यतां सौमित्रिणाजनकात्मजयासमं

तोणितुष्युन्नतुमडियन् तन्ने मानववीर ममप्राणवल्लभ।'[2]

(गुह का कथन है कि स्वामी आप सीता-लक्ष्मण के साथ स्वयं इस दास द्वारा चलायी नाव पर चढिए।)

जब राम-सीता आगमन की खबर अन्य कोल-किरात पाते हैं तो उनके हर्ष की सीमा नहीं।

'यह सुधि कोल किरातन्ह पाई। हरषे जनु नव निधि घर आई।।

कंद मूल फल भरि भरि दोना। चले रंक जनु लूटन सोना।'[3]

निषाद, कोल-किरात जैसी वन्य जातियों के मानसिक जगत् की करुणा तथा सहानुभूति की अजस्र धारा के दर्शन कराने केलिए उक्त झाँकियाँ पर्याप्त हैं। इस प्रकार तुलसीदास और एषुत्तच्छन ने मानस एवं अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में ग्राम्य जीवन के अतंर्गत आनेवाले ग्रामवासियों के चित्रण में गुह, कोल, किरात जैसी वन्य जातियों का उल्लेख किया है। लोकसमाज में ग्रामीण जीवन की यथार्थ झाँकी इन पात्रों में दर्शित है। नागरिक जीवन की कृत्रिमता यहाँ दिखाई नहीं पडती।

वस्तुतः लोकजीवन बडा व्यापक है। आज के विशृंखलित वातावरण में यह कहना उचित है कि लोकजीवन न तो ग्राम्यता से युक्त है और न नागरिक वैयक्तिकता से।

---

1. मानस 2/99/4
2. अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु पृ. 132
3. मानस 2/134/1

इसके भीतर ग्राम्य नागरिकता है। ग्राम्य जीवन सामुदायिक जीवन है। प्रायः वहाँ के कामों में गाँव के समस्त जन सम्मिलित होते हैं। यदि कोई उत्सव, पर्व या त्योहार है या कोई सांस्कृतिक समारोह है तो गाँव का सारा समाज उसमें शामिल है। आचार-मर्यादा गाँवों में ज्यादा है। ग्राम समाजों में लोककल्याणकारी लोकतत्व ज्यादा निहित हैं। राम नगर समाज से लोकसमाज में अपने को मिलाकर लोकभावनाओं को समझकर लोकचित्त की अभिव्यक्ति करके लोकनायक भी बन गये। मानस तथा अध्यात्मरामायणम् इसी लोकहित को लक्ष्य करके लिखित महान् रचनाएँ हैं। इनमें जाति, धर्म के भेद के बिना मानव को चाहनेवाले मानव का चित्र सुन्दरता के साथ अंकित हुआ है। यहाँ पर सब मानव एकचित्त होकर एक दूसरे केलिए उपयोगी रहते हैं, एक दूसरे की भावनाओं को समझते हैं और एक दूसरे के प्रति सहानुभूति प्रकट करते हैं। रामचरितमानस में कोल-भील किरात एवं अयोध्यावासियों का गले लगने का वर्णन है। यह तुलसी के द्वारा चित्रित सच्चा यथार्थ है, जो लोकतत्व का लिए हुए है। यहाँ लोक का सच्चा रूप सामने आता है। तुलसी आत्मा को प्रमुख मानते थे, जो राम का परमात्मा का प्रतिरूप था। आत्मा सबमें समान है। प्राचीनकाल से लेकर आज तक यह तथ्य मानव के सामने है और तुलसी ने इसी का सहज रूप अयोध्यावासियों और कोल-भील किरातों के गले लगने में दिखाया है।

लोकजीवन और प्रकृति

लोकजीवन के साथ हमेशा रहनेवाली प्रकृति का क्षेत्र अत्यंत व्यापक है। पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश जैसे पाँच तत्वों से भरपूर प्रकृति को लोग सत्य मानते हैं। प्रकृति के रंग-रूपों, आकार-प्रकारों की विचित्रता, विविधता, विराटता, निर्जनता, भयानकता, रहस्यमयता, और इसके साथ उसकी कोमलता, शान्ति, उल्लास, आनन्द आदि लोकजीवन के विकास केलिए प्रेरक एवं संघटक बन गए हैं। मानव जीवन में सौंदर्य

का स्थापना करके उसे कलात्मक बनाने का श्रेय भी उसके चारों ओर फैली हुई प्रकृति को ही है। अर्थात् प्रकृति लोकजीवन का एक अभिन्न अंग है।

अनादिकाल से ही मानव और प्रकृति का धनिष्ठ संबन्ध है। मानव की भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ-साथ उसके हृदयस्थ शोक, भय, करुणा, विस्मय, प्रेम, उत्सुकता, सहानुभूति आदि भावनाओं का स्फुरण भी प्रकृति के अद्भुत क्रिया-कलाप से होता है। जन्मकाल से ही मानव प्रकृति की गोद में पलता और बडा होता है। आरंभ में प्रकृति मानव की सहज वृत्तियों का समाधान करती है, और अव्यक्त रूप में मानव का उसके साथ संबन्ध हो जाता है। वर्डस्वर्थ ने 'प्रकृति और मानव का अन्योन्याश्रित संबन्ध माना है।'[1] अर्थात् प्रकृति मानव के ज्ञान का आधार एवं मानव के सुख-दुःख की गवाह भी है। मानस तथा अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में तुलसी तथा एषुत्तच्छन ने लोकजीवन के साथ प्रकृति का अटूट संबन्ध दिखाया है।

रामचरितमानस एवं अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में चित्रित प्रकृति

मानव और प्रकृति के घनिष्ठ रागात्मक संबन्ध के कारण संस्कार रूप में प्राप्त उसका प्रकृतिप्रेम काव्य में भी अभिव्यक्ति पाता है। प्रकृति को लोकजीवन के साथ जोडकर लोगों के स्पन्दन को पहचाननेवाले कवि थे तुलसीदास और एषुत्तच्छन। रामचरितमानस एवं अध्यात्मरामायम् किळिप्पाट्टु में उनका यह प्रकृति चित्रण मानव के साथ तादात्म्य स्थापित करता हुआ दिखाई पडता है। भारतीय संस्कृति के प्रति अगाध श्रद्धा व प्रेम रखनेवाले तुलसी और एषुत्तच्छन की प्रकृति के प्रति विराट एवं उदात्त दृष्टि रही है। 'मनुष्य और प्रकृति के बीच एक आत्मीय संबन्ध करनेवाले तुलसीदास प्रकृति के प्रौढ़ एवं सूक्ष्म

---

1. Wordsworth considered man and nature are essentially adopted each other and the mind of man as naturally the mirror of the fairest and most interesting properties of nature - criticial approach to literature - David Dauches - P 92

निरीक्षक एवं प्रकृति प्रेमी थे।'[1] परिवर्तनशील प्रकृति के अनेक प्रसंग मानस एवं अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में देखे जा सकते हैं। राज्याभिषेक के समय लोगों का हर्ष-उल्लास, राम वनगमन के समय शोक भावना, चित्रकूट प्रसंग में भरत का भ्रातृप्रेम देखकर संपूर्ण प्रकृति का निश्चल हो जाना, सीता विरह से दुखित राम के साथ दुखित हो जाना, राम-रावण युद्ध की भयानकता में डरना आदि मानस एवं अध्यात्मरामायणम् के प्रकृति चित्रण के चातुर्य का उत्तम उदाहरण है। इतना ही नहीं, प्राकृतिक शक्तियाँ जैसे गंगा नदी, सूर्य, सर्प आदि का महत्व, चित्रकूट पर्वत का अनुपम सौन्दर्य आदि का चित्रण सभी को आकर्षित करनेवाला है। मानस एवं अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में प्रकृति चित्रण लोकजीवन के अनुकूल हुआ है।

मानव और प्रकृति के साथ धनिष्ठता को दिखाने में मानस एवं अध्यात्मरामायणम् काफी सफ़ल है। इसके अयोध्याकाण्ड में राम वनगमन के सन्दर्भ में प्रकृति के साथ घनिष्ठता और भी सशक्त बन जाती है। वल्कल धारण करके फल-मूल कन्द खाकर पेड के नीचे सोनेवाल राम-सीता-लक्ष्मण मानव और प्रकृति के संबन्ध को हमारे सामने रखते हैं। अध्यात्मरामायणम् में यों वर्णित है

'श्रीरामनुं तमसानदीतन्नुडे तीरंगमिच्चुवसिच्चु निशामुखे
पनियमात्रमुपजीवनंचेय्तु जानकियोडुनिराहारनायोरु वृक्षमूलेशयनंचेय्तुरङ्ङिन्नान्"[2]

(अर्थात् श्रीरामचन्द्रजी ने तमसा नदी के किनारे पर मात्र जलपान करके, बिना भोजन के जानकी सहित एक पेड के नीचे निवास किया। यहाँ प्रकृति की गोद में सोनेवाले राम-सीता हमारे प्रकृति प्रेम को बढ़ाते हैं। इतना ही नहीं प्रकृति के पेड-पौधे मनुष्य की

---

1. Imagery in Tulsidasa's Ramcharitamanas - Nandlal Tulsiram - P. 67
2. अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु - पृ. 126

थकावट दूर करते हैं। और इससे किसी न किसी प्रकार का फायदा भी मनुष्य को मिलता है। वटवृक्ष के दूध से जटा बनानेवाला राम-लक्ष्मण का चित्रण मानस में देखिए

'सकल सौंच करि राम नहावा। सुचि सुजान वट छीर मँगावा।।
अनुज सहित सिर लटा बनाए। देख सुमंत्र नयन जल छाए।।'[1]

अध्यात्मरामायणम् में इसका उल्लेख इस प्रकार है कि

'लक्षणंकोण्डुवन्नुवटक्षीरवुं लक्ष्मणनोडुं कलर्न्नु रघूत्तमन्
शुद्धवटक्षीर भूतिकळेकोण्डु बद्धमायोरु जटामकुडत्तोडुम्
सोदरन्तन्नाल् कुशदलाद्यङ्ङळाल्सादरमास्तृतमायतल पस्ताले।
पानीयमात्रमशिच्चु वैदेहियुं तानुमाय्पळ्ळिक्कुरिप्पु कोण्डीडिनान्।।'[2]

(अर्थात् श्रीराम लक्ष्मण के साथ वटक्षीर लाकर उसके दूध एवं प्रसाद से बँधे जटा सहित कुश की शय्या पर जलपान करके सीता सहित सोया।)

प्राकृतिक वस्तुएँ किसी भी काल में मनुष्य केलिए आवश्यक हैं। मेघनाद की शक्ति लगने पर लक्ष्मण की मूर्च्छा को दूर करनेवाली औषधि संजीवनी बूटी है। अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में एषुत्तच्छन ने इसका उल्लेख किया है। जैसे

'रण्डुशृंगङ्ङ्ळु यन्नुकाणामवरण्डिनुं मध्येमरुन्नुकळ् निल्पतुं।'[3]

मानस में इसका वर्णन यों हुआ है कि-

'कहा नाम गिरि औषधी जाहु पवनसुत लेन।।'[4]

---

1. मानस 2/13/2
2. अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु पृ. 128
3. वही पृ. 442
4. रामचरितमानस 6/55

अनेक वनवासियों, मुनिगण आदि की रक्षा भी प्रकृति करती है। अपने व्यावहारिक जीवन में लोग अनेक अवसरों पर कुछ पेड-पौधों की पूजा कर उनसे मनोरथपूर्ति केलिए वरदान भी माँगते हैं। वट के अलावा पीपल, तुलसी आदि की महत्ता भी देखी जा सकती है। तुलसी का पौधा घर में लगाना, उस पर दिया जलाकर पूजा करना एवं मनौती मनाना पेड़-पौधे के प्रति लोगों के आदर की भावना दिखाता है। तुलसी एक बडी औषधि भी है। इसका विशेष महत्व होने के कारण भक्त जन, मुनि, ब्राह्मण आदि इसको विपुल मात्रा में अपने घर के आँगन में रोपते हैं। मानस में यों कहा है कि

'तुलसी तरुबर बिबिध सुहाए। कहुँ कहुँ सियँ कहूँ लखन लगाए।'[1]

लोक में पेड-पौधे की तरह पवित्र नदियाँ भी प्रकृति की शोभा बढ़ाती हैं। शृंगिवेरपुर में गंगा के प्रति श्रीराम की भक्ति वास्तव में प्रकृति की पूजा है। प्रयाग में त्रिवेणी का वर्णन मानस में इस प्रकार देखा जा सकता है

'संगमु सिंहासनु सुठि सोहा। छात्रु अखयवटु मुनि मनु मोहा।।
चँवर जमुन अरु गंग तरंगा। देखि होहि दुःख दरिद मंगा।।'[2]

वन के अन्दर पर्णकुटी बनाकर रहनेवाले भरद्वाज, वाल्मीकि जैसे अनेक मुनिगण हैं। इनका जीवन सदा प्रकृति के साथ है। वहाँ की प्रकृति का सुन्दर चित्रण भी देखा जा सकता है।

प्रकृति चित्रण अपने संपूर्ण ऐश्वर्य के साथ चित्रकूट पर्वत के वर्णन में देखा जा सकता है। अध्यात्मरामायणम् के अयोध्याकाण्ड में यों कहा है कि

---

1. मानस 2/236/4
2. मानस 2/104/4

'तेक्कुवडक्कुंकिष्क्कुपडिञ्ञारुमक्षी विमोहनमाय रण्डुशालयुं।'

निर्मिच्चिविडेयिरिक्केन्नरुळ्चेयतु।"[1]

(अर्थात् चित्रकूट पर्वत और गंगा नदी के मध्य में एक पर्णशाला बनाकर उत्तर-दक्षिण पूर्व-पश्चिम में भी दो पर्णशालाएँ बनाकर वहाँ निवास किया।) मानस में यों कहा है

'कोल किरात वेष सब आए। रचे परन तृन सदन सुहाए।।

बरनि न जाहिं मंजु दुइ साला। एक ललित लघु एक बिसाला।'[2]

घास के पत्तों के घर में रहनेवाले राम-सीता के महत्व के साथ ही प्रकृति के महत्व को भी देखा जा सकता है। तुलसीदास कहते हैं कि राम के आगमन से वन में तरह-तरह के वृक्ष फूलने-फलने लगे हैं। उनपर बेलों के मण्डप छाये हुए शोभा को बढा रहे हैं। भौरों के गुंजार, शीतल मन्द सुवासित वायु सब प्रकृति के हर्ष का सूचक है। इन वर्णनों में तुलसी ने प्रकृति के हर्ष का मानव के सुख से तुलना की है। प्रकृति मानव के सुख के क्षणों में सुखी तथा दुःख के वातावरण में दुःखी दिखाई पडती है। मनुष्य के प्रति पशु और प्रकृति दोनों गहरी सहानुभूति रखते हैं। भरत और शत्रुघ्न जब अपने ननिहाल से लौट रहे हैं तो उन्हें अयोध्या के तालाब, नदी, बाग सभी श्रीहीन एवं उदास दिखाई पडते हैं, पशु-पक्षी भी शिथिल दिखाई पडते हैं। मानस में इसका वर्णत इस प्रकार है कि

'खग मृग हय गय जाहि न जोए। राम बियोग कुरोग बिगोए।'[3]

यहाँ मनुष्य के दुःख में भाग लेनेवाली प्रकृति की मनोदशा व्यक्त है।

---

1. अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु - पृ. 142
2. मानस 2/132/4
3. मानस 2/157/4

सूर्य, अग्नि आदि प्राकृतिक शक्तियों की पूजा करना प्रकृति के प्रति मनुष्य के सम्माननीय रूप को दिखाता है। इस प्रकार पेड़-पौधे, नदी-नाले, जीव-जन्तुओं के हर्षोल्लास से भरी हुई प्रकृति मनुष्य की अवस्था के अनुसार बदलती रहती है। यह प्रकृति का नियम है। लोकमानव उस प्रकृति में अपने को सहचारी मानकर जीने लगता है। तुलसी तथा एषुत्तच्छन ने भी मानस तथा अध्यात्मरामायणम् में प्रकृति के महत्वपूर्ण अंग सूर्य-चन्द्र अग्नि, जल, तीर्थ, नदियाँ, पशु-पक्षी, वृक्ष-पौधे, पत्र-पुष्प आदि के प्रति मानवीय धार्मिक भावना या धार्मिक अनुष्ठानों में विभिन्न प्राकृतिक पदार्थों के प्रयोग के रूप में प्रकृति के पूज्य रूप को चित्रित किया है। इस प्रकार मनुष्य के सुख के क्षणों में सुखी एवं दुःख के क्षणों में दुःखी प्रकृति सदा मानव के साथ हिलमिल गई है। रावण के मरते ही हिलनेवाली प्रकृति का चित्रण मानस में यों देखिए

'डोली भूमि गिरत दसकंधर। छुभित सिंधुते सरि दिग्गज भूधर।'[1]

उस समय समुद्र, नदियाँ, दिशाओं के हाथी और पर्वत क्षुब्ध हो उठे।

इस प्रकार मानव के हर्ष, शोक, भय आदि का प्रतिफलन प्रकृति में सशक्त रूप से दिखाई पडता है। प्रकृति भी उसकी रक्षा करते हैं। मानस तथा अध्यात्मरामायणम् में तुलसी तथा एषुत्तच्छन ने लोकजीवन में प्रकृति को एक अभिन्न अंग बनाया है।

रामचरितमानस एवं अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में परिवार

समाज का चिर परिचित आदिस्वरूप परिवार ही रहा है। समाजशास्त्र परिवार को समाज की लघुतम इकाई मानता है और परिवार उसके सदस्यों का बना हुआ होता है। पुरुष एवं नारी परिवार के प्रमुख अंग हैं। इनके अलावा अन्य अनेक संबन्धों की जड़ परिवार में मिलती है। व्यक्तियों में आपसी सहृदयता और प्रेम बढ़ जाने में परिवार का

---

1. रामचरितमानस - 6/102/3

महत्वपूर्ण स्थान है। समाज में जीने की प्राथमिक शिक्षा व्यक्ति को परिवार से ही मिलती है। रामायण तथा महाभारतकालीन परिवार भी समाज को आदर्श बनाने में सक्षम थे। समाज में वर्ण एवं जाति व्यवस्था के उद्भूत होने के साथ ही परिवार का भी जन्म हुआ। एक ही जाति के एक ही प्रकार के आदर्श रखनेवाले, एक-दूसरे के बीच समझौता करनेवाले मनुष्यों का समूह ही परिवार है। इस प्रकार परिवार की जडें धरती की गहराइयों में पहुँच चुकी हैं। परिवार के संबन्ध में यों कहा है कि "The family is by far the most important primary group in society.... The family is a group defined by a sex relationship sufficiently precise and enduring to provide for the procreation and up bringing of children "[1] मतलब है कि परिवार ही समाज का प्राथमिक घटक है, जो कम से कम लोगों को मिल जुलकर रहने से प्रजनन द्वारा बच्चों के पालन पोषण में कष्टों को झेलते हुए सुनिश्चित रूप से एक समूह का रूप धारण करता है।

रामचरितमानस एवं अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु एक साहित्यिक रचना के अतिरिक्त एक सर्वांग संपन्न जीवन की आदर्श आचार संहिता है। तुलसी और एषुत्तच्छन समाज के लोगों के सामने राम को व्यक्तिगत रूप में तथा परिवार के लोगों के संबन्धों के प्रकाश में प्रस्तुत करते हैं। इस दृढ़ता और विश्वास के साथ उसके कर्तव्य का स्पष्टीकरण कर देते हैं कि जीवन की उलझनों और समस्याओं के सुलझाने में हमें उनका महत्वपूर्ण आदर्श प्राप्त हो सकता है। दशरथ के परिवार का एक चित्र जो लोक में किसी भी परिवार का हो सकता है, यहाँ चित्रित है। इस परिवार में भिन्न स्वभाव के व्यक्तियों का संघटन दिखाया है। मानस तथा अध्यात्मरामायणम् में माता-पिता पुत्र-पुत्री संबन्ध, पति-पत्नी, भाई बन्धु, सास-बहू, भाभी-देवर, स्वामी-सेवक संबन्ध सभी का समान चित्र मिलता है। इसके

---

1. Society (An Introductory analysis) K.M. Maciver & Charles H. - P. 238

अलावा गुरु-शिष्य संबन्ध का भी स्थान ऊँचा है। सच्चे अर्थों में यथार्थ जीवन की एक झलक इन पात्रों के माध्यम से दर्शायी गई है। लोकसमाज में पारिवारिक संबन्धों के विविध रूप देखने योग्य हैं।

पिता और पुत्र

भारतीय संस्कृति में माता-पिता का संबन्ध पवित्र एवं पुण्य माना जाता है। किसी भी संबन्ध से इसकी तुलना संभव नहीं। प्रचीनकाल से ही माता-पिता को आदर एवं श्रद्धा की दृष्टि से देखने की रीति थी। माता-पिता का स्वाभाविक प्रेम अपने पुत्र या पुत्री पर अक्षुण्ण रहता है। परिवार के सभी लोग पिता का आदर करते हैं और पिता पर सारा परिवार निर्भर रहता है। पिता की सेवा करना पुत्र का परम कर्तव्य है। पिता ही अपने बच्चों की आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकते हैं और समाज में पुत्र को उच्च स्थान प्रदान करने में सहायता प्रदान करते हैं।

रामचरितमानस एवं अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में मुख्यतः तीन पिताओं और उनके पुत्रों का वर्णन है। इनमें रावण, बालि तथा दशरथ पिता की गणना में हैं तो मेघनाद, अंगद, श्रीराम, लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न पुत्रों की कोटि में आते हैं। पिता पुत्र संबन्धों के मूल्यों के विभिन्न पक्ष यहाँ प्रतिबिंबित हैं। प्रत्येक पिता का उद्देश्य पुत्र को सुरक्षा प्रदान करना, पुत्र को अपने से बढकर महत्वपूर्ण बनाने का प्रयास करना तथा अच्छे संस्कारों को विकसित करने का प्रयत्न करना है और पुत्र का कर्तव्य आज्ञा पालन करना ही होता है। दशरथ ने बचपन से ही अपने पुत्रों को माता-पिता-गुरु और बडों को प्रणाम करने का संस्कार दिया। प्रत्येक कार्य आज्ञानुसार ही होता था। यही कारण था कि श्रीराम सर्वत्र पिता एवं गुरुजनों की आज्ञा का पालन करते दिखाई पडते हैं। पुत्र-जन्म की खबर सुनते ही दशरथ की अवस्था क्या थी? ज़रा देखिए

'दशरथ पुत्र जन्म सुनि काना। मानहूँ ब्रह्मानंद समाना।'[1]

---

1. रामचरितमानस 1/192/2

पुत्रों पर अपार स्नेह रखनेवाले पिता का रूप दशरथ में देखा जा सकता है। लोक में इसका विशेष वर्णन मिलता है।

जब विश्वामित्र राम तथा लक्ष्मण को लेने केलिए आये, तब दशरथ का पुत्र के प्रति अपार स्नेह दर्शाया गया है। दशरथ केलिए प्राणों के समान पुत्र प्यारे हैं। विश्वामित्र से उनका कथन इसको साबित करता है

"मागहु भूमि धेनु धन केसा। सर्बस देऊँ आजु सहरोसा।।
देह प्रान तें प्रिय कछु नाहीं। सोउ मुनि देऊँ निमिष एक नाहिं।।"[1]

यहाँ पुत्र के प्रति पिता की निस्वार्थ भावना तुलसी ने दिखायी है। अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में भी एषुत्तच्छन ने इसका मार्मिक चित्रण किया है-

"एत्रयुंकोतिच्चकालत्तिङ्कल् दैववशाल्
सिद्धिच्चतनयनां रामनेपिरियुंपोल् निर्णयं मरिक्कुंञान्।"[2]

(अर्थात् मैं अपने प्रिय पुत्र राम को छोड़ने से निश्चय ही मृत्यु को पा जाऊँगा।)

चारों पुत्रों के विवाह के बाद आनन्द से भरे दशरथ पुत्रों को गोद में ले लेते हैं। मानस में इसका वर्णन सुन्दर ढंग से तुलसी ने किया है

'लिए गोद करि मोद समेता। को कहि सकइ भयउ सुखु जेता।।
बधू सप्रेम गोद बैठारी। बार बार हियँ हरषि दुलारी।'[3]

दशरथ केलिए पुत्र को त्यागना मृत्यु की तरह है। यहाँ राम वनगमन के अवसर पर दशरथ ने श्रीराम से जो वार्तालाप किया, यह पुत्र-प्रेम से भरपूर एक पिता की भावुक स्थिति को दर्शाता है।

---

1. रामचरितमानस 1/207/2
2. अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु पृ. 38
3. रामचरितमानस - 1/353/2

'लिए सनेह बिकल उर लाई। गै मनि मनहुँ फनिक फिरि पाई।।

रामहि चितइ रहेउ नरनाहू। चला विलोचन बारि प्रबाहू।।"[1]

स्नेह से विकल राजा दशरथ की अवस्था अत्यंत दयनीय है। अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में इसका मार्मिक चित्रण यों है कि

"मल्प्राणनेक्काळ् प्रियतमनाकुन्नतिप्पोळेनिक्कु मल्पुत्रनां राघवन्।।"[2]

(अर्थात् राम मुझे प्राणों से भी प्रिय है।)

अंत में दशरथ को पुत्र-प्रेम के कारण मृत्यु के कराल हाथों में जाना पडा। यहाँ दशरथ का पुत्र-प्रेम लोक केलिए महत्वपूर्ण आदर्श बन जाता है।

लोकजीवन में दस सिरवाले रावण को सभी जानते हैं। लेकिन एक उत्तम पिता के गुण से वे वंचित रहते हैं। रावण के सन्दर्भ में देखें तो वे स्वयं जिन बातों में रुचि रखते थे, उसी की शिक्षा पुत्र को भी देते हैं। मार-पीट, हत्या, मायावीपन, युद्ध-प्रशिक्षण आदि। मेघनाद भी सुपुत्र की भाँति आज्ञा का पालन करता है। पिता से आर्जित यह ज्ञान पुत्र की हानि का कारण भी बन जाता है। लोक में अक्सर इस प्रकार का पिता-पुत्र संबन्ध देखा जा सकता है। यहाँ कुसंस्कार सिखाने से रावण पितृधर्म से वंचित रहता है। फिर भी मेघनाद की मृत्यु के अवसर पर रावण का हृदय द्रवित हो जाता है। अध्यात्मरामायणम् में एषुत्तच्छन के शब्द देखिए

"हा! हा! कुमार ! मण्डोदरीनन्दन! हा! हा! सुकुमार! वीर! मनोहर!

मल्कर्मदोषङ्ङळेन्तु चोल्लावतु दुःखमितेन्नु मऽक्कुन्नतुळ्ळिल् आन्.......

पुत्रगुणङ्ङळ्परञ्ञु निरूपिच्चु मत्तल् मुषुत्तु करञ्ञु तुडङ्ङिनान्।"[3]

---

1. रामचरितमानस 2/43/2
2. अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु पृ. 95
3. वही पृ. 460

अर्थात् हाय! मन्दोदरीपुत्र यह दुःख मैं कैसे भूल सकता हूँ? यह मेरा दुर्भाग्य है ऐसा कहकर अत्यंत दुःखी हो जाता है।

बलि के उदाहरण से स्पष्ट है कि उन्होंने अपने पुत्र को विनय और बल में अपने समान ही तैयार किया और पुत्र की सुरक्षा से प्रेरित होकर उन्होंने अंगद को श्रीराम को सौंपकर मुक्ति पाई।

"यह तनय मम सम विनय बल कल्याणप्रद प्रभु लीजिए।
गहि बाँह सुर नर नाह आपन दास अंगद कीजिए।"[1]

यहाँ मरते वक्त अपने पुत्र को श्रीराम के हाथ में सौंपनेवाले बालि का पुत्र-स्नेह भी देखा जा सकता है।

इनमें पिता-पुत्र संबन्ध का उत्तम रूप दशरथ में दिखाई पडता है, जो लोक केलिए सुखदायक एवं सहज है।

पिता-पुत्री संबन्ध

पिता-पुत्र संबन्ध के समान पिता का पुत्री से जो संबन्ध है अत्यंत महत्वपूर्ण है। रामचरितमानस तथा अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में जनक-सीता संबन्ध इसका उत्तम उदाहरण है। पुत्री के प्रति पिता का सदा दो कर्तव्य उल्लेखनीय हैं। एक तो बलिका की आचारगत सुरक्षा, दूसरा उसकेलिए योग्य वर की खोज। ये दोनों जनक ने अच्छी तरह निभाया। जनक ने सीता को नारी सुलभ आदर्श शिक्षा दी। 'नारी धर्म कुल रीति सिखाई।'

माता-पिता की सीख सीता ने अयोध्या और चित्रकूट दोनों स्थलों पर चरितार्थ की। सीता ने आदर्श पुत्री का उदाहरण समाज के सम्मुख रखा। सीता की विदाई के समय

---

1. रामचरितमानस - 4/9/2

जनक महाराज ने पतिव्रता-धर्म का भी उपदेश दिया। एषुत्तच्छन ने इसका सुन्दर वर्णन किया है

"कल्मषमकन्नोरु जनकनृपेन्द्रनुं तन्मकळाय सीततन्नेयुमाश्लेषिच्चु
निर्मलगात्रियाय पुत्रिक्कु पतिव्रता धर्मङ्ङळेल्लामुपदेशिच्चु वषि़पोले।"[1]

(अर्थात् पापरहित जनक महाराज ने अपनी सुशील बेटी को पतिव्रता-धर्म का उपदेश दिया।)

यहाँ पुत्र की तरह पुत्री के प्रति स्नेह उल्लेखनीय है। सीता एक सुपुत्री एवं सबके प्रति आदर रखनेवाली बेटी है।

माता और पुत्र

पिता-पुत्र संबन्ध के समान लोक-जीवन में माता-पुत्र का संबन्ध भी श्रेष्ठ माना जाता है। स्त्री का समाज में माता के रूप में अधिक सम्मान किया जाता है। माता ही अपने बच्चों का आजीवन पथ प्रदर्शन करती है और इसी कारण माता के गौरव की प्रतिष्ठा महाभारत में यों हुई है

"नास्ति सत्यात्परो धर्म   नास्ति मातृसमो गुरुः।"

(महाभारत-शान्तिपर्व)

प्रत्येक माता का हृदय अपनी संतान के प्रति असीम आत्मीयता से आप्लावित रहता है। पुत्र केलिए माता सर्वस्व होती है। रामचरितमानस तथा अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में मुख्य रूप से कौशल्या, कैकेयी, सुमित्रा जैसी तीन माताओं को देख सकते हैं। इन तीनों का चरित्र और व्यवहार माता के विभिन्न स्वरूपों का परिचय देता है। कौशल्या के ममतापूर्ण स्नेह में सबकेलिए समभाव से स्नेहधारा निसृत होती रहती है।

---

1. अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु   पृ. 62

कौशल्या का पुत्र-प्रेम राम वनवानस के समय सशक्त रूप से देखा जाता है। रामचरितमानस में तुलसीदास ने इसका विस्तृत चित्रण किया है। पिता की आज्ञा का पालन करने केलिए तैयार पुत्र से माता कहती है

"जौं केवल पितु आयसु ताता। तौं जनि जाहु जानि बड़ि माता।
जौं पितु मातु कहेउ बन जाना। तौ कानन सत अवध समाना।"[1]

पुत्र वियोग वह सह नहीं सकती। उनका कथन है कि पिता-माता दोनों ने वन जाने को कहा हो तो वन तुम्हारेलिए सौकडों अयोध्याओं के समान है।

अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में एषुत्तच्छन ने भी इसका उल्लेख किया

"दण्डकारण्यत्तिनाशुनीपोकिल् ञान् दण्डधरालयत्तिन्नुपोयिडुवन्।"[2]

(यदि दण्डकवन जाने केलिए तैयार है तो मैं भी अवश्य यमपुरी को ओर जाऊँगी।) कौशल्या ने अपने पुत्र के अभ्युदय केलिए ब्राह्मणों से पूजाएँ और दान भी करवाया था।

सुमित्रा का चरित्र भी माता का आदर्श प्रस्तुत करता है। अपने व्यक्तिगत सुख से भी अधिक महत्व उनके सम्मुख परिवार का है। विभिन्न प्रसंगों में वे परिवार के महत्वपूर्ण सदस्य के रूप में आती हैं। वनगमन के अवसर पर सुमित्रा ने लक्ष्मण को जो उपदेश दिया यहं लोकजीवन केलिए महत्वपूर्ण सन्देश है। अध्यात्मरामायणम् में एषुत्तच्छन ने इसका चित्रण करके जनता को सोचने केलिए विवश भी किया है। लोकमानस केलिए यह अत्यंत आकर्षक भी है।

---

1. मानस 2/55/1
2. अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु पृ. 106

"अग्रजन् तन्नेपरिचरिच्चेप्पोषुमग्रेनडन्नुकोळ्ळेणं पिरियाते
रामनेनित्यंदशरथनेन्नुळ्ळिलामोदमोडु निरूपिच्चुकोळ्ळणं
एन्नेजनकात्मजयेन्नुरच्चुकोळ् पिन्नेययोध्ययेन्नोर्तटविये।"[1]

(अर्थात् ज्येष्ठ के साथ उसकी सेवा करके चलना है। राम को दशरथ जैसे सीता को मुझ जैसे और कानन को अयोध्या जैसे देखना है।) यहाँ सुमित्रा को आदर्शवादी मूल्यों से परिचालित दिखाया गया है। रामचरितमानस में भी तुलसीदास ने सुमित्रा के मुँह से इसका सुन्दर उदाहरण दिलवाया है

"तात तुम्हारी मातु बैदेही। पिता रामु सब भाँति सनेही।।
अवध तहाँ जहाँ राम निवासू। तहईं दिवसु जहाँ भानु प्रकासु।।
जौं पै सीय रामु बन जाहीं। अवध तुम्हार काजु कछु नाहीं।।
गुर पितु मातु बंधु सुर साई। सेइअहिं सकल प्रान की नाई।।"[2]

यहाँ प्राणों से प्रिय श्रीरामचन्द्र जी, सीता आदि की सेवा-शुश्रूषा करके सदा चलने केलिए लक्ष्मण को उपदेश देनेवाली सुमित्रा लोक में सदा जीवित रहती है। केवल अपने पुत्र की भलाई चाहनेवाली माता के रूप में कैकेयी का चित्रण भी मिलता है। माता के रूप में वह उतनी श्रेष्ठ नारी नहीं कही जा सकती।

मेघनाद की मृत्यु के समय मन्दोदरी का दुःख असहनीय है।

"मंदोदरी रुदन कर भारी। उर ताड़न बहु भाँति पुकारी।"[3]

हर माँ अपने पुत्र की भलाई चाहती है। माता-पुत्र-संबन्ध पवित्र एवं निर्मल है। इन विभिन्न नारी पात्रों के माध्यम से लोक में मातृत्व की महनीयता क्या है, यह दर्शाया गया

---

1. अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु - पृ. 119
2. रामचरितमानस - 2/73/1,2,3
3. मानस 6/76/4

है। लोक में आदर्श पुत्र के रूप में राम समादरित हैं। कौशल्या भी लोक केलिए एक उत्तम माता है।

पति और पत्नी

पति और पत्नी लोक और शाश्त्र दोनों दृष्टियों से एक रहते हैं। लोक में इनका संबन्ध अत्यंत पवित्र माना जाता है। पति-पत्नी संबन्ध में भी दोनों की समानता पर बल दिया गया है। यदि नारी केलिए पातिव्रत्य अनिवार्य है तो पुरुष केलिए भी एक-पत्नीवृत उतना ही अनिवार्य है। परिवार में गृहस्थ के समान पत्नी का भी अपना अधिकार है। पत्नी तो कुटुम्ब की स्वामिनी मानी जाती है। वह पुरुष की आधी शक्ति है और इसलिए अर्धांगिनी मानी जाती है। एक-दूसरे की मनोभावनाओं में समझौता लाकर जीवन बिताना आदर्श पति-पत्नी का धर्म है। पति-पत्नी संबन्धों में पारम्परिक सद्‌भावना की ज़रूरत है। रामचरितमानस तथा अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में रावण, बालि, दशरथ, और राम पति की गणना में हैं तो मन्दोदरी, तारा, कौशल्या, और सीता पत्नी की कोटि में आ जाती हैं। परिवार की नींव पति-पत्नी के आपसी समझौते पर है। इस समझौते का अभाव ही आज अनेक पारिवारिक दरारों को उत्पन्न करता है। एक आदर्श पत्नी के रूप में सीता का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है. सीता राम केलिए अपना सर्वस्व समर्पण करती है। अंत में पति केलिए निष्कासित भी हो जाती है।

रामचरितमानस की सीता सभी संबन्धों की तुलना में पति-पत्नी संबन्ध को श्रेष्ठ बतलाकर अपनी कष्ट सहिष्णुता, सेवावृत्ति, आत्मसुरक्षा एवं प्राण परित्याग तक की बातें प्रस्तुत करती है। पति के अनुकूल आचरण उनके चरित्र की सर्वतोन्मुख विशेषता है। पति का सहवास प्रत्येक सुख-सुविधा से अधिक महत्वपूर्ण है। अतः सीता उसी कामना से अपने धर्म के अनुसार आचरण करती हुई अपने वास्तविक आश्रय राम के साथ वन के संकटों को सहन करके भी राम के सहगमन केलिए तैयार है। पति के साथ वे कुश-शय्या

BIN G9045

पर भी सोती थीं। अंत में वे अग्निपरीक्षा केलिए भी तैयार हो जाती हैं। इस अवसर पर भी प्रतिशोध न करते हुए सीता एक साध्वी भारतीय नारी बन जाती हैं। वे गृहिणी के रूप में गृह साम्राज्य की सम्राज्ञी, ग्रहाग्नि प्रज्वलित कर धार्मिक क्रियाओं का सुचारू संपादन करनेवाली धर्मपत्नी हैं। पति के साथ वन जानेवाली सीता ज़रूर एक आदर्श पत्नी हैं। उनके अनुसार माता-पिता, बहन, प्यारा मित्र, सास-ससुर सब पति के बिना दुःखदायी है। मानस में देखिए

"जहँ लोग नाथ नेह अरु नाते। पिय बिनु तियहि तरनिहु ते ताते।।
तनु धनु धामु धरनि पुर राजू। पति बिहीन सबु सोक समाजू।।"[1]

मतलब यह है कि जहाँ तक स्नेह और नाते हैं, पति के बिना स्त्री को सभी सूर्य से भी बढ़कर तपानेवाले हैं। शरीर, धन, घर, पृथ्वी, नगर और राज्य पति के बिना स्त्री केलिए शोकदायक है। सीता कहती है कि पति के बिना स्वर्ग भी उसको नरक के समान है।

लोक में श्रीराम को एक आदर्श पति के रूप में मानने में लोग हिचकते हैं। लेकिन राम सचमुच लोकजनता केलिए अपनी पत्नी को भी त्यागने केलिए विवश एक पति हैं। सीता-वियोग में अत्यंत दुःखित श्रीराम की स्थिति दयनीय थी। सुग्रीव ने जब सीता का आभूषण राम को दिया, तब उनकी अवस्था जो है पति प्रेम दिखाने केलिए काफी है। अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में एषुत्तच्छन ने इसका मार्मिक चित्रण किया है।

"सीते! जनकात्मकजे! ममवल्लभे! नाथे! नलिनदलायतलोचने।
रोदनंचेय्तुविभूषणसञ्चय माधिपूर्वं तिरुमाऱिलमुष्तियुं
प्राकृतन्मारांपुरुषन्मारेप्पोले लोकैकनाथन् करञ्ञुतुडङ्ङिनान्।"[2]

1. रामचरितमानस - 2/64/2
2. अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु - पृ. 258

UNIVERSITY LIBRARY ★ COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY ★ Cochin - 682 022

(अर्थात् हा सीते जानकी इस प्रकार कहकर आभूषणों को देखकर राम प्राकृत मनुष्य जैसे रोने लगा।) यहाँ पति, राम का निष्कपट, निष्कलंक प्रेम दर्शाया गया है।

मन्दोदरी तथा तारा भी पत्नीधर्म का पालन करते हुए पति को समय पर उपदेश देती थीं। लेकिन इनका आदर्श, सीता के आदर्श के समान उतना विशाल नहीं था। अतः पतिपरायणता का मूर्तिवत् रूप सीता में तथा एकपत्नीव्रत पर विश्वास श्रीराम में दर्शाया जा सकता है। लोक में इनका आदर्श सदा स्मरणीय है। लोकजीवन में आदर्श पति-पत्नी के रूप में राम और सीता प्रतिष्ठित हैं।

भाई और भाई

भाई-भाई का संबन्ध अन्य पारिवारिक संबन्धों की तुलना में बहुत महत्वपूर्ण है। समाज की लघुतम इकाई 'परिवार' को एकजुट रखने में यह संबन्ध बडी भूमिका निभाता है। यह एक स्वीकृत मान्यता है कि बडों को आदेश देने का अधिकार तथा छोटों को आज्ञापालन का कर्तव्य होता है। इसका उपयोग करने की रीति में परिवार की एकता विद्यमान रहती है। इस तथ्य को स्पष्ट करने केलिए तुलसी तथा एषुत्तच्छन ने तीन भिन्न परिवारों के भाइयों के चित्र प्रस्तुत किये। बालि-सुग्रीव, रावण-विभीषण, तथा राम-भरत-लक्ष्मण।

स्वार्थ प्रेरित मतभेद भाइयों के संबन्ध को कितना घिनौना, अमानुषी बना देता है, यहि बालि सुग्रीव और रावण विभीषण के व्यवहार में देख सकते हैं। लेकिन भाई-भाई के आपसी स्नेह का भवन भरत के आचरण, लक्ष्मण के समर्पण और राम के स्नेह-विश्वास की नींव की ईंटों पर निर्मित है। लक्ष्मण भ्रातृपरक निष्ठा का एक अलौकिक उदाहरण हैं। श्रीराम के ऊपर आपत्ति की आशंका मात्र से वह खलबला उठते हैं। परशुराम प्रसंग इसका उदाहरण है। राम भी अपने भाइयों की त्याग-मनोभावना से अत्यंत प्रभावित

थे। लेकिन भरत के आचरण ने भ्रातृप्रेम के आदर्श को कैलाश के शिखर तक पहुँच दिया है। लोक में भरत का भ्रातृप्रेम उल्लेखनीय है।

भ्रातृस्नेह की साकार मूर्ति भरत

रामचरितमानस एवं अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में भरत एक ऐसा व्यक्ति है, जो लोक में दुर्लभ ही दिखाई पड़ता है। उनका त्यागमय आदर्श लोक में प्रसिद्ध बन गया है। "भरत का स्वभाव इतना उत्तम है कि देखकर आश्चर्य होता है। उनके हृदय की सात्विकता एवं निर्मलता से सभी परिचित हैं। संसार में उन्होंने जो महान् यश प्राप्त किया उसके मूल में उनकी वैयक्तिक साधना, सात्विकशीलता तथा राम-प्रेम है।"[1] पिता की मृत्यु-हेतु ननिहाल से अयोध्या में आये भरत के मन में अपने प्रिय भाई श्रीराम के वनगमन की खबर तीर के समान चुभने लगी। निस्वार्थ एवं निष्काम प्रेम के धनी शुद्ध हृदयवाले भरत अपने भाई की तरह जटा एवं वल्कल धारण करके वन में जाते हैं। भरत की निस्वार्थता, शुद्ध हृदयता एवं निष्काम प्रेम कृत्रिमता से रहित लोकजीवन का चित्र प्रस्तुत करता है जिसमें भाई-भाई केलिए मर जाने तक को तैयार रहता है। चित्रकूट में राम और भरत का जो मिलन है, यह भ्रातृ-स्नेह दिखाने में सफल है। साथ ही साथ यह प्रसंग मानस एवं अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु के अयोध्याकाण्ड को और श्रेष्ठ बनाता है। राम की पादुकाओं को उनके प्रतीक के रूप में स्वीकार कर वापस लौटनेवाले भरत का चित्रण तुलसीदास ने यों किया है

"प्रभु करि कृपा पावरी दीन्ही। सादर भरत सीस धरि लीन्ही।"[2]

यहाँ भरत के प्रति प्रेमवश प्रभु उन्हें पाँवरी देना चाहते हैं। किन्तु साथ ही गुरु आदि का संकोच भी होता है। आखिर भरत जी के प्रति प्रेमवश प्रभु श्रीरामचन्द्र जी ने

1. हिन्दी महाकाव्यों में मनोवैज्ञानिक तत्व डॉ ललना प्रसाद सक्सेना पृ. 132
2. मानस 2/315/2

कृपाकर खडाऊँ दे दी और भरत जी ने उन्हें आदर्शपूर्वक सिर पर धारण कर लिया। यहाँ लोकजीवन का चित्रमय चित्रण देखा जा सकता है।

जिस अयोध्या राज्य की समृद्धि, वैभव और ऐश्वर्य को देखकर देवराज इन्द्र भी लालच से भर उठते हो, जिसकी भौतिक संपदा को देखकर कुबेर भी लज्जित हो उठते हों ऐसे राज्य को धूलवत् तुच्छ समझना और पादुकाओं को सिंहासन पर रखकर स्वयं एक प्रतिनिधि सेवक के रूप में शासन करना कलंकहीन सच्चे भ्रातृस्नेह का परिचायक है।

लोक में भरत का स्थान कभी-कभी राम से भी श्रेष्ठ माना जाता है। इसका कारण उसकी त्याग भावना, निस्वार्थ भक्ति और भ्रातृस्नेह ही है। अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में भरत का यह भाव खूब वर्णित है। राम केलिए प्राण तक छोडने केलिए तैयार बनकर भरत राम से कहता है

"एंकिल्ञानुंनिन्तिरुवटिपिन्नाले किङ्करनाय् सुमित्राञ्जनेप्पोल्
पोरुवन्काननत्तिन्नतरुतेंकिल चेरुवन्चेन्नु सुरलोकमाशुञान्
नित्योपवासेन देहमुपेक्षिप्पनित्येवमात्मनिनिश्चयिच्चन्तिके"[1]

(अर्थात् लक्ष्मण की तरह मैं भी आपका सेवक बनकर चलूँगा। आप इसकेलिए अनुमति नहीं दें तो मैं प्राण त्याग करके स्वर्ग पाऊँगा। मैं भी अनशन करके शरीर का त्याग करूँगा।)

जब राम युद्ध के बाद अयोध्या वापस आते हैं तब आनन्द से पूर्ण अयोध्या को प्रकाशपूर्ण बनाने में रत भरत का चित्रण मानस तथा अध्यात्मरामायणम् किळिपाट्टु में अत्यंत हृदयस्पर्शी है। इससे यह पता चलता है कि भरत अपने स्वामी श्रीरामचन्द्र जी केलिए मरने तक को तैयार है। ऐसा पुत्र लोक में आदर्श की प्रतिमूर्ति बन जाता है। यह आदर्शात्मकता भरत को लोक में श्रेष्ठ पुरुष बनाता है।

---

1. अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु पृ. 171

इस प्रकार दोनों ग्रन्थों में निस्वार्थ भ्रातृप्रेम की लोकसहज अभिव्यक्ति इस प्रसंग में हुई है जिसका लक्ष्य सामान्य जनता के सामने अच्छे आदर्शों को प्रस्तुत करना रहा है, जो जीवन के मार्ग पर सफलता के साथ अग्रसर होने में सहायता पहुँचा सकता है।

सास और बहू

भारतीय संस्कृति में सास-बहू संबन्ध का सुन्दर एवं असुन्दर पक्ष लोक में विद्यमान है। परिवार में पति के अलावा सभी के साथ (ससुर, सास, ननद, देवर) प्रेमपूर्ण बर्ताव हो, जिससे अपने परिवार में वह पूजनीय हो जाए। ऋग्वेद के विवाह के अवसर के मंत्रों में भी इसी तथ्य की ओर संकेत किया गया है

"सम्राज्ञी श्वसुरे भव सम्राज्ञी श्वश्रवां भव
ननान्दरि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अधिदेवृषु।"[1]

अर्थात् तुम श्वसुर की सम्राज्ञी हो, सास की सम्राज्ञी हो, ननदों की सम्राज्ञी हो, और देवरों के बीच सम्राज्ञी के समान प्रतिष्ठित हो।" अपने स्नेहपूर्ण व्यवहार से वह बहूरानी कहने योग्य बन जाती है। बहू केलिए एक अच्छे सास एवं सास को अच्छी बहू मिलना दुर्लभ है। दशरथ परिवार में सास-बहू का श्रेष्ठ संबन्ध देखा जा सकता है। विवाह के बाद चार बहुएँ दशरथ के घर में आ जाती हैं। इनमें सीता लोक के सामने गुण संपन्न बहू बन जाती है। अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु की अपेक्षा रामचरितमानस में तुलसीदास ने सास-बहू के अनेक चित्र खींचे हैं। सीता आदर्श पत्नी है, साथ ही साथ मर्यादशील कुलवधू भी है। पतिव्रताधर्म से अभिमण्डित सीता के पतिगृह में आते समय दशरथ ने आदर्श सास और ससुर के कर्तव्य का निरूपण किया। मानस में इसका उल्लेख है कि

"वधू लरिकनीं पर घर आई। राखेहु नयन पलक की नाई।।"[2]

---

1. ऋग्वेद 10/85/46
2. मानस 1/354/4

अर्थात् बहुएँ अभी बच्ची हैं, पराये घर आयी हैं। इनको इस तरह से रखना जैसे नेत्रों को पलकें रखती हैं। यहाँ दशरथ का बहुओं के प्रति अपार स्नेह दर्शाया जाता है।

पति के साथ वन जाने केलिए व्याकुल सीता पारिवारिक जीवन की सात्विक मर्यादा का उल्लंघन न कर सास का चरण स्पर्श कर उनके समक्ष पति से बातें करने के अविनय केलिए क्षमा प्रार्थना कर लेती है

"लागि सासु पग कह कर जोरी। छमबि देबि बड़ि अबिनय मोरी।।
दीन्हि प्रानपति मोहि सिख सोई। जेहि बिधि मोर परम हित होई।।"[1]

यहाँ वन जाते वक्त सास के पैर लगकर क्षमा-प्रार्थना करती है, और कहती है कि मेरी इस बडी भारी ढिठाई को क्षमा कीजिए। मुझे प्राणपति ने वही शिक्षा दी है जिससे मेरा परम हित हो।" यहाँ बहू के रूप में अपने कर्तव्य को समझनेवाली सीता लोक केलिए सचमुच आदर्श है।

इस प्रकार सीता एक आदर्श बहू के रूप में कौशल्या-दशरथ आदि आदर्श सास-ससुर के रूप में लोक में प्रसिद्ध हैं। अपने सास-ससुर को आदर, प्रेम एवं ममता से देखनेवाली तथा सेवा करनेवाली सीता पारिवारिक जीवन केलिए उत्तम आदर्श है।

देवर और भाभी

लोकजीवन में देवर-भाभी संबन्ध को भी अत्यंत पवित्र एवं श्रेष्ठ माना जाता है। यहाँ लक्ष्मण-सीता संबन्ध का एक समुज्वल पक्ष दर्शाया जाता है। सीता को माता की तरह देखनेवाले थे लक्ष्मण। लोकजीवन में बडे भाई की पत्नी को माता के समान माना जाता है। वे देवरों से सदा ऐसा ही मान पाती रहती हैं। गोस्वामी जी एवं एषुत्तच्छन के

---

1. मानस 2/63/3

लक्ष्मण इसी वर्ग में आते हैं। मानस तथा अध्यात्मरामायणम् में सुमित्रा लक्ष्मण से सीता को मातावत् सम्मान करने का भी उपदेश देती है।

सीता भी लक्ष्मण के साथ माता जैसा व्यवहार करती है। लेकिन कपट मारीच प्रसंग में राम का रुदन सुनकर वह लक्ष्मण से क्रुद्ध हो जाती है। हृदय में चुभनेवाले वचन कहती है

"मरम बचन जब सीता बोला। हरि प्रेरित लछिमन मन डोला।।"[1]

फिर भी लक्ष्मण के मन में तनिक भी क्रोध नहीं उत्पन्न हुआ। अध्यात्मरामायणम् में एषुत्तच्छन ने इसका चित्रण और विशद रूप से किया है-

"भ्रातृनाशत्तिनत्रेकांक्षयाकुन्नुतव चेतसीदुष्टात्मावे ञानितोर्तीलयल्लो
रामनाशाकांक्षितनाकिय भरतन्टे कामसिद्ध्यर्थमवन्तन्नुटे नियोगत्ताल्।
कूटेपान्नितुनीयुंरामनुंनाशवन्नाल् गूढ़मायेन्नेयुं कोण्डङ्ङुचेल्लुवान् नूनम्
एन्नुमेनिनक्केन्नेकिट्टुकयिल्लतानुमिन्नुमलप्राणत्यागंचेय्वन्ञानरिञ्ञालुम्।।"[2]

(अर्थात् हे दुष्ट ज्येष्ठ की मृत्यु क्या तू चाहता है? ज्येष्ठ को मारकर मुझे ले जाने की इच्छा है तो वह विफल आशा है। आर्यपुत्र के मरने पर मैं भी अपने प्राण छोड़ूँगी।)

लेकिन बाद में यह सीता केलिए हानिकारक भी बन जाता है। फिर भी अपनी भाभी की खोज केलिए सदा तल्लीन रहनेवाले देवर लोक में सदा जीवित हैं। लक्ष्मण पर सीता की माता का अधिकार लोकजीवन में बिल्कुल उपयुक्त है। यहाँ यथार्थ की सच्चे शब्दों में अभिव्यक्ति हुई है। जीवन के अच्छे और बुरे संदर्भों को समान रूप से तरण करनेवाले भाभी और देवर का चित्र मानस में तुलसी और अध्यात्मरामायणम् में एषुत्तच्छन ने भावुकता के साथ खींचा है जिससे सामान्य लोग अत्यधिक प्रभावित होते हैं।

---

1. मानस 3/27/3
2. अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु - पृ. 225

मित्रता

लोकजीवन में मित्रता की बडी प्रमुखता है। सच्चा मित्र किसी भी व्यक्ति केलिए अपने प्राणों के समान होता है। लोकजीवन में ऐसे सच्चे मित्र बहुत मात्रा में देखे जा सकते हैं। निषादराज गुह, सुग्रीव तथा विभीषण से राम का सखा रूप अत्यंत मत्वपूर्ण है। इनमें भेद-भाव के बिना मित्रता स्थापित करने में राम सफल हुए। मित्र धर्म के बारे में राम का कथन अत्यंत उल्लेखनीय है। और लोकसमाज में इसका महत्वपूर्ण स्थान भी है। यों कहा है कि

"जे न मित्र दुःख होहिं दुखारी। तिन्हहि बिलोकत पातक भारी।
निज दुःख गिरि सम रज करि जाना। मित्रक दुख रण मेरु समाना।
बिपति काल कर सतगुन नेहा। श्रुति कह संत मित्र गुन एहा।।"[1]

तात्पर्य यह है कि सच्चा मित्र अपने मित्र के दुःख से दुःखी बन जाता है। मित्र का धर्म है कि वह मित्र को बुरे मार्ग से रोककर अच्छे मार्ग पर चलावे और उसके गुण प्रकट करे और अवगुणों को छिपावे। अपने बल के अनुसार सदा हित ही करता रहे। विपत्ति के समय में सौगुना स्नेह करे। वेद भी यही कहते हैं। लोक में ऐसे मित्रों को सच्चे मित्र कहते हैं। इसके साथ ही कुमित्र के लक्षण भी बताये हैं

"आगे कह मृदु बचन बनाई। पाछें अनहित मन कुटिलाई।
जा कर चित अहि गति सम भाई। अस कुमित्र परिहरेहिं भलाई।
सेवक सठ नृप कृपन कुनारी। कपटी मित्र सूल सम चारी।।"[2]

जो सामने तो बना-बनाकर कोमल वचन कहकर पीठ-पीछे बुराई करता है, और मन में कुटिलता रखता है, जिसका मन साँप की चाल के समान टेढ़ा है ऐसे कुमित्र के त्यागने में ही भलाई है। मूर्ख सेवक, कंजूस राजा, कुलटा स्त्री और कपटी मित्र ये चारों शूल के समान पीड़ा देनेवाले हैं। यह लोक सत्य है। लोक जनता इस पर विश्वास करती है।

लोक में मित्रता का निकटतम संबन्ध निषादराज गुह के सखा रूप में है। मानस तथा अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में गुह का चरित्र श्रेष्ठ बन जाता है। गुह राम का सखा बनकर उन्हें रास्ता दिखाता है। उसकी निस्वार्थ भक्ति, भोलापन, आदि उल्लेखनीय है। वन में जीते हुए भी लोकरीति से परिचित निषाद अपने राज्य का शासनकार्य राम को सौंपने केलिए भी तैयार बन जाता है। गुह की राम के प्रति भक्ति उल्लेखनीय है जैसे

"यह सुधि गुहँ निषाद जब पाई। मुदित लिए प्रिय बंधु बोलाई।।
लिए फल मूल भेंट भरि भारा। मिलन चलेउ हियँ हरषु अपारा।।"[1]

श्रीरामचन्द्र जी के आने की खबर सुनकर अपने प्रियजनों और भाई बन्धुओं को बुलाकर फल-मूल की भेंट देने केलिए कहनेवाला गुह का चरित्र महत्वपूर्ण है। इतना ही नहीं श्रीराम आदि को कुश शय्या पर सोते देखकर वह अत्यंत दुःखी बन जाता है। यों कहा है कि

"गुहँ बोलाइ पाहरू प्रतीती। ठावँ राखे अति प्रीति।
आपु लखन पहिं बैठेउ जाई। कटि भाथी सर चाप चढ़ाई।।"[2]

राम की सुरक्षा केलिए गुह ने पहरेदारों को बुलाकर जगह-जगह नियुक्त कर दिया और कमर में तरकस बाँधकर धनुष पर बाण चढ़ाकर बैठा।

---

1. मानस 2/87/1
2. वही 2/89/2

ऐसा सहज स्नेह सभ्य समाज में मिलना कठिन है। यह लोक में ही संभव है अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में भी एषुत्तच्छन ने इसका उल्लेख किया है। जब चित्रकूट में भरत का आगमन हुआ तब निषादराज गुह ने उसे राम का वैरी मानकर अनुचरों से यों कहा-

"राघवनोड्डुविरोधत्तिनेंकिलो पोकरुतारुमिवरिनिनिर्णयं।"[1]

(यदि वह राम का शत्रु है तो यहाँ से जाने का अवसर उन्हें नहीं देना है) श्रीराम को अपना राज्य भी देने केलिए वह तैयार रहता है। यहाँ गुह लोक में सदा श्रेष्ठ मित्र की कोटि में आता है।

श्रीराम की भी उसके प्रति अनन्य मित्रता थी। युद्ध जीतने के बाद अयोध्या में रहनेवाला गुह जब वापस जाने केलिए तैयार हुआ, उस समय राम ने गुह से जिन बातों का उल्लेख किया वह अत्यंत महत्वपूर्ण है। अध्यात्मरामायणम् में यों कहा है

"गच्छसखे! पुरंशृंगिवेरं भवान् मल्चरित्रड्ङ्ळुं चिंतिच्चु वाषूक नी।
भोगड्ङ्ळेल्लां भुजिच्चु चिरंपुनरेकभावं भजिच्चीड्डुकेन्नोड्डुनी।"[2]

(हे सखा! श्रृंगिवेर जाकर मुझे याद करके इष्ट भोजन करके सुख से जीना)

गुह के अलावा कोल-किरातों का जो सेवा भाव है वह भी उल्लेखनीय है। स्वामी के रूप में राम का आचरण आदर्श है।

सीता की खोज करने केलिए सुग्रीव और विभीषण ने भी सच्चे मित्रों के रूप में राम की सहायता की। सुख-दुःख में एकसाथ रहनेवाला मित्र ही सच्चा मित्र है।

---

1. अध्यात्मरामायणम् पृ. 159
2. वही पृ. 510

लोकजीवन में ऐसे मित्रों का स्थान ऊँचा भी है। मानस तथा अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु के द्वारा तुलसी तथा तुंचन ने यही दिखाया है।

गुरु और शिष्य

भारतीय संस्कृति के अनुसार लोकजीवन में गुरुमहिमा का बहुत बडा स्थान है। पूजा-पाठ, पठन-पाठन सभी में गुरु का स्थान सर्वप्रथम है। लोकभावना चाहे गुरु के मंत्र का अर्थ न समझे, पर उस मंत्र को कान में फूंक देना ही पर्याप्त होता है। वह मंत्र उनके जीवन का बहुत बडा सहारा है। उनका विश्वास है कि मनुष्य के सब कल्याण गुरु-सेवा के अधीन हैं। गुरु की पूजा से आयु, यश एवं श्री की वृद्धि होती है।

गुरु-शिष्य-संबन्ध प्राचीनकाल से ही चलता रहता है। प्राचीनकाल में शिक्षा के दो नियम थे। शिष्य का गुरुग्रह में रहना और गुरु को अपने घर में रखने की रीति। "गुरु-गृह में रहते समय खेती-बाडी में सहायता करना, गोपालन, होम केलिए लकडी बीनना, आदि भी शिष्यों के कर्तव्यों में होते थे।"[1] अध्यापन मौखिक था और विद्यार्थी गुरु के पास ही रहता था। गुरु द्वारा दी गई शिक्षा दीक्षा ज्ञान-विद्या ही शिष्य के भविष्य की आशा थी और उसी के संबल से वह अपने जीवन को सँवारता था। लोक में गुरु का स्थान देवतुल्य है। यों क्हा है कि

"गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देवो महेश्वरः
गुरुः साक्षात् परब्रह्मा तस्मै श्रीगुरुवे नमः।।"[2]

अर्थात् गुरु ही ब्रह्मा, गुरु ही विष्णु तथा गुरु ही महेश हैं। गुरु साक्षात् परब्रह्म परमेश्वर हैं। 'मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, आचार्य देवो भव ये ही आदर्शवाक्य हैं जिनसे

---

1. महाभारतकालीन समाज सुखमय भट्टाचार्य पृ. 116
2. भारतीय सांस्कृतिक प्रतीक कोश शोभानाथ पाठक पृ. 90

गुरु के महत्व का ठीक-ठीक ज्ञान होता है। गुरु शब्द से ही गौरव, गरिमा, गुरुत्व, जैसे शब्द भी बने हैं, जो संस्कृति का सार भी है।

तुलसीदास ने रामचरितमानस में और एषुत्तच्छन ने अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में गुरु-शिष्य-संबन्ध कैसा होना चाहिए; इसके अनेक उदाहरण दिये हैं। इसने लोकजीवन में पर्याप्त प्रभाव भी डाला है। जब वसिष्ठ श्रीराम के दर्शन केलिए उनके महल में आये, उस समय राम की, सीता सहित अपने गुरु को स्वीकार करने की प्रवृत्ति लोक में सदा स्मरणीय है। रामचरितमानस में इसका उल्लेख इस प्रकार है कि

"गुरु आगमन सुनत रघुनाथा। द्वार आई पद नायउ माथा।।
सादर अरघ देइ घर आने। सोरह भाँति पूजी सनमाने।।
गेह चरन सिय सहित बहोरी। बोले रामु कमल कर जोरी।।"[1]

गुरु का आगमन सुनते ही श्रीरघुनाथजी ने दरवाज़े पर आकर उनके चरणों में मस्तक नवाया। आदरपूर्वक अर्घ्य देकर उन्हें घर में ले आये और षोडशोपचार से पूजा करके उनका सम्मान किया। फिर सीताजीसहित उनके चरण स्पर्श किये।

अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में एषुत्तच्छन ने भी इसका चित्रण सुन्दर ढंग से किया है। जैसे

"दशरधिग्रहमेत्रयुंभास्वरमाशुसंतोषेणसम्प्राण्यसादरम्
निन्नतुनेरमरिञ्ञुरघुवरन् चेन्नुटन् दण्डनमस्कारवुंचेय्तान्।
रत्नासनवुंकोडुत्तिरुत्तित्तदा पत्नियोडुमतिभक्त्या रघूत्तमन्
पोन्कलशस्थितनिर्मलवारिणा तृक्काल्कषुकिच्चु पादाब्जतीर्थवुम्।"[2]

---

1. मानस 2/8/1,2
2. अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु - पृ. 87

(मतलब है कि वरिष्ठ का आगमन सुनकर राम ने उन्हें रत्नखचित पीढा देकर सीताजी सहित स्वर्ण कलश से पवित्र जल लेकर भक्तिपूर्वक पादप्रक्षालन किया।)

यहाँ गुरु-शिष्य संबन्ध का मूर्त रूप देखा जा सकता है। इस प्रकार लोक संस्कृति में, समाज में, साहित्य में गुरु का गौरवपूर्ण स्थान चिरकाल से ही वन्दनीय रहा है। आज गुरु-शिष्य संबन्धों में उतनी आत्मीयता दिखाई नहीं पडती। लेकिन लोकजनता गुरु-शिष्य-संबन्ध को महान् संपत्ति एवं पवित्र मानती है।

लोकमंगल की दृष्टि से रामचरितमानस एवं अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में परिवार

आज का युग परिवार की संकीर्ण व्याख्या करता है। व्यक्ति-व्यक्ति के बीच का वैर या द्वेष परिवार के विघटन का कारण बन जाता है। पारिवारिक विघटन सामाजिक हित को बाधा पहुँचाता है। इससे लोकहित असंभव हो जाता है। इसलिए सामाजिक कल्याण केलिए समाज के सभी वर्गों और व्यक्तियों में पारस्परिक प्रेम होना चाहिए। इसकी शुरूआत परिवार से होनी चाहिए। व्यक्ति-व्यक्ति के बीच पारस्परिक सहयोग और सहकारिता का भाव होना चाहिए। उदार एवं परोपकारी मनोभाव से ही सामाजिक भलाई होती है। इसकेलिए हर मनुष्यको जागरूक होना चाहिए। तुलसीदास और एषुत्तच्छन के साहित्य के विवेचन से यह स्पष्ट है कि दोनों कवि आदर्श और मर्यादा को अधिकाधिक महत्व देते थे। उनके प्रत्येक रिश्ते-नाते चाहे वह पिता के हों, पुत्र के हों, उनके द्वारा प्रतिष्ठित आदर्श और मर्यादा के मापदण्ड के अनुसार लोकजीवन के अनुकूल ही चित्रित किये गये हैं। तुलसीदास तथा एषुत्तच्छन के मानस तथा अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु का आदर्श परिवार मर्यादापुरुषोत्तम राम का परिवार है।

रामचरितमानस तथा अध्यात्मरामायण में राम और उनके भाइयों के पारस्परिक प्रेम का गहराई से चित्रण करके पारिवारिक एकता का परिचय दिया गया है तो इसके

विपरीत बालि और सुग्रीव के पारस्परिक संदेह और द्वेष के कारण कुल की मान-मर्यादा नष्ट होने का चित्रण किया गया है। इसी तरह रावण और विभीषण के पारस्परिक विरोध के कारण न केवल लंका का सामंजस्य नष्ट हुआ बल्कि रावण के अन्य भाइयों और पुत्रों का नाश भी हो गया। इस प्रकार सामाजिक हित की च्युति दर्शनीय है। परिवार की सुख शान्ति परिवार के सदस्यों की आपसी संबन्धगत मर्यादाओं के निर्वाह पर निर्भर करती है। दोनों कवि परिवार के व्यक्तियों के बीच के आपसी संवन्ध से पारिवारिक नीति के विभिन्न पक्ष सामने उभारकर समाजगत मूल्यों के प्रति हमें अवगत कराते हैं। लोक में इसका महत्व भी है। लोकमंगल या लोककल्याण की भावना इन मूल्यों पर निर्भर है। मानस तथा अध्यात्मरामायणम् मर्यादाविहीन समाज को भी उत्तम मूल्यों से युक्त बनाते हैं।

खान-पान, रहन-सहन

लोकजीवन में सामाजिक संबन्ध की तरह लोगों के रहन-सहन, खान-पान का स्थान भी महत्वपूर्ण है। प्राचीनकाल से ही लोकजनता प्रकृति की गोद में पलकर फल-मूल खाकर जीनेवाली थी। आज सभ्यता के कारण इन स्थितियों में कुछ परिवर्तन आये हैं। मानव अच्छे भोज्य पदार्थ बनाकर खाने में तल्लीन हैं। विभिन्न आभूषण तथा तरह-तरह के वस्त्रों को लोकजनता ने प्राचीनकाल से ही अपना अभिन्न अंग माना है।

रामचरितमाानस तथा अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में आज भी सामान्य हिन्दू परिवार में दिखाई पडनेवाली भोजन सामग्री और बरतनों का उल्लेख किया गया है। यहाँ राजमहल के खाद्य पदार्थों और वनवासियों के खान-पान, ग्राम्य जीवन का रीति-रिवाज़ सभी में अंतर दिखाई पडता है।

मध्ययुग से लेकर अब तक लोक में प्रचलित एक रीति है कि विवाहादि के अवसर पर बिरादरी के लोगों को जेवनार देना (भोज) मानस तथा अध्यात्मरामायणम् में उस समय के भोजन सामग्री का विस्तृत विवरण है। इसमें षट् रस तथा षट् व्यंजन का

उल्लेख है। पत्तल पर सुन्दर और पवित्र दाल भात और गाय का घी परोसने की बात मिलती है। पत्तल पर भोजन परोसना आज भी मांगलिक अवसरों पर देखा जा सकता है। मानस में यों कहा है कि

"परुसन लगे सुआर सुजाना। बिंजन बिबिध नाम को जाना।।
चारि भाँति भोजन बिधि गाई। एक एक बिधि बरनि न जाई।।"[1]

नाना प्रकार के व्यंजन परोसे जाने लगे। उनके नाम का उल्लेख नहीं। चार प्रकार के (चर्व्य, चोष्य, लेह्य, पेय अर्थात्, चबाने, चूसने चाटने, और पीने योग्य भोजन की विधि कही गयी है। षट् व्यंजनों में घी, दही, चिउडा, दाल, भात और चना चबेना का उल्लेख है। भोजन के बाद आचमन (हाथ मुँह धोने केलिए जल) दिया गया है। हमारे धार्मिक व आनुष्ठानिक विधि-विधानों में आत्मशुद्धि, पूजा-अर्चना आदि की जो परंपरा प्रचलित है, उसमें आचमन का विशेष महत्व है।

भोजन के बाद पान देने की रीति भी है। मानस में इसका उल्लेख हैं

'देह पान पूजे जनक दसरथु सहित समाज।
जनवासेहि गवने मुदित सकल भूप सिरताज।।"[2]

'पान' भी सुख-सौभाग्य का प्रतीक है। कहते हैं कि इसमें लक्ष्मी का वास रहता है। इसका हरा रंग प्रकृति का भी प्रतीक है। अतः प्रत्येक पूजा पाठ में पान के पत्तों का प्रयोग होता है।"[3] और भोजन के बाद पान देना भी शुभ मान जाता है। चूना, तंबाकू, सुपारी आदि के साथ लोग पान खाते हैं और संतुष्ट हो जाते हैं। केरल में भी अनेक

---

1. मानस 1/328/2
2. वही 1/329
3. भारतीय जीवन मूल्य - कामिनी कामायनी - पृ. 94

मांगलिक अवसरों पर पान देने की रीति आज भी है। यह लोक व्यवहार है। एषुत्तच्छन ने अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में जेवनार या पान का उल्लेख नहीं किया है।

मांगलिक अवसर पर गिनाए गए बरतनों का उल्लेख मानस तथा अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में मिलता है। कडाह, दही का कूँडा, कठौता, थाल, परात, कच्चे घडे आदि लोक में सामान्य परिवारों में पाये जानेवाले बरतनों की याद दिलाते हैं। इसी प्रकार शिविका, पीढ़ा, हिंडोला, तोशक आदि भी हैं।

खाद्यों में वन्य कंद, मूल और फलों के प्रति लोक में एक विचित्र प्रकार की आत्मीयता के दर्शन होते हैं। इन वन्य खाद्यों के प्रति जो ममता लोक में विद्यमान है, वह अन्न को प्राप्त नहीं। इसका कारण आदिम अवस्था का वह लगाव हो सकता है, जिसमें मानस का खाद्य कंद, मूल और फलों तक ही सीमित था। वन समाज में ऋषि-मुनियों तथा कोल-किरात आदि भिन्न-भिन्न जातियों के भोज्य कन्द फल मूलों के अतिरिक्त जूरी (अंकुर निकलने में कोमल पत्ते के रूप में) ग्रहण करने के तथ्य को प्रकट करता है।

"कंद मूल फल अंकुर नीके। दिए आनि मुनि मनहूँ अमि के।"[1]

अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में राम का आगमन सुनते समय निषादराज गुह ने इस प्रकार किया। जैसे

"पक्वफलमधुपुष्पादिकळेल्लां कैकोण्डुचेननु
रामाग्रेविनिक्षिप्य भक्त्यैवदण्डनमस्कारवुंचेय्तु।।"[2]

(अर्थात् गुह मीठे कन्द, शहद, फूल आदि लेकर राम का दण्डनमस्कार किया।)

---

1. मानस 2/106/1
2. अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु - पृ. 128

यहाँ प्राकृतिक उपादानों का महत्व एवं उनका उपयोग करनेवाली लोकजनता को देखा जा सकता है।

लोक में निरामिष - भोजन तथा आमिष भोजन का उपयोग प्राचीनकाल से ही रहा है। लोकजनता ने अपने भोजन में आमिष भोजन को अभिन्न अंग माना है। मानस तथा अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में निरामिष भोजन के साथ ही आमिष भोजन का भी अप्रत्यक्ष रूप से वर्णन है। भरत-गुह मिलन के समय गुह भरत तथा उनकी सेना एवं समाज को भोज्यार्थ कन्द-मूल-फल के साथ-साथ पक्षी, हिरन, पाठीन, पहिना और मोटी मछलियाँ भी भेजते हैं। जैसे

"अस कहि भेंट सँजोवन लागे। कंद मूल फल खग मृग मागे।।
मीन पीन पाठीन पुराने। भरि भरिभार कहारन्ह आने।।"[1]

इसका उल्लेख अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में भी है। एक बार राम आखेट करके एक पशु को मारता है। यों कहा है कि

"वैदेहित्तन्नोडुकूडवेराघवन् सोदरनोडुमोरुमृगत्तेकोन्नु
सादरंभुक्त्वासुखेनवसिच्चितु पादपमूलेदलाढ्यतल्पस्थले।।"[2]

(राम एक पशु को मारकर सीता तथा लक्ष्मण सहित खाकर कोंपलों की गद्दी में सोये।)

लोक में 'हल्दी' का उपयोग खाने के पदार्थों में ही नहीं, वरन् पूजा सामग्री में भी किया जाता है। "यह रोग निवारण की शक्ति से युक्त हैं; साथ ही उसका पीला रंग स्वर्ण के प्रतीक रूप में धन-धान्य प्रदान करनेवाला माना गया है।"[3] लोक में पूजा अर्चना से

---

1. मानस 2/192/1
2. अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु पृ. 133
3. भारतीय जीवन मूल्य कामिनी कामायनी पृ. 93

लेकर परिवारिक संबन्धों की पावनता में हल्दी का उपयोग किया जाता है। वैवाहिक अनुष्ठानों में भी हल्दी का उपयोग विविध प्रकार से किया जाता है। हल्दी हमारी संस्कृति की, स्वास्थ्य की तथा सौंदर्य की थाती है, सँवारक है, शुभकारक है। सीता के विवाहोत्सव पर स्वर्ण कलशों तथा तोरणादि में हल्दी, दूब, दही, अक्षत के उपयोग का वर्णन है

"कनक कलस तोरन मनि जाला। हरद दूब दधि अच्छत माला।"[1]

भारतीय संस्कृति में पुष्प-पल्लव और जल से परिपूर्ण 'कलश' की प्रतिष्ठा, पूजा अर्चना आदि सभी सुसंस्कारों में की जाती है। जन्म से लेकर मृत्यु तक कलश का उपयोग किसी न किसी रूप में होता रहता है। 'कलश हमारे जीवन की समग्रता का प्रतीक है, जिसके प्रति अटूट आस्था अतीत से अब तक बनी हुई है और भविष्य में भी आस्थापूर्ण स्थिति यथावत् रहेगी।'[2] अतः लोक में इसका महत्वपूर्ण स्थान भी है।

मानस तथा अध्यात्मरामायणम् में राम-राज्याभिषेक, विवाह जैसे अनेक प्रसंगों में कलश का उल्लेख किया गया है। लोक जीवन में जन्म से लेकर मृत्यु तक कलश का उपयोग विविध रूपों में होता है। तात्पर्य यह कि कलश अथवा घट का हमारे जीवन से अत्यधिक संबन्ध है। हिन्दू संस्कृति पर ऐसा विश्वास है कि 'कलश के मुख पर ब्रह्मा,ग्रीवा में शंकर और मूल में विष्णु तथा मध्य में मातृगणों का वास होता है। ये सभी देवता कलश में प्रतिष्ठित होकर शुभ कार्य को संपन्न कराते हैं।'[3] इस प्रकार लोक में कलश का उल्लेखनीय स्थान है।

दूब अथवा दूर्वा भी आत्मनिर्भरता का प्रतीक है जो पूजा की विशेष चीज़ों में से एक है। लोक में मांगलिक अवसरों पर इनका भी महत्वपूर्ण स्थान है। उसी प्रकार अक्षत

---

1. मानस 1/295/4
2. भारतीय सांस्कृतिक प्रतीक कोश शोभानाथ पाठक पृ. 59
3. भारतीय सांस्कृतिक प्रतीक कोश शोभानाथ पाठक पृ. 60

(तंडुल या चावल) का भी हमारे सांस्कृतिक अनुष्ठानों में महत्व है। वैवाहिक कार्यक्रमों में चावल का विविध अवसरों पर कल्याण की कामना से प्रयोग किया जाता है। मानस तथा अध्यात्मरामायणम् में ऐसे अनेक प्रसंग हैं, जिसका प्रयोग किळिप्पाट्टु में हुआ है।

इस प्रकार तुलसी ने मानस में शराब केलिए सुरा, मधु तथा बारूनी शब्दों का भी प्रयोग किया है। जैसे

"बिष बारूनी बंधु प्रिय जेही। कहिअ रमासम किमि बैदेही।।"[1]

यहाँ तुलसीदास ने मदिरा शब्द केलिए बारूनी शब्द का प्रयोग किया, जो लोक में प्रचलित है।

इस प्रकार लोकजीवन से विभिन्न प्रकार से जुडे हुए अनेक स्वाद्य पदार्थों एवं बर्तनों का परिचय तुलसी तथा एषुत्तच्छन ने दिया है। लेकिन रामचरितमानस की तरह विस्तृत वर्णन एषुत्तच्छन के अध्यात्मरामायणम् में नहीं। लोक व्यंजनों का उल्लेख तक नहीं। लेकिन तुलसीदास ने भारतीय संस्कृति को उसी रूप में महत्व देकर लोकसमाज का परिचय दिया है। आज भी अनेक परिवारों में ये सामग्रियाँ देखी जा सकती हैं।

वेश-भूषा

खान-पान की तरह लोकजीवन में वेश भूषा का स्थान सर्वोपरि है। नगरीय, ग्रामीण तथा वन्य प्रान्तों की वेश-भूषा अलग-अलग है। यह इन प्रांतों की संस्कृति को दिखाता है। वेश-भूषाएँ हर एक समाज की संस्कृति का प्रतिफलन हैं। प्राचीन मनुष्य वल्कल, पत्ते, मृगचर्म आदि से अपनी नग्नता छिपाते थे। बाद में वस्त्र बुनकर अपने शरीर को अलंकृत करना वे सीख गये। इसके बाद स्त्रियाँ साडी तथा पुरुष धोती-कुर्ता पहनते

---

1. मानस 1/246/3

है। आज लोक में 'लहंगा, चोली, ओढ़नी, साडी पगड़ी, धोती, मिर्जइ, शेखानी या अचकन, पैजामा, अंगोछा इत्यादि वस्त्र प्रयोग में आते हैं।[1] लोकजनता विभिन्न अवसरों पर उनका प्रयोग भी करती रहती है।

मानस में तुलसी ने कपड़े केलिए पट, अम्बर जैसे शब्दों का प्रयोग किया है। 'चीर' का, वे वस्त्र और साडी दोनों रूपों में प्रयोग करते हैं। लोक में वस्त्र या पट अनेक प्रकार के, ऊनी, सूती, रेशमी, जूट तथा चर्म के भी होते थे। द्रुम चर्म केलिए तुलसी ने परंपरा से प्रयुक्त वल्कलवस्त्र का प्रयोग किया है। वनगमन के अवसर पर श्रीरामचन्द्र जी की वेश-भूषा इस का प्रमाण है

"वल्कल बसन जटिल तनु स्यामा। जनु मुनिबेष कीन्ह रति कामा।"[2]

वन्य जातियों से जुड़ा हुआ यह वस्त्र अत्यंत महत्वपूर्ण है। प्रचीनकाल में वन्य लोग इसका खूब प्रयोग करते थे।

अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में भी अमूल्य वस्त्रों को त्यागकर वल्कल धारण करने का उल्लेख है

"धन्यवस्त्रङ्ङ्ळुपेक्षिच्चु राघवन् वन्यचीरङ्ङ्ळ् परिग्रहिच्चीडिनान्।"[3]

विवाह आदि मांगलिक अवसर पर रेशमी वस्त्रों का उपयोग करने का उल्लेख मानस तथा अध्यात्मरामायणम् दोनों में है। 'सीता स्वयंवर' के समय राम तथा लक्ष्मण को पीली धोती पहने हुए दिखाया गया है। यों कहा है 'पीत पुनीत मनोहर धोती'[4] बीच-बीच

---

1. अवधी का लोकसाहित्य सरोजनी रोहतगी पृ. 38
2. मानस 2/238/4
3. अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु पृ. 124
4. मानस 1/326/2

में पीताम्बर का उल्लेख भी है। अध्यात्मरामायणम् में भी पीताम्बर का मत्वपूर्ण स्थान है। मांगलिक कार्यों में पीला वस्त्र पहनना 'शुभ' का सूचक माना जाता है। 'पहिरें बरन बर चीर'।[1] कहकर स्त्रियों की साडियों का परिचय दिया है। इस प्रकार उस समय प्रचलित सभी प्रकार के वस्त्रों का उल्लेख एषुत्तच्छन की अपेक्षा तुलसी ने खूब किया है।

'लकडी से बने खडाऊँ' का उल्लेख भी है। यह पहनकर राम-सीता वन गये। यह खडाऊँ लोकसमाज में प्रचलित थे। "प्राचीनकाल में जब ऋषि-मुनि वनों में रहकर एकांत साधना करते थे, सरिता-तड़ाग में स्नान को जाते थे अथवा फल-फूल लेने जब इधर-उधर जाते थे तब लकड़ी के खडाऊँ पैरों की सुरक्षा केलिए पहनते थे।"[2] भरत को खडाऊँ देने के बाद बिना पादत्राण के चलते हुए राम को दिखाया है।

जीवन को सुखमय बनानेवाले एवं आवश्यकताओं के अभिन्न अंग पलंग तथा सेज आदि पर बिछाने एवं ओढ़नेवाले वस्त्रों को दो श्रेणियों में रखा जा सकता है। राजकीय तथा उच्चवर्ग द्वारा स्वर्णखचित पलंगों पर खेत दुग्धफेन सदृश्य चादर कम्बल आदि हैं तो दूसरी ओर निर्धन एवं आम वर्ग द्वारा कारी-कमरि तथा गूदड़ी का उपयोग। वन-गमन के अवसर पर निषादराज गुह राम केलिए कुश पुष्पों व कलियों की साथरी बिछाते हैं।

मानस में तुलसी ने यों कहा है कि

"गुहँ सॉंवरि सॉंथरी डसाई। कुस किसलय मृदुल सुहाई।।"[3]

अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में भी इसका उल्लेख है।

"सोदरनूतन्नालूकुशदलाद्यङ्ङळाल् सादरमास्तृतमायतल्पस्थले।"[4]

(अर्थात् कुश और कोमल पत्तों की सुन्दर साथरी पर श्रीराम सीतासहित सोये)।

---

1. मानस 1/317/1
2. भारतीय सांस्कृतिक प्रतीक कोश शोभानाथ पाठक पृ. 217
3. मानस 2/88/4
4. अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु - पृ. 128

कुश का प्रयोग अतीत से लेकर लोक में पूजा, अर्चना आदि धार्मिक कार्यों में किया जा रहा है। यह घास अत्यधिक पावन माना जाता है। इस घास के प्रयोग का तात्पर्य मांगलिक कार्य एवं सुख-समृद्धकारी है। इसलिए लोक में कुश का महत्वपूर्ण स्थान है।

इस प्रकार मानस तथा अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में ग्राम्य एवं वन्य संस्कृति का एक समन्वयात्मक चित्रण वेश-भूषा के क्षेत्र में भी दर्शाया जाता है।

आभूषण

भारतीय संस्कृति में प्राचीनकाल से ही विभिन्न प्रकार के आभूषण पहनने की रिवाज़ थी। सौंदर्य को बढ़ाने में आभूषणों का महत्वपूर्ण स्थान है। नथिया, झुलनी कनफूल, कंकना, गलचुमनी, तिलरी, बिंदिया, चूडी आदि लोक में प्रचिलत आभूषण हैं। "आभूषण वास्तव में मानव संस्कार तथा सौन्दर्यबोध के विकास परिणामों को दिखाते हैं।"[1] प्राचीनकाल में आभूषण के आधार पर व्यक्तियों को पहचाना जा सकता था। लोहे के आभूषण से लेकर सोने, वज्र, रत्न आदि आभूषण भी प्रचलित थे। रामचरितमानस तथा अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में बाल-बच्चों से लेकर स्त्री-पुरुष तथा बडों के बीच के आभूषणों का विस्तृत वर्णन है। आभूषणों केलिए तुलसी ने भूषन, आभरन्, गहना, विभूषण आदि शब्दों का प्रयोग किया है। बालक राम की छाती पर बघनख की बहुत ही निराली छटा है। छाती पर रत्नों से युक्त मणियों का उल्लेख भी है। जैसे

"हियँ हरि नख अति सोभा रूरी।।

डर मनिहार पदिक की शोभा। बिप्र चरन देखत मन लोभा।"[2]

---

1. नाडोडि विज्ञानीयम् - डॉ एम.वी. विष्णुनंपूतिरी - पृ. 306
2. मानस 1/198/3

लोक में ऐसा विश्वास था कि भूत-प्रेत या अन्य भय निवारण केलिए बघनख का धारण करना अच्छा है। खासकर बच्चों केलिए। ऐसा भी कहा जाता है कि मनुष्य पशु को मारकर उस पशु के चर्म या नख आदि को भी धारण करते थे।

मानस तथा अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में नूपुर, करधनी आदि का भी उल्लेख है। एषुत्तच्छन ने अध्यात्मरामायणम् में आभूषणों की एक झलक दिखायी है, जो लोक से जुड़े हुए हैं।

"कर्णालंकारमणिकुण्डलं मिन्नीडुन्न स्वर्णदर्पण समगण्डमण्डलङ्ङळुम्
शार्दूलनखङ्ङळुंविद्रुममणिकळुं चेर्त्तुडन्कोर्त्तस्वरमणिकळ् मध्ये-मध्ये।।
कोर्त्तुचार्त्तीटुन्नोरुकण्ठकाण्डोद्योतवुम् मुत्तुमालकळ् वनमालकळोडुंपूण्डु।
विस्तृतोरसिचार्त्तुंतुलसीमाल्यङ्ङळुं अंगदङ्ङळुं वलयङ्ङळ् कङ्कणङ्ङळुंमे।।
अंगुलीयङ्ङळ्कोण्डुशोभिच्च करङ्ङळुम्।
काञ्चनसदृशपीताम्बरोपरिचार्त्तुम् काञ्चिकळ्नूपुरङ्ङळेन्निव पलतरम्
अलङ्कारङ्ङळ्पूण्डु सोदरन्मारोडुंमोरलंकारत्ते चेर्त्तान् भूमीदेविक्कुनाथन्।।"[1]

(अर्थात् कानों में पहने जानेवाले मणिजटित कर्णविभूषण की प्रभा से युक्त सोने के दर्पण के समान शोभित होनेवाले कपोलद्वय, बघनख एवं विद्रुम को मिलाकर बीच-बीच में सोने के मणियों के साथ बनाये गये हार से युक्त फूल के डंठल के समान मृदु एवं शोभित होनेवाली ग्रीवा, छाती पर शोभित मोतियों के हार, वनमालाओं और तुलसीदल की मालाओं, बाहुओं में शोभित बाहुवलयों से और मुद्रिकाओं से युक्त अत्यधिक शोभित होनेवाले हस्तद्वय, सोने की शोभावाले पीले वस्त्रों के ऊपर पहनी हुई करधनी, पैरों की पैंजनियाँ इस प्रकार तरह-तरह के आभूषणों से युक्त प्रभु राम जी भाइयों के साथ पृथ्वी केलिए स्वयं एक आभूषण बन गये। यहाँ लोक प्रचलित विभिन्न आभूषणों का चित्रण हुआ।

---

1. अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु - पृ. 24

लोक में भारतीय स्त्रियों के शृंगार का मुख्य प्रसाधन आभूषण है। करधनी, नूपुर आदि का उल्लेख मानस में है

"कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि। कहत लखन सन रामु हृदयं गुनि।"[1]

तुलसी ने सीता के सौंदर्य का विस्तृत विवरण नहीं दिया। क्योंकि सीता सौंदर्य के सामने सब उपमाएँ तुच्छ हैं। यों कहा है

"सोह नवलतनु सुंदर सारी। जगत् जननि अतुलित छबि भारी।।

भूषन सकल सुदेस सुहाए। अंग-अंग रचि सखिन्ह बनाए।"[2]

सभी आभूषण उनके अंग-अंग में भली भाँति शोभित है।

अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में भी विवाह के अवसर पर सीता के विभिन्न आभूषणों का वर्णन है

"स्वर्णवर्णत्तेपूण्डमैथिलीमनोहरी स्वर्णभूषङ्ङळुमणिञ्ञु शोभयोडु।

स्वर्णमालयुंधरिच्चादराल्मन्दमन्दमर्णोजनेत्रन्मुंपिल् सरूपमविनीतयाय्।।"[3]

(स्वर्णाभूषणों से विभूषित सीता मन्दगति से पति के पास आयी।)

पति-गृह जाते वक्त विभिन्न प्रकार के अमूल्य रत्न, मोतियों का हार आदि दहेज के रूप में देने का उल्लेख है। यह भारतीय विवाह की प्रथा मानी जाती है। दहेज एक लोकसंस्कार और विवाह-विधि के ही रूप में यहाँ वर्णित हुआ है। मानस में यों कहा गया है कि

---

1. मानस 1/229/1
2. वही 1/247/1
3. अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु पृ 58

"कनक बसन मनि भरि भरि जाना।"

अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में भी इसका उल्लेख एषुत्तच्छन ने किया

"वस्त्रङ्ङळ्दिव्यङ्ङळायुळ्ळतुबहुविधम्

मुत्तुमालकळ्दिव्यरत्नङ्ङळ्पलतरं प्रत्येकंनूरुकोडिक्काञ्चन भारङ्ङळुम्।।"[1]

(विविध प्रकार के दिव्य वस्त्र, अमूल्यरत्न, मोतियों का हार आदि दहेज के रूप में दिया।) पुरुषों के आभूषणों में कुंडल उल्लेखनीय है। परम्परागत वेश-भूषा में मुकुट का भी विशेष स्थान है। तुलसी के राम बालकपन में सिर पर मोरपंख को धारण करते हैं तो राज्याभिषेक पर स्वर्ण मुकुट से शोभायमान हैं। मुकुट की मर्यादा को यदि प्रतीकात्मक रूप में लें तो मानवीय मानदंडों के आधार पर मनुष्य को निष्ठावान्, कर्तव्यपरायण, परोपकारी, निस्वार्थ अवश्य होना चाहिए।

इस प्रकार शरीर को अलंकृत करने की दृष्टि से आभूषणों का विशेष महत्व है। लोकजनता का सौंदर्यवादी दृष्टिकोण इसके पीछे है। विभिन्न प्रकार के भोजन-पदार्थ बनाकर खाने और खिलाने में वे तल्लीन बन जाते हैं। अवसर के अनुसार वेश-भूषा में भी वे परिवर्तन करते हैं। यह लोकरीति है। तुलसीदास तथा एषुत्तच्छन ने मानस तथा अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु के ज़रिए इसकी ओर इशारा किया है।

लोकमनोरंजन

प्राचीनकाल से ही लोक में देखा जा सकता है कि मनुष्य परिश्रम करने के साथ ही मनोरंजन केलिए भी समय ढूँढते हैं। जीवन की सामाजिक, भौतिक आवश्यकताओं की

---

1. अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु पृ 63

पूर्ति हो जाने पर भी मनुष्य की सांस्कृतिक या भावात्मक आवश्यकताएँ मनोरंजन या मनोविनोद हैं। मनोरंजन के दो रूप लोक में दर्शाये जाते हैं क्रीडात्मक और कलात्मक क्रीडात्मक मनोरंजन में खेल-कुद को रखा जा सकता है और कलात्मक मनोरंजनों में नाटक, संगीत, काव्य आदि आते हैं। छोटे बच्चों के मनोरंजनों में लेरियाँ आती हैं।

लोकजनता आखेट की कला में मनोरंजन पाती थी। इससे जीविका भी चालाती थी। आखेट, मछली पकडना, खेती-बाडी करना आदि का लोकजीवन से अटूट संबन्ध है। लोक में तीर धनुष को लेकर आखेट करने की प्रवृत्ति विद्यमान थी। बचपन में राम विनोद केलिए लक्ष्मण के साथ आखेट करते थे। अध्यात्मरामायणम् में एषुत्तच्छन ने यों कहा है

"राघवनतुकालमेकदाकौतूहलाल् वेगमेऱीडन्नोरुतुरगरथमेऱी।
प्राणसम्मितनायलक्ष्मणनोडु चेन्नु बाणतूणीरबाणासनपुकळ्‌ पूण्डु
काननदेशेनडन्नीडिनान् नायाट्टिनय्काणायदुष्टमृगसंचयं *कोलचेय्तान्।।*
हरिणहरिकरिकरडिगिरिकिरिहरिशार्दूदालादिकळमिता वन्यमृगम्'
वधिच्चुकोण्डुवन्नुजनकन्कालक्कल्‌वच्च् विधिच्चवण्णम्‌नमस्करिच्चु वणङ्डीडिनान्[1]

(उस समय श्रीराम जी कौतुक से अतिशीघ्र दौडने वाले घोडे पर चढकर लक्ष्मण के साथ धनुष और बाण लेते हुए, कवच पहनकर आखेट केलिए वन चले गये। जो-जो दुष्ट मृग सामने आये उन सबका वध किया। हिरण, हाथी, जंगली सुअर, सिंह, बाघ आदि बहुत सारे जानवरों को मारकर पिता के पैरों पर डाल दिया और विधिपूर्वक नमस्कार किया।)

---

1. अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु पृ. 36

रामचरितमानस में तुलसी ने बाल्यकाल में मित्रों को बुलाकर नित्य वन में शिकार खेलनेवाले राम का चित्रण किया है। जैसे

"बंधु सखा सँग लेहिं बोलाई। वन मृगया नित खेलहिं जाई।।
पावन मृग मारहिं जियँ जाने। दिन प्रीति नृपहि देखावहिं आनी।।"[1]

इससे यह पता चलता है कि लोकसमाज में आखेट मनोरंजन एवं जीविका चलाने की उपाधि है। लोकजनता आखेट की कला पर तल्लीन भी है।

मानस के लंकाकाण्ड में बालकों केलिए अत्यंत मनोरंजक गेंद के खेल का उल्लेख नल और जाम्बवान् के द्वारा बडे-बडे पर्वतों को गेंद के समान उछालने के चित्रण से किया है। पालने में झुलाने की प्रवृत्ति मनोरंजन का विषय है। सन्तान उत्पन्न होने के पश्चात् बच्चे केलिए सुन्दर सा पालना बनता है जिसमें वच्चे को झुलाते हैं, साथ ही गीत भी गाये जाते हैं। मानस में तुलसी ने इसका उल्लेख किया है

"कबहुँ उछंग कबहुँ बर पालना। मातु दुलारइ कहि प्रिय ललना।।"[2]

याने श्रीराम भी बचपन में पालने में सोया था। अध्यात्मरामायणम् में इसका उल्लेख नहीं।

लोकजनता का यों विश्वास है कि "पालने में या गोद में झुलाने से बच्चों के मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य बढ़ जाते हैं।"[3] पालने के गीतों की परंपरा मानव की सृष्टि के विकास से ही देखी जा सकती है। कितनी माताओं ने खेतों में काम करते समय पेडों की डलियों में पालना बनाकर या कपडे की धोती या चादर का पालना बनाकर अपने

---

1. मानस 1/204/1
2. वही 1/197/4
3. अवधी का लोकसाहित्य - सरोजनी रोहतगी पृ. 222

पुतुआ, मुनुआ और ललुआ को थपकी दे देकर अस्फुट अर्थहीन पर लययुक्त स्वरों में गीत गा गाकर सुलाया होगा और आज भी इसी प्रकार लोरी गा-गाकर प्यार-भरी थपकियों से बच्चों को सुलाया जाता है। यह लोकजीवन की अनुपेक्षणीय प्रक्रिया है।

मनोरंजन केलिए पशु-पक्षियों को पालने की रीति भी लोक में विद्यमान है। प्राचीनकालीन लोकविश्वास के अनुसार मनुष्य पक्षी की भाषा समझ लेते थे। वे विशेष रूप से संदेशवाहक हुआ करते थे।"[1] मनुष्य ने शुक तथा सारिका (मैना) की बुद्धिमानी एवं चातुर्य को समझा एवं उन्हें पालतू बनाया। मानववाणी एवं अन्य पक्षियों की वाणी की नकल करने में ये पक्षियाँ अत्यंत पटु हैं। इसी कारण से लोकजीवन में इन पक्षियों का महत्व भी बढ़ गया। मानस में सीता द्वारा पाले गये पक्षियों का चित्रण देखा जा सकता है। जैसे

"सुक सारिका जानकी ज्याए। कनक पिंजरन्हि राखि पढाए।"[2]

यहाँ सीता-वियोग को सह नहीं सकने के कारण व्याकुल पक्षियों का चित्रण तुलसी ने अत्यंत रोचक ढंग से किया।

एषुत्तच्छन का अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में आद्यंत शुक का वर्णन है। शुक के माध्यम से ही संपूर्ण रामकथा कही गयी है। किळिप्पाट्टु शैली इसका प्रमाण है। तोते या मैना के माध्यम से कहानी कहने की एक रीति लोक में देखी जा सकती है। यहाँ एषुत्तच्छन ने भी शुक को संबोधित करते हुए कहा है कि

---

1. पद्मावत का लोकतात्विक अध्ययन नृपेन्द्रवर्मा पृ. 55
2. रामचरितमानस 1/337/1

"श्रीरामनामम्पाडिवन्न पैंकिळिप्पेण्णे श्रीरामचरितम् चोल्लीडुमडियाते।
शारिकप्पैतल्तानुंवन्दिच्चुवन्द्यन्मारे श्रीरामस्तुतियोडे परञ्ञुतुडङ्ङिनाळ्।"[1]

(अर्थात् श्रीरामनाम की कथा गानेवाली चिडिया से अलसता के बिना आलापन करने केलिए एषुत्तच्छन के कहने पर उसके अनुसार सभी की वन्दना करके श्रीराम का स्मरण करके वह कथा कहने लगी।) यहाँ निर्मल एवं निष्कलंक स्वभाव के प्रतीक के रूप में लोकजनता चिडिया को मानती है।

'गारी देना' भी मनोरंजन केलिए लोकजनता के बीच प्रचलित है। लोकसंस्कारों में लोकगीतों का गायन स्त्रियाँ करती हैं। इससे लोकमानस की व्यक्तिगत और सामूहिक सुख-दुख की लयात्मक अभिव्यक्ति होती है। ये अपनी शीतल वाणी रूपी जल से समग्र मानव समाज को शीतलता प्रदान करती हैं। लोकसमाज में विवाह के समय वधू-पक्ष के लोग वर-पक्ष को गालियाँ देकर आनन्द-मंगल मनाते थे। घर-गाँवों में आज भी इस प्रथा का प्रचलन है। "गालियों का तात्पर्य नवागन्तुकों से हास-परिहास के माध्यम से दोनों पक्षों के बीच प्रगाढ़ता बढ़ाना ही था।"[2] ज्यौनार में पुरुषों और स्त्रियों का नाम लेकर गारी गाती हुई स्त्रियाँ व्यंग्य में गारी देती हैं। यह लौकिक रीति-रिवाज़ बुन्देलखण्ड में प्रचलित है। उदाहरण केलिए

"राजा दसरथ के तीनि जो रानी, सूरज किरन उजानी।
तिहरो अंग साँवरो काए, कहो कौन सी काटी।।"[3]

मानस में भी इसका चित्रण है। राम-विवाह के अवसर पर बारातियों को भोजन कराते समय गाली का गाना सुनकर लोग बहुत प्रेममग्न हो गये।

---

1. अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु पृ. 2
2. सूर-काव्य में लोकदृष्टि का विश्लेषण - डॉ. मीरा गौतम पृ. 434
3. मानस चन्दन (पत्रिका) गणेशदल सारस्वत - पृ. 45

"गारि गान सुनि अति अनुरागे।"[1]

विवाह के समय की सुहावनी गाली अत्यधिक शोभित हो रही है। उसे सुनकर समाज सहित राजा दशरथ हँस रहे हैं।

"समय सुहावनी गारि बिराजा। हँसत राउ सुनि सहित समाजा।।"[2]

गारी गान की श्रेष्ठता यहाँ देखी जा सकती है।

मंगलगान या शहनाइयाँ बजाने की प्रवृत्ति लोक में चौक पूरते, बारात का स्वागत करते, बारात को बिदा करते, तिलक लगाते, वधू का गृह-प्रवेश आदि के अवसर पर देखी जा सकती है। "मंगल परंपरा काव्य की लौकिक परंपरा ही रही होगी और काव्य में इसका प्रचार लोक से हुआ हे।"[3] रामचरितमानस में इसका वर्णन किया है। जब अयोध्या से बारात निकली तब स्त्रियाँ सुन्दर मंगलगान करने लगीं और रसीले राग से शहनाइयाँ बजने लगीं। यों कहा है

"घंट घंटि धुनि बरनि न जाहीं। सख करहिं पाइक फहराहीं।।
करहिं बिदूषक कौतुक नाना। हास कुसल कल गान सुजाना।।"[4]

यहाँ पैदल चलनेवाले सेवकगण अथवा पट्टेबाज कसरत के खेल कर रहे हैं और पहरा दे रहे हैं। हँसी करने में निपुण और सुन्दर गाने में चतुर विदूषक तरह-तरह के तमाशे कर रहे हैं। मागध, सूत, बंदीजन, नट जैसे लोकगायक भी मनोरंजन देनेवाले हैं। लोक में सोलह संस्कारों के अंतर्गत ये गीत आते हैं। लेकिन मङ्गल शब्द केवल विवाह गीतों केलिए रूढ़ हो गया है।

---

1. मानस 1/328/1
2. वही 1/328/4
3. गढ़वाली लोकगीत एक सांस्कृतिक अध्ययन गोविन्द चातक पृ. 101
4. मानस 1/30/4

लोकवाद्य

लोकजीवन में लोकवाद्यों का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। पौराणिक युग से ही हम लोकवाद्यों के महत्व को देखते आये हैं। शिव-डमरू बजाने केलिए प्रसिद्ध हैं। विष्णु शंखधारी हैं। ब्रह्मा ढ़ोल के निर्माता हैं। अतः यह स्पष्ट है कि सभी वाद्यों का विकास लोकजीवन से ही हुआ है। लोकगीतों में लयात्मक प्रवृत्ति को व्यक्त करने केलिए ढोलक ढ़ोल, नगारा आदि अनेक प्रकार के वाद्य हैं। लोक में कई तरह के वाद्य प्रचलित हैं। जिनमें फूँक से बजाये जानेवाले वाद्य, दूसरे चर्मवाद्य, तीसरे तारवाद्य और चौथे मिश्रित वाद्य। अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में श्रीराम के विवाह के बाद अयोध्या की ओर जाते समय लोकवाद्य का वर्णन है

"मृदंगानकभेरितुर्यघोषङ्ङळोडुं मृदुनादङ्ङळ्तेडुंवीणयुम् कुष्लुकळ् ।
शृंगकाहळङ्ङळुमद्वलमिडय्क्ककळ् शृंगाररसपरिपूर्णवेष्ङ्ङळोडुम् ।"[1]

(अर्थात् मृदंग, ढ़ोल, नगाडा आदि वाद्ययंत्रों तथा मृदु स्वर उत्पन्न करनेवाले डमरू, वीणा आदि शृंगाररस से पूर्ण महान् शब्दवाले वाद्यंयंत्रों के साथ राम अयोध्या की ओर चले गये।) राम के राज्याभिषेक की खबर सुनकर बहुत प्रकार के बाजे बज रहे हैं।

"बाजहिं बाजने बिबिध बिधाना।"[2]

इस प्रकार मङ्गल कर्मों में वाद्ययंत्रों का प्रयोग करने में लोकजनता तल्लीन है। प्राकृतिक उपादानों से (पेड-पौधे) बने ये वाद्य लोकजनता केलिए आनन्ददायक हैं।

---

1. अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु 64
2. मानस 2/10/1

लोकनृत्य

लोकसमाज में इसका बहुत महत्व है। लोकनृत्य में गीत, धुन, वाद्य, लयताल, वेश-भूषा, शृंगार आदि की प्रमुखता रहती है। लोकनृत्यों में सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति होती है। भारतीय आख्यानों में नृत्य उत्पत्ति के आदिम उल्लास 'ताण्डव' को माना जाता है। ताण्डव के जनक शिव हैं और शिव-ताण्डव को रोकने का प्रयास पार्वती का लास्य नृत्य है। मानसिक उल्लास के साथ सौंदर्य और मांगल्य का भाव नृत्य के साथ जुडा हुआ हैं। अयोध्या में श्रीराम विवाह के बाद नृत्य का भी वर्णन है। मानस में यों कहा है

"बिबुध बधु नाचहिं मुदित मंजुल मंगल गाई।"[1]

स्त्रियाँ मंगलगीत गा गाकर नाच रही हैं।

पटा-बनैती और मृदंग एवं डंके के ताल पर घोड़े या घोड़ी का नृत्य भी लोककला के दो रूप हैं। बारात-यात्रा में इसका भी प्रयोग होता है। दशरथ की बारात अयोध्या से आते समय इस प्रकार का दृश्य देखा जा सकता है

"तुरग नचावहिं कुअँर बर अकनि मृदंग निसान।
नागर नट चितवहिं चकित डगहिं न ताल बँधान।।"[2]

घोडों का मृदंग और नगाडे के अनुसार नाचने का दृश्य देख सकते हैं। लोकजनता इस प्रकार के नृत्यों में आनन्द अनुभव करती है। लोक में वाद्य या गीत के पहले ही मनुष्य नृत्य करते थे। 'नृत्य के माध्यम से जीवन के आधारभूत मर्मस्पर्शी भाव प्रकट होते हैं।"[3] ताल-लय नृत्य केलिए अत्यंत आवश्यक है। लोकजनता इसमें तत्पर

---

1. मानस 1/347
2. वही 1/302
3. नाडोडिविज्ञानीयम् - डॉ एम.वी. विष्णुनंपूतिरी - पृ. 155

देखाई पडती है। इसलिए लोकजनता से जुडे हुए लोकवाद्य, गीत तथा लोकनृत्य का उल्लेख तुलसी के मानस में विस्तृत रूप से देखा जा सकता है। लेकिन एषुत्तच्छन ने इन सबका विस्तृत चित्रण अध्यात्मरामायणम् में नहीं किया है।

लोकसमाज में नारी

समाज का एक अविभाज्य अंग है नारी। समाज की कल्पना का मूल आधार नारी है। लोक में नारी को शक्ति का प्रतीक माना गया है। इस विराट शक्ति ने जगत् के विविध रूपों में अपने को प्रकट किया है। पुरुष भी इसी का एक अंश है, अपर-रूप मात्र है। नारी भव 'चक्रचालिनी, लोक ललिनी[1] है। 'करोडों शिव-विष्णु, अज, सूर्य-चन्द्र, तारक, सुरासुर और जीव-जगत् इस आदि शक्ति से उद्भव पाते हैं।"[2] शाश्वत माता तथा पुरुष की क्रियाशीलता के रूप में भी नारी को माना जाता है। यों कहा गया है कि नारी के बिना शिव भी शक्तिहीन, शव हो जायेंगे। अर्थात् नारी समस्त सृष्टि की मूल शक्ति है। भारतीय संस्कृति की परम पूज्य देवियाँ लक्ष्मी, सरस्वती, पार्वती, दुर्गा, आदि नारी की अलौकिक शक्ति का प्रतीकमात्र हैं। स्वयं भगवान् वेदव्यास ने अपने ग्रन्थ में 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता लिखकर प्राचीन भारत में नारी सम्मान की ओर इशारा किया है। एकाकी मनु किसी समाज के संस्थापक नहीं थे। मानवी सृष्टि के आदिपुरुष होने का गौरव वे श्रद्धा से मिलकर ही पा सके थे। हिन्दू धर्म कथाओं में अर्धनारीश्वर की कल्पना नारी की महत्ता तथा प्रधानता की द्योतक है।

भक्तिकाल में नारी को शक्ति का प्रतीक माना गया था। नारी की शक्ति समाज सेवा, जग उन्नयन, राष्ट्र भावना आदि स्रोतों में प्रवाहित हुई है। रामचरितमानस में तुलसी ने कहा है कि सीता आदि शक्ति है। देखिए

---

1. लोकजीवन में नारी डॉ गजानन शर्मा पृ. 582
2. परिमल पंजवटी प्रसंग निराला पृ. 222

"बाम भाग सोभति अनुकूला। आदिसक्ति छबिनिधि जगमूला।"[1]

यह मूल शक्ति लोक में व्याप्त है। नारी पूर्णता का भी प्रतीक है। गोस्वामी जी ने स्पष्ट संकेत किया है कि पुरुष और नारी संयुक्ति में ही पूर्णता है। भवानी और शंकर मिलकर श्रद्धा और विश्वास की परस्पराश्रयी एकता के समान तत्व बनते हैं।

"भवानीशङ्करौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ।"[2]

सीता और राम गिरा और अर्थ की अभिन्नता के समान, अविभेद्य, अविभाज्य एकता में पूर्णता के स्वरूप हैं।

"गिरा अरथ जल बीचि सम कहिअत भिन्न न भिन्न।
बंदउँ सीता राम पद जिन्हहि परम प्रिय खिन्न।"[3]

यहाँ शक्ति ही पुरुष का आधार है। अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में सीता के मुँह से यों कहलवाया है कि

'उण्डोपुरुषन्प्रकृतियेवेरिट्टु रण्डुमोन्नेविचारिच्चु काण्किलो।"[4]

(प्रकृति से अलग पुरुष का अस्तित्व नहीं है। गहराई से सोचें तो दोनों एक ही हैं।)

लोक में नारी को शक्ति का प्रतीक माना गया है। देवी-देवताओं की पूजा करना एवं उनमें विश्वास रखना इसका प्रमाण है। इतना होने पर भी लोकजीवन में नारियों के विभिन्न चेहरे भी देखे जा सकते हैं। स्त्री ही घर का दीपक है। समाज में पुत्री, पत्नी, माता, सास, बहू आदि कई रूपों में महत्व रहा है। रामचरितमानस एवं अध्यात्मरामायणम्

---

1. मानस 1/147/1
2. वही श्लोक 2
3. मानस 1/18
4. अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु पृ. 118

किळिप्पाट्टु में तुलसी और एषुत्तच्छन ने जिन नारी पात्रों का परिचय दिया है, लोक में उनका महत्व एवं स्थान सदा विद्यमान रहता है। किसी न किसी प्रकार इसका नाम लोकसमाज में उल्लेखनीय है। पतिव्रता-धर्म की साकार मूर्ति सीता, सौतियाडाह से जलनेवाली नारी कैकेयी, मध्यकालीन राजघरानों की कुटिल दासी मंथरा, सेवा-धर्म का प्रतीक शबरी, कुल की महिमा को उजागर करनेवाली नारियों का प्रतीक तारा और मंदोदरी, दुष्टता एवं दुराग्रह का प्रतिरूप शूर्पणखा आदि इसी क्षेत्रों में उल्लेखनीय हैं। इनका प्रतिफलन आज के लोकसमाज में दर्शाया जाता है।

पतिव्रता-धर्म की साकार मूर्ति सीता

लोक में पतिव्रता धर्म का पालन करनेवाली नारियों का खास रूप में सम्मान होता है। पतिव्रता-धर्म का पालन करना स्त्रियों केलिए श्रेयस्कर माना जाता है। अपने पति के सुख-दुःख के दिनों में उसका साथ देना ही पतिव्रता स्त्री केलिए शोभनीय है। लोक में सीता पतिव्रता-धर्म का आदर्श है। यह धर्म सत्य पर आधारित है। सत्य ही दाम्पत्य-जीवन का आधार तथा दो हृदयों के ग्रंथन का मूल है। सीता का दायित्व स्वतंत्र, सबल और आदर्श है। लोक में यदि हम संपूर्ण भूतकालीन साहित्य पलटें या भविष्य में होनेवाली बातों का मंथन करें तो दूसरी सीता मिल नहीं सकती। भारतीय स्त्री का आदर्श सीता के जीवन से ही उद्भूत है।

रामचरितमानस तथा अध्यात्मरामायणम् की सीता संसार की उत्पत्ति, स्थिति एवं संहार करनेवाली आदिशक्ति है। राम की वल्लभा होती हुई भी वह श्रेयस्करी है। पृथ्वीपुत्री के रूप में उनकी मान्यता भी है। राम-वनगमन के सन्दर्भ में सीता की पति-परायणता और सशक्त बन जाती है। पतिव्रता धर्म के आदर्श से अभिमण्डित सीता पतिगृह में एक आदर्श पत्नी, और बहू के रूप में शोभित होती है। क्योंकि जहाँ पति है, वहाँ पत्नी भी होनी चाहिए। यह लोकजीवन की मान्यता है। वन-वन भटकना, कष्टों को सहना, वैभव

ऐश्वर्य को त्यागकर साधारण स्त्री की भाँति जीवन बिताना उन्हें स्वीकार है। राम-वनगमन के समय सीता को अनेक प्रकार की नीति-अनीति, और आचरण की बात समझाकर सास-ससुर की सेवा करके महल में रहने का आदेश दिया जाता है। साथ ही साथ भयानक वन की स्थिति बताकर उसको वनगमन से विमुख करने का प्रयास किया जाता है। लेकिन सीता की प्रतिक्रिया देखिए

"मातु-पिता भगिनी प्रिय भाई। प्रिय परिवारु सुहद समुदाई।।
सासु ससुर गुर सजन सहाई। सुत सुंदर सुसील सुखदाई।।
जहँ लगि नाथ नेह अरु नाते। पिय बिनु तियहि तरनिहु ते ताते।।
तनु धनु धामु धरनि पुर राजू। पति बिहीन सबु सोक समाजू।।"[1]

पति के बिना कुछ भी सुखदायक नहीं।

अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में भी सीता के पतिव्रता-धर्म का उल्लेख है।

"नाथ! पतिव्रतयांधर्मपत्नीञानाधारवुमिल्लमट्टेनिक्कारुमे
एतुमेदोषवुमिल्लदयानिधे। पादशुश्रूषाव्रतंमुडक्काय्कमे।।"[2]

(सीता कहती है कि मैं पतिव्रता धर्मपत्नी हूँ। मेरा दूसरा कोई आधार नहीं। आपकी पादसेवा करना ही मेरा धर्म है, इसमें बाधा नहीं डालना।)

पति के साथ वल्कल धारण करके वन में जीवन बितानेवाली सीता सचमुच लोक केलिए आदर्श है।

गोस्वामी तुलसीदास और एषुत्तच्छन ने सीता के चरित्र के माध्यम से जिस पतिव्रता धर्म का प्रकाश-पुंज बिखेरा है, उससे भारतीय संस्कृति और समाज का दिग्दिगन्त

---

1. मानस 2/64/1, 2
2. अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु - पृ. 41

आलोकित हो उठा है। सीता-अनसूया के मिलन प्रसंग में अनसूया द्वारा सीता को पतिव्रता-धर्म का जो उपदेश दिया गया, यह लोक में अत्यंत महत्वपूर्ण है। साध्वी स्त्रियों केलिए आवश्यक भी है। पति का अपमान करने से स्त्री यमपुर में भाँति-भाँति के दुःख पाती है। यों कहा है

"एकइ धर्म एक ब्रत नेमा। कायँ बचन मन पति पद प्रेमा।"[1]

पतिव्रताधर्म के बारे में अनसूया का कथन उल्लेखनीय है

"जगपतिव्रता चारिबिधि अहहीं। बेद पुरान संत सब कहहीं।।
उत्तम के अस बस मन माहीं। सपनेहुँ आन पुरुष जग नहीं।
मध्यम परपति देखि कैसें। भ्राता पिता पुत्र निज जैसें।
धर्मबिचारि समुझि कुल रहई। सो निकिष्टत्रिय श्रुति अस कहई।।
बिनु अवसर भय तें रह जोई। जानेहु अधम नारि जग सोई।।
पति बंचक परपति रति करई। रौरव नरक कल्प सत परई।।"[2]

जगत में चार प्रकार की पतिव्रताएँ हैं। वेद, पुराण और संत समाज ऐसा कहता है कि उत्तमश्रेणी की पतिव्रता वह है, जो स्वप्न में भी दूसरे पुरुषों का स्मरण नहीं करती। पराये पति को अपना सगा भाई, पिता या पुत्र जैसे माननेवाली स्त्री मध्यम श्रेणी की है। जो धर्म को विचार करके अपने कुल की मर्यादा समझकर बची रहती है, वह निकृष्ट या नीच स्त्री है। जो स्त्री मौका न मिलने या भयवश पतिव्रता बनी रहती है, वह लोक में अधम स्त्री की कोटि में आ जाती है। यह भारतीय संस्कृति का आधार है। अध्यात्मरामायणम् में भी यही प्रसंग है। लेकिन विस्तृत विवरण नहीं। देखिए

---

1. मानस 3/4/5
2. मानस 3/4/6,7,8

"नन्नुपातिव्रत्यमाश्रित्यराघवन् तन्नोडुकूडेनीपोन्नतुमुत्तम
कान्तिनिनक्कुकुरयाय्कोरिक्कलुं शांतनाकुंतव वल्लभन्तन्नोडुं
चेन्नु महाराजधानियकं पुक्कु नन्नाय्सुखिच्चुचिरंवसिक्कनी।"[1]

(अर्थात् तुमने पतिव्रता-धर्म का पालन करके पति के साथ आकर उत्तम कार्य किया। कभी भी तुम्हारी शोभा की कमी नहीं होगी। जल्द ही पति के साथ अयोध्या वापस जाकर सुख से जीना।) यहाँ सीता की प्रवृत्ति सराहनीय बन जाती है। इसलिए सीता लोक में भी आदर्श नारी बन गयी।

सीता की पतिव्रता का मूर्तिमत् रूप अग्निपरीक्षा के सन्दर्भ में भी देखा जा सकता है। सीता कुछ नहीं कहती। अग्निपरीक्षा केलिए तैयार हो जाती है। यों कहा है

"प्रभु के बचन सीस धरि सीता। बोली मन क्रम बचन पुनीता।
लछिमन होहु धरम के नेग। पावक प्रगट करहु तुम्ह बेगी।"[2]

उन्होंने आग तैयार करके अग्नि में प्रवेश किया। यहाँ लोकनारी की पावनता दिखाई पड़ती है। अग्नि सभी कार्यों का साक्षी है।

अध्यात्मरामायणम् में सीता का दुःख और सशक्त रूप में प्रकट होता है।

"विश्वासमाशुमल्भर्ताविनुंमट्टु विश्वत्तिल्वाघुन्नवर्कुं वरुत्तुवान
कुण्डत्तिलग्नियेनन्नाय् ज्वलिप्पिक्कदण्डमिल्लेतुमेनिक्कतिल चाडुवान्।"[3]

(पराये घर में रहने के कारण पति के मन में अविश्वास आया है। इसलिए पति तथा अन्य लोगों के विश्वास केलिए मैं स्वयं अग्नि में प्रवेश करती हूँ।) यहाँ एक पतिव्रता नारी का दृढ़निश्चय देखा जा सकता है। लोकजनता कभी भी यह भूल नहीं सकती।

1. अध्यात्मारामायणम् किळिप्पाट्टु पृ. 175
2. मानस 6/108/1
3. अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु - पृ. 488

इस प्रकार लोक में सीता का पातिव्रत्य महिमांमंडित हो उठता है। उनकी कष्टसहिष्णुता, सेवा-वृत्ति, आत्मसुरक्षा एवं प्राण-परित्याग तक की बातें इसकेलिए बल देती हैं। मानस तथा अध्यात्मरामायणम् में सीता का यह रूप व्यापकता के साथ देखा जा सकता है। पतिव्रता-धर्म को जिस कुशलता और स्वाभाविकता के साथ इन्होंने अपने आदर्श नारी पात्रों का आभूषण बनाया है उसकी सुनहरी चमचमाहट से लोक नारी का मुखमण्डल चिरकाल केलिए उद्भाषित हो उठा है।

सौतियाडाह से जलनेवाली नारी कैकेयी

रामचरितमानस एवं अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में कैकेयी एक ऐसी नारी बनकर आती है, जो अपनी दासी मंथरा की कुचाल में आकर सौतियाडाह का स्वरूप दिखाती है। लोककथाओं के अनेक कथा-वृत्त सपत्नी के ईर्ष्याद्वेष के कारण बनते हैं। सौतेली माता के षड्यंत्र से देश से निकाले जानेवाले पुत्र भी लोक में विद्यमान हैं। लोककथाओं का यह अभिप्राय किंचित् परिवर्तित होकर मानसकथा का केन्द्रीय आधार बन जाता है। राम के राज्याभिषेक के समय मंथरा की बातों से प्रभावित होकर कैकेयी महाराज दशरथ से अपने पुत्र भरत केलिए राज्य और राम केलिए चौदह वर्ष का वनवास माँगती है। इससे एक परिवार का मूल नष्ट होता है। अध्यात्मरामायणम् के अयोध्याकाण्ड में मंथरा के वचन से प्रभावित कैकेयी का जो कथन है, यह उसकी कुटिलता को दिखाने में सक्षम है। जैसे

"राघवन्काननत्तिन्नुपोवोलवुं आनविडेक्किडन्नीडुवनल्लाय्किल्

प्राणनेयुंकळञ्ञीडुवान्निर्णयं।

भूपरित्राणार्थमिन्नुभरतनु भूपतिचेरतानभिषेकमेंकिल् आन्"[1]

---

1. अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु पृ. 94

(जब तक श्रीराम वन नहीं जाते, तब तक मैं वह रहूँगी। नहीं तो निश्चय ही अपने प्राण त्याग दूँगी। राज्य की रक्षा केलिए अगर महाराज भरत का राज्याभिषेक करे तो मैं तुम्हें सौ गाँव दे दूँगी।) इसमें कोई संदेह नहीं। लोककथाओं में विमताएँ प्रायः अपनी सौत की संतान केलिए यही हथकण्डा अपनाती हैं।

पहले मंथरा द्वारा राम के राज्याभिषेक की खबर सुनते समय कैकेयी के मन में ईर्ष्या के बदले स्नेह भाव था। लेकिन मंथरा के निरंतर शिक्षण से कैकेयी कोपभवन में जाकर धरती पर लेट गई। स्त्री के ईर्ष्या-भाव का साकार मूर्तिमत् रूप कैकेयी में दिखाई पड़ता है। कोपभवन प्रसंग इसका उदाहरण है।

"अवध उजरि कीन्हि कैकेई। दीन्हिसि अचल विपति कै नंई।।"[1]

अयोध्या को उजाड़ कर विपत्ति की नींव डालने का कार्य कैकेयी ने किया। यहाँ कैकेयी का ईर्ष्यापूर्ण वचन दशरथ के हृदय में भी असहनीय लगता है।

"भरतु कि राउर पूत न होंही। आनेहु मोल बेसाहि कि मोही।।"[2]

(क्या भरत आपके पुत्र नहीं है? मुझे आप दाम देकर खरीद लाये हैं?) यहाँ कैकेयी की नारी सहज ईर्ष्या-भाव भयानक लगता है। राम, सीता आदि को वल्कल देने में भी वह हिचकती नहीं।

कैकेयी के इस सौतियाडाह के कारण उनके पुत्र भरत भी उन्हें छोडकर वन चले। कैकेयी भी इस प्रकार अपने सौतियाडाह से पश्चाताप करने लगी। अंत में राम से वह माफ़ी माँगती है। इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि लोक में भलाई की प्रशंसा

---

1. मानस 2/28/5
2. मानस 2/29/1

एवं बुराई की निन्दा होती है। सौतियाडाह की शिकार बननेवाली कैकेयी जैसी नारियाँ लोक के मान्य आदर्शों पर कलंक डालती हैं।

मध्यकालीन राजघरानों की कुटिल दासी मंथरा

मध्यकालीन राजघरानों की कुटिल दासियों का यथार्थ मनोवैज्ञानिक चित्र तुलसी और एषुत्तच्छन ने मानस एवं अध्यात्मरामायणम् में प्रस्तुत किया है। विशेषकर अयोध्याकाण्ड के संदर्भ में मंथरा का चरित्र स्पष्ट हो जाता है। 'सौतियाडाह' के प्रसंग में मध्यकालीन साहित्य में कुब्जा का वर्णन इतना अधिक लोकप्रिय हो गया है कि कुब्जा सौतियाडाह का प्रतीक ही बन गयी।'[1] वास्तव में कुबड़ी कुचाली मंथरा लोक में अपशकुन का प्रतीक है। आज भी लोक में मंथरा जैसी नारियाँ बहुत हैं। अच्छे मनुष्यों को बुरे लोगों की संगति से दूर रहना चाहिए। कीचड़ में सोने का रंग भी बदल जाता है। मंथरा के कारण कैकेयी भी इस राज्याभिषेक विघ्न में एक कड़ी बन जाती है। मानस में यों कहा है कि

"नामु मंथरा मंदमति चेरी कैकइ केरि।"[2]

मंथरा के कारण दशरथ का परिवार टूट जाता है। राम के राज्याभिषेक में विघ्न तथा रामवनगमन का मूल सेतु मंथरा बन जाती है। मंथरा के कारण कैकेयी भी सौतियाडाह से जलती है। तुलसी और तुंचन ने इस कुबडी स्त्री की चाल का चित्रण किया है, जो लोक में अत्यंत प्रचलित है। अध्यात्मरामायणम् के अयोध्याकाण्ड में कैकेयी से मंथरा का जो कथन है, यह उसके षड्यंत्र का रूप दिखाता है। जैसे

"पापे ! महाभयकारणंकेळ्कनी भूपतिनिन्ने वंचिच्चतरिञ्ञीले।

त्वल्पुत्रनायभरतनेयुम् बलाल्तल्प्रियनायशत्रुघ्ननेयुम् नृपन्।

---

1 पद्मावत का लोकतात्विक अध्ययन डॉ नृपेन्द्रप्रसाद वर्मा पृ. 303

2. मानस 2/12

मातुलनेक्काण्मतिन्नाययच्चतुंचेतसीकल्पिच्चुकोण्डुतन्नेयितुं।

राज्याभिषेकंकृतंरामनेंकिलो राज्यानुभूतिसौमित्रिय्क्कुनिर्णयं।।

* * * * * * *

नाट्टिल्निन्नाट्टिक्कळकिलुमामोरु वाट्टंवरातेवधिच्चीडुकिल् मां।

सापत्न्यजातपराभवंकोण्डुळ्ळ तापवुंपूण्डुधरणियिल्वाष़कयिल्।।"[1]

(हे महापापी कैकेयी! डर का कारण सुनो। जान-बूझकर राजा ने तुम्हें धोखा देकर तुम्हारे बेटे भरत और शत्रुघ्न को अपने मामा के घर भेज दिया। राम का राज्याभिषेक होने पर भी राज्यानुभव लक्ष्मण को ज़्यादा है और सुमित्रा भाग्यवती निकली। उनके भाग्य देखकर तू भाग्यहीना हमेशा कौसल्या की दासी बनकर काम करना। तुम्हें और पुत्र को बाहर निकाल दिया जाता है। नहीं तो तुम्हें मार भी दिया जा सकता है। सापत्न्य दुःख के साथ धरती पर रहने से अधिक मर जाना अच्छा है।)

लोकजीवन, संस्कृति एवं समाज में मंथरा जैसी नारियों का स्थान नीचा है। भौतिक-आर्थिक सुरक्षा ही मंथरा केलिए प्रमुख है।

सेवा-धर्म का प्रतीक : शबरी

लोक में सेवा-धर्म का महत्वपूर्ण स्थान है। मानव सेवा करने में पीछे रहते हैं। जिस मनुष्य में यह सेवा-भाव नहीं है, वह न तो दूसरों की सहायता कर सकता है और न स्वयं अपना कल्याण करने में समर्थ है। 'जिसमें विनय है, सामर्थ्य है, दूसरों केलिए दुःख सहने और कष्ट उठाने की तितिक्षा है, बहुत बडा धैर्य है और जिसके हृदय में संपूर्ण प्राणियों के प्रति दया है, वही मनुष्य सच्चा सेवक हो सकता है।'[2] इसलिए भर्तृहरि ने कहा

---

1. अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु पृ. 92
2. महाभारत भारतीय संस्कृति के नैतिक मूल्य - डॉ. जगत् नारायण् दूबे पृ. 37

है 'सेवाधर्म : परमगहनो योगिनामप्यगम्य :।' सहिष्णुता तथा परदुःखकातरता सेवाधर्म के ये दो आधारभूत सिद्धांत हैं। लोक में सेवा-धर्म गुण नहीं कर्तव्य है।

लोकसंगत शिष्टाचार से यहाँ शबरी पारंगत है। अहल्या की ही भाँति शबरी भी राम के अलौकिकत्व को प्रतिष्ठित करती है। अपनी तपस्या तथा भावनात्मक दृष्टि से शबरी महत्वपूर्ण है। मानस एवं अध्यात्मरामायणम् का शबरी-प्रसंग व्यक्ति की साधना का जयघोष करता है। वनवास के अवसर पर जब श्रीराम शबरी के आश्रम में पहुँचा, तब शबरी का शिष्टाचार देखने योग्य है। उन्होंने जल लेकर आदरपूर्वक दोनों भाइयों के चरण धोये और फिर उन्हें सुन्दर आसनों पर बिठाया। यों कहा है

"कंद मूल फल सुरस अति दिए राम कहुँ आनि।
प्रेम सहित प्रभु खाए बांरबार बखानि।।"[1]

यहां शबरी की निस्वार्थ भक्ति-भावना भी देखी जा सकती है।

अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में भी इसका उल्लेख है

"पूजिच्चु तल्पादतीर्थाभिषेकवुं चेय्तु भोजनोत्तनु फलमूलङ्ङळ् नल्कीडिनाल्।।"[2]

(श्रीराम तथा लक्ष्मण का पाद प्रक्षालन करके कन्द-फल मूल देकर ठीक तरह सत्कार किया।)

यहाँ शबरी निस्वार्थ, निष्कपट एवं निष्कलंक सेवा-भाव का प्रतीक बन जाती है। लोकजीवन में सेवा-भाव संस्कृति का महान् मूल्य भी बन जाता है।

---

1. मानस अरण्यकाण्ड 3/34
2. अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु - पृ. 246

कुल की महिमा को उजागर करनेवाली नारियाँ - मन्दोदरी, तारा।

लोक में राक्षसी नारी होने पर भी मन्दोदरी का नाम उल्लेखनीय है। उसकी दूरदर्शिता और नीतिपरायणता उपेक्षा की वस्तु नहीं है। इन दोनों में सतीत्व का बल हो सकता है। वह भी पतिव्रता हो सकती है। पति-पत्नी के आपसी समझौते से परिवार की भलाई होती है। मन्दोदरी तथा तारा की बातों को रावण तथा बाली सुनने केलिए तैयार नहीं थे। इसी कारण दोनों मृत्यु का वरण भी करते हैं। तुलसीदास तथा एषुत्तच्छन ने तारा को एक समझदार नारी के रूप में चित्रित किया। लक्ष्मण जब सुग्रीव पर भी क्रुद्ध हुए थे, तब तारा के माध्यम से ही सुग्रीव उनके क्रोध को शांत करने में सफल हुआ था। इस प्रकार तारा अपने व्यवहार की सुचारुता एवं मधुरता से कठिन अवसरों को सुगम बनाती है। नारी की उपेक्षा के कारण ही श्रीराम ने बालि को मूढ़ कहा था। लोक रीति के अनुसार विदुषी साध्वी नारी की शिक्षा पुरुषों केलिए सदा शिरोधार्य करती है।

तारा अपने पति बालि से बडा प्रेम रखती थी। जब श्रीराम द्वारा बाली की मृत्यु होती है; उस समय तारा का पत्नीत्व जागृत हो उठता है। फलस्वरूप उसकी मृत्यु पर उसने सुध-बुध खोकर विलाप किया। मानस में इसका वर्णन यों किया है

'नाना बिधि बिलाप कर तारा। छूटे केस न देह सँभारा।।'[1]

अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में एषुत्तच्छन ने तारा की मानसिक स्थिति का उल्लेख किया है। जैसे

"बलिमरिच्चतु केट्टोरुतारयुमालोलवीषुन्नकण्णुनीरुवार्त्तु

दुःखेनवक्षसिताडिच्चुताडिच्चु गल्गदवाचापरञ्ञुपलतरं

---

1. मानस 4/10/1

एन्तिनेनिक्किनिपुत्रनुंराज्यवुमेंतिनु भूतलवासवुंमेवृथा।।

भर्तावुतन्नोड्डुकूडेमडियाते मृत्युलोकंप्रवेशिक्कुन्नतुण्डुञान्।।"[1]

(बालि की स्त्री तारा विलाप करती हुई युद्ध क्षेत्र की ओर दौडी। मृत पति के साथ मृत्यु को स्वयं स्वीकार करने केलिए तैयार बन जाती है। अनेकों प्रकार से छाती पीटती है।) यहाँ तारा का पति-प्रेम एवं कोमल भावनाओं को दर्शाया गया है।

परम सुन्दरी मयतनया मन्दोदरी आरंभ से ही बडी संयत गंभीर एवं बुद्धिमति रानी के रूप में लोक में दिखाई देती है। पति पर संकट आता देखकर वह व्याकुल हो जाती है। जब भी वह पति को भूल करते हुए देखती है, बडी विनम्रता से उसे उपदेश देती है। पति के प्रति सच्ची और पतिनिष्ठ रहती है। वह रावण से राम की शक्ति, अपने पक्ष को अपेक्षाकृत निर्बलता, पर नारी हरण के दुष्परिणाम आदि समझाकर क्रोध त्यागने तथा जानकी को सौंप देने की बात कहती है। अनेक उपदेश भी देती है। किंतु रावण ने उसकी एक भी बात न मानी। अपने दोनों पुत्रों के मर जाने पर भी वह दुःख को चुपचाप सहती है। लेकिन अपने पति को सर्वस्व माननेवाली मन्दोदरी पति-वियोग को सह नहीं सकती। मानस में यो कहा है कि

"पति गति देखि ते करहि पुकारा। छूटे कच नहिं बपुष सँभारा।।

उर ताड़ना करहिं बिधि नाना। रोवत करहिं प्रताप बखाना।"[2]

छाती पीटकर रोनेवाली मन्दोदरी का करुणामय चित्रण एषुत्तच्छन ने भी किया है। देखिए

1. अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु - पृ. 272
2. मानस 6/103/2

"तत्रमण्डोदरीकेणुवन्नीडिनाल्

लंकाधिपन्मारिल्वीणु करञ्ञमातंकमुळ्कोण्डुमोहिच्चु पुनरुडन्

ओरोतरं परञ्ञुपिन्नेमट्टुळ्ळनारीजनङ्ङ्ळुंकेणुतुडङ्ङिनार् ।।"[1]

(पति की दशा देखकर मन्दोदरी व्याकुल और मूर्च्छित होकर धरती पर गिर पडती है। वह अनेकों प्रकार से छाती पीटती है और रोती हुई रावण के प्रताप का बखान करती है।)

राक्षसी नारियों में भी कोमल लोकसहज भावना विद्यमान रहती है। पतिव्रता-धर्म का पालन करके कुल की महिमा को उजागर करनेवाली ये नारियाँ लोक में सदा जीवित रहेंगी।

दुष्टता एवं दुराग्रह का प्रतिरूप - शूर्पणखा

लोक में रामवनवास घटना की प्रच्छन्न सूत्रधारिणी जिस प्रकार मंथरा है, उसी प्रकार सीता-हरण की घटना का सूत्र मूलतः शूर्पणखा के हाथ में है। शूर्पणखा उन्मुक्त राक्षसी संस्कृति को ही लोक के सम्मुख प्रस्तुत करती है, जहाँ जीवन के मूल्य ही भिन्न हैं। शक्ति का दम्भ जब जीवन को निरंकुश बना देता है, तब इच्छा ही व्यक्ति केलिए सर्वोपरि है। विवेक तथा आचरण को कोई महत्व नहीं देता। इसी प्रवृत्ति का परिणाम है कि शूर्पणखा बिना संकोच के राम के सम्मुख अनुचित प्रस्ताव करती है और राम के अस्वीकार करने पर उसे लक्ष्मण की ओर बढ़ने में कोई संकोच नहीं। तुलसी कहते हैं

"शूर्पनखा रावन कै बहिनी। दुष्ट हृदय दारुन जस अहिनी।'[2]

यहाँ दुष्टता का प्रतीक है शूर्पणखा।

---

1 अध्यात्मरामायण् किळिप्पाट्टु पृ. 484

2. मानस 3/16/2

मान मर्यादा, लज्जा और भद्रता सब कुछ भूलकर राम या लक्ष्मण में से किसी एक को पति बनाने केलिए उतावली दिखानेवाली शूर्पणखा का चित्रण मानस तथा अध्यात्मरामायण् में देखा जा सकता है। राम तथा लक्ष्मण उसे निरुत्साहित करते हैं तो क्रुद्ध होकर वह भयानक रूप प्रकट करती है

"रूप भयंकर प्रगटत भई।।"[1]

ईर्ष्यापूर्वक सीता को अपने मार्ग का काँटा समझकर उसे खाने केलिए कोपाविष्ट होकर लपकती है। शूर्पणखा के अंग-छेदन के समुचित कारण थे। अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में इसका उल्लेख देखिए

"कामवुमाशाभङ्गंकोण्डुकोपवुमतिप्रेमवुमालस्यवुंपूण्डु राक्षसियप्पोळ्
मायारूपवुंवेर्पेट्टञ्जनशैलंपोले कायाकारवुंघोरदंष्ट्रयुं कैकोण्डप्पोळ्
कम्पमुळ्कोण्डु सीतादेवियोडडुत्तप्पोळ् संभ्रमत्तोडुरामन् तडुत्तुनिर्त्तिनेरं
बालकन् कण्डु शीघ्रंकुतिच्चुचाडिवन्नु वाळुरयूरि कातुंमुलयुंमूक्कूमेल्लाम्"[2]

(शूर्पणखा अपना भयंकर रूप प्रकट करके सीताजी को अपने मार्ग की बाधा मानकर जब मारने केलिए आगे बढी तब लक्ष्मण ने बडी फुर्ती से उसको बिना-नाक-कान की कर दिया।) यहाँ वासना की खींचतान में पडे हुए प्राणी की उपहसनीय दुर्दशा का चित्र प्रस्तुत किया है।

इतना होते हुए भी दुष्ट एवं दुराग्रह से भ्रमित शूर्पणखा खर दूषण को राम-लक्ष्मण को मारने केलिए भी भेजती है। लेकिन वे दोनों मृत्युलोक पहुँचते हैं। खर-दूषणा का विध्वंस देखकर रावण के पास जाकर भडकनेवली शूर्पणखा

---

1. मानस 3/16/10
2. अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु पृ. 207

"करसि पान सोवसि दिनु राती। सुधि नहिं तव सिर पर आराती।"[1]

रावण को भला-बुरा कहती है। अध्यात्मरामायणम् में भी इसका उल्लेख है

"सत्यंचोल्लेन्ननेरमवळ्मुरचेरताळेन्नयुंमूढ़न् भवान् प्रमतान्पानासक्तन्

स्त्रीजीतनतिशठनेन्तरिञ्ञिरिक्कुन्नु राजावेन्नेन्तुकोण्डु चोल्लुन्नुनिन्नेवृथा?"[2]

(हे मूढ़! शराब पीकर नारी पर आसक्त होकर इस प्रकार दिन-रात सोता रहता है। तुझे खबर नहीं है कि शत्रु तेरे सिर पर खड़ा है। लोग तुझे क्यों राजा कहकर पुकारते हैं?) वह इतनी दुष्ट स्त्री है कि रावण से परस्त्री का अपहरण करवाकर उसे पत्नी बनाने का प्रस्ताव सहज ही रख देती है। ऐसी तिरस्कृत कुटिलताएँ विद्वेषाग्नि भडकाकर सर्वनाश तक करती हैं। रावण को अंत में मृत्युलोक भी जाना पडता है। यहाँ शूर्पणखा की कुटिलता स्पष्ट देखी जा सकती है।

वस्तुतः लोकजीवन में रामकथा जिस मूल्यात्मक संघर्ष को चित्रित करती है, शूर्पणखा विरूपीकरण उसी का परिणाम है। शूर्पणखा लोकसमाज में पशुत्व के स्तर पर अपनी मूल प्रवृत्तियों से परिचालित है। उनके दुष्ट विचार, कुटिलता तथा दुराग्रह एवं राक्षसीय संस्कृति लोकजीवन में, लोककथाओं में देखी जा सकती है, जिससे स्थानीय संस्कृति का विकृत दृश्य सामने आता है।

इस प्रकार लोकसामाज में नारी की सभी अवस्थाओं, तथा भिन्न-भिन्न स्थितियों के अनुसार भावों, भावनाओं और मर्यादाओं के चित्र अंकित हुए हैं। लोक में नारी माता, भगिनी, पुत्री, सखी, पत्नी, योद्धा, कूटनीतिज्ञ, राजनीतिज्ञ, सेविका, परिचारिका, तपस्विनी आदि रूपों में प्रस्तुत हुई है। मानस तथा अध्यात्मरामायणम् में इसका उल्लेख भी है।

---

1. मानस 3/20/4
2. अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु - पृ. 215

ग्रामवधुओं की स्नेहपूर्ण छवि, पार्वती अनसूया मुनिपत्नियों की तपस्या आदि स्पृहणीय है। तारा, मन्दोदरी आदि की राजनीतिज्ञता, मंथरा तथा कैकेयी की कूटनीतिज्ञता को लोकसमाज में विशेष स्थान दिया गया है। सभी क्षेत्रों में नारी का हाथ है। रामचरितमानस तथा अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में इस प्रकार नारी के विभिन्न रूप अनेक स्थानों पर विविध प्रकार शोभित होते हैं। तुलसीदास तथा एषुत्तच्छन की दृष्टि में नारी माता, पत्नी आदि रूपों में सदा वन्दनीय रही है।

निष्कर्ष

आज के विज्ञान, औद्योगीकरण एवं उपनिवेशवाद के इस युग में मनुष्य अपने अस्तित्व को भूल जाता है और संस्कृति के महान् मूल्यों का ह्रास होता है। पारिवारिक संबन्धों में समझौते के अभाव के कारण दरारें उत्पन्न हो जाती हैं। व्यक्ति-व्यक्ति के बीच चाहे पिता-पुत्र, माता, भाई जैसे संबन्धों का कोई स्थान नहीं। यांत्रिक ज़िन्दगी में संबन्ध विहीनता सब कहीं छा गयी है। इसलिए सामाजिक गतिविधियाँ चकनाचूर हो जाती हैं। रामचरितमानस एवं अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में लोकजीवन की बहुरंगी गतिविधियाँ अंकित मिलती हैं, जिनमें हमारी संस्कृति की आत्मा मुखरित होती है। लोकजनता की पहचान उनके सामाजिक संस्कार, रहन-सहन खान-पान आदि में होती है। मानस एवं अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में सामाजिक जीवन, धर्म, कला, विश्वास, रीति-रिवाज़, संस्कार सभी को वाणी मिल गई है। लोकजीवन में प्रकृति के महत्व पर तुलसी तथा एषुत्तच्छन ने ज़ोर दिया है। आज प्रकृति का ह्रास हो रहा है। मनुष्य प्रकृति तथा प्राकृतिक वस्तुओं का दुरुपयोग करते हैं। लेकिन प्रकृति की गोद में रहकर उसके कार्य-व्यापारों को ठीक तरह समझनेवाले तुलसीदास और एषुत्तच्छन का प्रकृति प्रेम इन ग्रंथों में देखा जा सकता है। इसके अलावा लोकसमाज में नारी की अवस्था पर विचार किया गया है। विभिन्न नारी पात्रों के विविध चेहरे यहाँ देखे जा सकते हैं। इन दोनों ग्रन्थों में पारिवारिक संबन्धों

को महत्वपूर्ण स्थान मिल गया है। सफलतापूर्वक जीवन बिताने केलिए हमें परमावश्यक है कि अपने अग्रजों, अनुजों, निम्नवर्ग तथा उच्चवर्ग के व्यक्तियों, साधारण तथा विशिष्टाधिकार संपन्न जनों के साथ औचित्यपूर्ण व्यवहार करें। क्योंकि औचित्यपूर्ण व्यवहार में जीवन की सफलता निहित रहती है। मानस तथा अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु हमें औचित्यपूर्ण व्यवहार से संबद्ध नैतिक आदर्शों का, प्रेम, ममता, करुणा, दया आदि भावों का दिग्दर्शन कराते हैं। इससे लोककल्याण या लोकहित की भावना बढती रहती है।

तुलसीदास तथा एषुत्तच्छन ने मानस तथा अध्यात्मरामायणम् में इन नैतिक मूल्यों पर सबसे अधिक बल दिया है। क्योंकि सामाजिक हित इससे संभव है। आज भी लोकजनता इन नैतिक और मानवीय मूल्यों को अपनाकर अपने चरित्र को लोक संस्कृति के अनुरूप बनाती है। सच्चे अर्थों में ये दोनों ग्रन्थ लोकमंगल की भावना से अनुप्रेरित और लोकहित के कार्यों से ओतप्रोत काव्यग्रन्थ है। इसी कारण भारत के सभी वर्गों, वर्णों और जातियों के बीच यह ग्रंथ लोकप्रिय है। विदेशों में भी मानव मात्र का काव्य समझकर इसका समादर हुआ है और विश्व की अनेक भाषाओं में इसका अनुवाद भी हुआ है।

चौथा अध्याय

रामचरितमानस एवं अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में लोकसंस्कृति एवं लोकधर्म

संस्कृति

'संस्कृति' वह लोककल्याणकारी तत्व है, जो जीवन को विकास, उन्नति और समृद्धि प्रदान करने में सहायक है। संस्कृति वास्तव में मनुष्य की चिरसाधना, चिर तपस्या एवं संयम की देने कही जा सकती है। डॉ. मुंशीराम शर्मा ने संस्कृति की व्याख्या इस प्रकार की है "जब हम किसी देश-प्रदेश अथवा ग्रन्थ की संस्कृति की चर्चा करते हैं, तब हमारा उद्देश्य उस प्रदेश के विकसित आचार-व्यवहार, रीति रिवाज़, पर्व-उत्सव, संस्कार, कला-कौशल, ज्ञान-विज्ञान, पूजा आदि के विधि-विधान एवं अनुक्रम का ही उल्लेख करना होता है। एक व्यक्ति और समग्र समाज का भी विकसित एवं संस्कृत जीवन इन्हीं रूपों में प्रकट होता है।"[1] इस प्रकार संस्कृति वह आधारशिला है, जिस पर मानव जीवन में व्याप्त विभिन्न धर्म, संप्रदाय एवं आचार-व्यवहारों को अधिष्ठित किया जाता है। एन्साइक्लोपीडिया आफ रिलीज़न एण्ड ऐथिक्स में संस्कृति की इस दृष्टि से परिभाषा की गयी है कि उसमें धर्म, आन्तरिक जीवन और बुद्धिवादिता पर अधिक बल दिया गया है।[2] व्यापक अर्थों में संस्कृति शब्द कई लोकतत्वों, को लेकर चलता है, जिनमें बाह्य-आभ्यंतर दोनों प्रकार के व्यवहार और विचारों का सामंजस्य रहता है।

---

1. भारतीय साधना और सूर साहित्य डॉ. मुंशीराम शर्मा - पृ. 361
2. एन्साइक्लोपीडिया आफ रिलीज़न एण्ड ऐथिक्स - पृ. 358

प्रत्येक मनुष्य का जीवन आचार विचार, रीति-रिवाज़, व्यवहार, धर्म-संस्कारादि से संयुक्त होकर लोककल्याण की अवस्था तक पहुँचता है। हज़ारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार "मनुष्य की श्रेष्ठ साधनाएँ संस्कृति है।"[1] साहित्य, दर्शन, विज्ञान, धर्म, कलाएँ, लोकगीत, पर्व, उत्सव, मनोरंजन, संस्कार आदि संस्कृति के संघटक तत्व हैं, जो मनुष्य को परिष्कृत और संस्कृत बनाने में योग देते हैं। मानव कल्याण की सरस भूमिका प्रदान करने में संस्कृति और सभ्यता एक दूसरे के पूरक बनकर समान्तर दिशा में संतुलित रूप में विकसित होती है। सभ्यता मानव की बाह्य सुख समृद्धि तथा वैभव का साधनमात्र है। फिर भी दोनों का संबन्ध आत्मा और शरीर सा है। हमारे, मन, हृदय और मस्तिष्क के संस्कारों से संबद्ध रहने से संस्कृति स्थायी दिखाई पडती है। "संस्कृति शब्द विशिष्ट जन समुदाय के विचारों की परिचायिका है। इसलिए विद्वानों ने संस्कृति के दो सामान्य रूप स्वीकार किए हैं- शिष्ट संस्कृति और लोकसंस्कृति। 'शिष्ट संस्कृति और लोकसंस्कृति देश की संस्कृति की दो पृथक धाराएँ हैं।"[2] अभिजात वर्ग की संस्कृति शिष्ट संस्कृति के अन्तर्गत आती है, जो बौद्धिक विकास की पराकाष्ठा पर पहुँची हुई होती है। लेकिन लोकसंस्कृति से तात्पर्य जनसाधारण की उस संस्कृति से है, जो अपनी प्रेरणा लोक से प्राप्त करती है, जिसकी उत्स-भूमि है जनता।

इस प्रकार संस्कृति किसी जाति, समाज अथवा देश के मानव समुदाय में प्राणतत्व की समष्टि है, जो उस समुदाय द्वारा परंपरागत रूप से काव्य, कला, संगीत, धर्म, दर्शन, आचार-विचार, रीति-रिवाज़ जन्म से मृत्यु पर्यन्त के संस्कार, पूजा, पर्व,

---

1. अशोक के फूल डॉ. हज़ारीप्रसाद द्विवेदी पृ. 75
2. सूर साहित्य में लोकसंस्कृति - आद्याप्रसाद त्रिपाठी - पृ. 51

उत्सव, लोकगीत, खान-पान, वेश-भूषा, आमोद-प्रमोद आदि अनेक भावनात्मक गुणों के माध्यम से जीवन में अभिव्यक्त होती रहती है। दिनेश्वर प्रसाद के अनुसार 'संस्कृति सामाजिक परंपरा से आर्जित चिंतन, अनुभव और व्यवहार-संक्षेप में मानसिक और क्रियात्मक व्यवहार की समष्टि है।'[1] मानव जाति से संबन्धित यह संस्कृति किसी न किसी रूप में सारे विश्व में संचरणशील रहती है।

लोकसंस्कृति का स्वरूप

सृष्टि के आदिमकाल से ही मानव एक प्रकार से प्राकृतिक जीवन से संघर्ष करते हुए संस्कारशील बना। गतिशील लोकजीवन में नूतनता के परिवेश में पुरातन का समाहार करके चलते रहने की आदत अत्यंत प्राचीनकाल से ही विद्यमान है। लोकजीवन और लोकसंस्कृति का अटूट संबन्ध भी है। डॉ हज़ारीप्रसाद द्विवेदी और डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय ने फ़ोकलोर केलिए लोकसंस्कृति शब्द का प्रयोग किया है। हिन्दी साहित्य के बृहत् इतिहास में इनके विचारों को उल्लिखित करते हुए कहा गया है कि "फोकलोर के व्यापक अर्थ को प्रकाशित करनेवाला एकमात्र शब्द लोकसंस्कृति ही ठहरता है।"[2] याने लोकसंस्कृति शब्द फोकलोर के व्यापक तथा विस्तृत अर्थ को प्रकाशित करने में सर्वथा समर्थ है। इसके उच्चारण मात्र से ही जनजीवन का चित्र, उसकी संस्कृति की झाँकी हमारी आँखों के सामने उपस्थित हो जाती है। कुछ लोग लोकसंस्कृति शब्द को 'फोक कल्चर' का पर्याय मानते हैं। लेकिन इन दोनों में विशेष अंतर नहीं, दोनों की सीमायें एक दूसरे के छोर को छूती हुई दिखाई पड़ती हैं।

---

1. लोकसाहित्य और संस्कृति दिनेश्वर प्रसाद पृ. 83
2. हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, भाग-16 पृ. 12

लोकसंस्कृति अपेक्षाकृत अधिक स्थिर, परंपरावादी और सामूहिक होती है। भारतीय संस्कृति में पौराणिक कथाओं, तीर्थाटन, अनेक संस्कार, व्रत, उत्सव, पर्व, त्योहार, रीति रिवाज़ तथा। लोकविश्वासों को जो महत्व प्राप्त हुआ है, यह परंपरागत रूप से आज भी जारी है। इससे लोकसंस्कृति का वास्तविक रूप खडा होता है। 'श्रीमति शालर्ट सोफिया बर्ना की लोकसंस्कृति से संबन्धित प्रस्तुत परिभाषा 'लोकसंस्कृति' का एक स्पष्ट रूप प्रस्तुत करने में काफी है। उनके अनुसार "प्रकृति के चेतन तथा जड़ जगत् के संबन्ध में मानव स्वभाव तथा मनुष्य कृत पदार्थों के संबन्ध में, भूत-प्रेतों की दुनिया तथा उसके साथ मनुष्यों के संबंधों के विषय में जादू-टोना, सम्मोहन, वशीकरण, ताबीज, भाग्य, शकुन, रोग तथा मृत्यु के संबन्ध में आदिम तथा असभ्य विश्वास इसके क्षेत्र में आते हैं। ....विवाह, उत्तराधिकार, बाल्यकाल तथा प्रौढ़ जीवन के रीति-रिवाज़ तथा अनुष्ठान और त्योहार, युद्ध, आखेट, मत्स्य-व्यवसाय, पशु-पालन आदि विषयों के भी रीति-रिवाज और अनुष्ठान इसमें आते हैं, तथा धर्म-गाथाएँ, अवदान (लीजैण्ड) लोककहानियाँ, साके (बैलाडस) गीत, किंवदंतियाँ, पहेलियाँ तथा लोरियाँ भी इसके विषय हैं। संक्षेप में लोक की मानसिक पवित्रता के अन्तर्गत जो भी वस्तु आ सकती है वह इसके क्षेत्र में है।"[1] अर्थात् लोकजीवन में संस्कृति अपने मौलिक रूप में पायी जाती है। "लोकसंस्कृति का एक पक्ष लोकजीवन के रागात्मक अनुभवों और ज़िन्दगी के बारे में लोक की सोच-समझ, मान्यताओं तथा मुख्य चेतना से बना है; दूसरा पक्ष पर्व-त्योहार, प्रकृति, रीति-रिवाज़, तथा वेशभूषा से बना है।"[2] लोकसंस्कृति का जीवन की समग्रता से संबन्धित होती है। यहाँ यह कथन अत्यंत प्रासंगिक है कि "लोकजीवन की सहज सरलता, सादगी, संयम, सदाचार,

---

1. व्रज लोकसाहित्य का अध्ययन डॉ. सत्येन्द्र पृ. 4
2. समकालीन साहित्य चिंतन - डॉ. रामदरश मिश्र - पृ. 38

स्वाभाविकता, उदारता, सहनशीलता, कर्तव्यपरायणता, क्षमाशीलता, पारस्परिक सहयोग, संवेदना, उत्सर्ग तथा दया-भाव, रीति-रिवाज़ एवं धर्म-साधना आदि की समन्विति एवं सजीव रूप लोकसंस्कृति में प्रतिबिंबित होता है और यह लोकसंस्कृति ही तथाकथित संस्कृति की नियामक है।"[1] लोकसंस्कृति वास्तव में लोकजीवन से प्रेरणा प्राप्त करके जनसाधारण की संस्कृति बन गयी है।

संस्कृति के मूल मंत्र, 'वसुधैवकुटुम्बकम्' को समग्र विश्व में प्रचरित प्रसारित करने का मुख्य साधन साहित्य है। साहित्य मानव जीवन तथा मानव समाज की सर्वांगीण व्याख्या का एक सशक्त माध्यम एवं संस्कृति का वाहक भी है। कवि या साहित्यकार केलिए मानव जीवन, समाज तथा संस्कृति के प्रति जागरूकता होनी चाहिए। हमारे विगत जीवन के अवशेष और वर्तमान संदर्भ में असंगत जो है, इसपर भी दृष्टि डालना साहित्यकार का धर्म है। श्रीमद्भगवद्गीता, महाभारत, रामचरितमानस और अध्यात्मरामायण तो भारतीय संस्कृति के प्रतिनिधि बनकर हमारे सामने हैं। राम के अनन्य भक्त गोस्वामी तुलसीदास तो अपने काव्यों, मुख्य रूप से 'रामचरितमानस' के माध्यम से भारतीय संस्कृति के सजग प्रहरी के रूप में खडे दिखाई पड़ते हैं। लोककल्याण का एक सशक्त माध्यम है 'भक्ति'। भक्ति की इस महत्ता को स्वीकार करके स्वभावतः लोककल्याण की दिशा में प्रवृत्त होने की प्रेरणा तुलसी एवं एषुत्तच्छन को प्राप्त हुई थी।

इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि भारतीय जन-जीवन आज जिन अनेक धाराओं के मध्य प्रवाहित होता दिखाई पड़ता है, उनका मूल उद्गम लोकसंस्कृति से ही हुआ है। आज भी लोकसंस्कृति गाँवों, जंगलों, और पर्वतों के प्राकृतिक प्रांगण में अपना अक्षुण्ण रूप संवारती दिखाई पडती है।

---

1. काव्य में लोकदृष्टि का विश्लेषण डॉ. मीरा गौतम पृ. 50

हिन्दी और मलयालम भक्तिकाव्य में लोकसंस्कृति

हिन्दी और मलयालम भक्तिकाव्य लोकधर्म, लोकचित्त और लोकभाषा का साहित्य रहा है। इस समय बहुत सारे आन्दोलन चले थे। दसवीं शताब्दी से लेकर 13 वीं शताब्दी के अंत तक इन आन्दोलनों ने लोकमानस का स्पर्श करते हुए लोकधर्म का रूप ग्रहण कर लिया था। इनके फलस्वरूप लोकचित्त का आन्दोलन देखा जा सकता है। यह ज्ञान से भी बढ़कर भावावेश का आन्दोलन बन गया था। जहाँ तक हिन्दी भक्तिकाव्य का प्रश्न है, कई संत भक्तों ने अपने उपदेशों और भक्ति ज्ञानमूलक वाणी के ज़रिए सामान्य जनता के बीच भक्ति का प्रचार किया। कबीरदास ने 'मसि कागद' छुआ ही नहीं था। फिर भी वे लोकहृदय तक अपनी वाणी को पहुँचाने में सफल बन गये। मुसलमान कवि होते हुए भी मलिक मुहम्मद जायसी ने हिन्दू कथा को आधार बनाकर लोकभाषा अवधी में पद्मावत की रचना की। लोकजनता जायसी को लोककवि तथा उनके पद्मावत को लोककाव्य के रूप में भी मानते हैं। अनेक लोकतत्वों से भरपूर यह काव्य लोकजनता केलिए प्रिय है। डॉ. हज़ारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार भक्तिकाव्य की मूलचेतना लोकसाहित्य से कुछ भिन्न नहीं है।"[1] भक्तिकाव्य में समविष्ट विभिन्न तत्व इस साहित्य की लोकोन्मुखता के साक्षी हैं। तभी तो आज भी जनता समान भाव से इस साहित्य को पूजित एवं समादृत करती है। हिन्दी के भक्तिकाव्य में लौकिक कथारूप एवं अनेक काव्य रूढ़ियाँ व्यवहृत हैं। कई लौकिक काव्यरूपों का भी प्रयोग जैसे गेय पद, सबद, भजन, मुक्तक का प्रयोग इनमें हुआ है। रामचरितमानस में इस लोक परंपरा का अनुवर्तन स्थान-स्थान पर देखा जा सकता है।

---

1. विचार और वितर्क डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी पृ. 205

हर एक भाषा के साहित्य में वहाँ की संस्कृति की झलक पूर्ण रूप से देखी जा कती है। चाहे उत्तरभारत हो या दक्षिण भारत, सांस्कृतिक भिन्नताएँ काफी हैं। उत्तरभारत लोकजीवन में दिखाई पडनेवाले रीति रिवाज़ आचार-अनुष्ठान, रहन-सहन, पर्व, ाोहार, विश्वास आदि दक्षिण भारत में विशेषकर केरल में अलग रूप से दिखाई पडते हैं। ारत के अन्यान्य प्रांतों की भाँति केरल की लोकसंस्कृति काफी पुष्ट है। इसका संबन्ध स्तुतः जनजीवन से है। यह जनता लोकजीवन का अभिन्न अंग होती है। देश की जनता पुराने आचार-विचार, जीवन-रीतियाँ व पुरानी संस्कृति की अपूर्व झाँकियाँ इन लोकसंस्कृति था साहित्य रूपों में अंकित रहती हैं। केरल के सर्वप्रथम गेय महाकाव्य के रूप में माना ाने वाला अय्यप्पिल्लि आशान का रामकथप्पाट्टु अनेक लोकसांस्कृतिक तत्वों से युक्त ाव्य है। चन्द्रवलयं नामक वाद्य के माध्यम से आज भी तिरुनन्तपुरं के पद्मनाभस्वामी मन्दिर उत्सवों के समय इसका गायन होता है। उसी प्रकार चीरामन का रामचरितम्, रामप्पणिक्कर ा कण्णश्शरामायणम् आदि अनेक सांस्कृतिक लोकतत्वों से भरपूर रचनाएँ हैं।

हिन्दी में गोस्वामी तुलसीदास का रामचरितमानस तथा मलयालम साहित्य में षुत्तच्छन का अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु ऐसे दो महान ग्रंथ हैं, जिनमें लोकसंस्कृति ा यथार्थ चित्र देखा जा सकता है। विभिन्न संस्कृतियों का समन्वय भी तुलसी तथा षुत्तच्छन ने अपनी रचनाओं में किया है। लोकप्रिय संस्कृति का एक भव्य रूप खडा रना इसका उद्देश्य है। लोककथा पर आधारित होने के कारण लोकसंस्कृति भरपूर ालती है।

ामचरितमानस एवं अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में लोकसंस्कृति का महत्व

रामचरितमानस एवं अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु की कथा लोकभूमिका को ोकर विकसित होती है। इन ग्रन्थों में लोकसमाज का चित्रण हुआ है। इसलिए स्वाभाविक

रूप में इस समाज में प्रतिफलित संस्कृति का चित्रण भी इन ग्रन्थों में देखा जा सकता है। भारतीय संस्कृति प्राचीनक़ाल से ही लोकसंस्कृति के रूप में लोकमंगलकारी सांस्कृतिक तत्वों को लेकर विकसित होती रही है। इसी विकसित संस्कृति का सामान्य स्वरूप रामचरितमानस एवं किळिप्पाट्टु में चित्रित मिलता है। उत्तर और दक्षिण के अंतर के रहते हुए भी इन ग्रन्थों के मूल में बहनेवाली अंतधारा एक ही रही है। 'अहिंसा परमोधर्मः' 'परोपकारार्थमिदं शरीरम्', 'सत्यमेव जयते', 'सर्वेसुखिनः सन्तु' आदि भारतीय संस्कृति के अविच्छिन्न तत्व रामचरितमानस एवं अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में भी अपना समुचित स्थान बनाये हुए हैं। मानस एवं अध्यात्मरामायणम् के सांस्कृतिक संदर्भ इसी पावन संस्कृति का सहारा लेकर आगे बढ़े हैं। भारतीयों के जीवन आचार-विचार आदि का व्यापक एवं चिरस्थायी प्रभाव इन ग्रन्थों पर देखा जा सकता है जहाँ तुलसी का रामायण उत्तरभारत के वातावरण में इन्हीं तत्वों को लेकर चलता है वहाँ अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु दक्षिण में इन्हीं चिरस्थायी तत्वों की आधारभूमि रहा है। इन दोनों ग्रन्थों में भारतीय जनता का आम चित्र देखा जा सकता है। आदिमानव की लोकसंस्कृति के माध्यम से जन-जीवन में प्रवेश-सूत्र पानेवाले ऐसे महापुरुष उत्पन्न होते हैं, जो उसी में लुके-छिपे सत्यों और मूल्यों का परिमार्जन करके जन-जीवन को स्पृहणीय बनाने का यत्न करते हैं। इन महापुरुषों में गोस्वामी तुलसीदास और तुंचत्तु रामानुजन एषुत्तच्छन का स्थान उल्लेखनीय हैं।

तुलसीदास और एषुत्तच्छन का जीवन लोकजीवन की आशा-निराशा, अभाव और करुणा के मध्य व्यतीत हुआ था। सामान्य जन के जीवन को इन्होंने केवल समीप से देखा ही नहीं, भोगा भी था। इसी कारण तुलसी और एषुत्तच्छन ने रामचरितमानस एवं अध्यात्मरामायणम् में जिस संस्कृति का विराट रूप प्रस्तुत किया है, वह लोकानुभवों का समन्वित चित्र, सामान्य जन के परिष्कारहीन परन्तु लोकनीति से अनुशासित जीवन

सरणियों की सहज व्यंजना दिखाता है। तुलसीदास और एषुत्तच्छन ने लोकजीवन के प्राकृत तथा जनता की शक्ति और उसके विश्वास के स्तर को ऊँचा करने का प्रयत्न किया। विभिन्न संस्कृतियों का समन्वय करके लोकमनोभूमि पर उसे उभारने में वे सक्षम हुए।

मानस एवं अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में विविध संस्कृतियों का वर्णन :-

रामचरितमानस तथा अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में तुलसी तथा एषुत्तच्छन ने अनेक संस्कृतियों का चित्रण किया है। विभिन्न संस्कृतियों का समन्वय इन्होंने दिखाया है। ग्राम्य, नागरिक, वन्य, वानर तथा राक्षसीय संस्कृति का चित्रण इन ग्रंथों में मिलता है। ग्राम्य तथा वन्य संस्कृति का उल्लेख तीसरे अध्याय में हो चुका है। अध्यात्मरामायणम् की अपेक्षा रामचरितमानस में इन संस्कृतियों का उल्लेख अधिक है।

वानर संस्कृति

रामचरितमानस एवं अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में राम से मित्रता दिखानेवाले वानरों का वर्णन हुआ है। यहाँ पर इनकी संस्कृति का भी परिचय मिलता है, जो लोक संस्कृति का अभिन्न अंग है। सीता की खोज एवं रावण से युद्ध करने में इन्होंने राम की सहायता की थी। जंगल में रहते हुए भी इन लोगों में जो मानवीयता रही, वह सराहनीय है। इसी ने उन्हें राम से मित्रता करने केलिए प्रेरित किया। 'बालि का अपने छोटे भाई की स्त्री को छीन लेना, सुग्रीव का बालि की स्त्री तारा से विवाह कर लेता, 'गदा' हथियार का रखना, सप्त तालों के गिराने से राम की शक्ति की परीक्षा आदि अनेक विश्वास उस वानर जाति की अतिप्राचीनता का द्योतक है।"[1]

---

1. मानस में लोकवार्ता चन्द्रभान - पृ. 174

वानरों की अपनी संस्कृति दिखानेवाले अनेक तत्व मानस एवं अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में देखे जा सकते हैं। सेवा भाव इनकी प्रमुख विशेषता है। इनके अनुसार सूर्य को पीठ से और अग्नि को हृदय से सेवन करना चाहिए। स्वामी की सेवा छल छोडकर मन वचन, कर्म से करनी चाहिए। मानस में यों कहा है

'मन क्रम बचन सो जतन बिचारेह। रामचंद्र कर काजु सँवारेहु।।
भानु पीठि सेइअ उर आगी। स्वामिहि सर्ब भाव छल त्यागी।।'[1]

यहाँ निस्वार्थ सेवा भाव भी देखने को मिलता है।

वानर युद्ध में शक्तिशाली योद्धा थे। सीता की खोज केलिए निकलते वक्त यह युद्ध-नीति देखी जा सकती है। सब वानर वन, नदी, तालाब, पर्वत और पर्वतों की कन्दराओं में खोजते हुए चले जा रहे हैं। मन श्रीराम के कार्य में लवलीन है। शरीर तक का प्रेम भी भूल गया है। यों कहा है कि

'कतहुँ होइ निसिचर सैं भेटा। प्रान लेहिं एक एक चपेटा।।
बहु प्रकार गिरि कानन हैरहिं। कोउ मुनि मिलइ ताहि सब घेरहिं।।'[2]

यहाँ वानरों की कार्य कुशलता देखी जा सकती है।

मित्रता में वे विश्वास करते थे। अग्नि को साक्षी देकर वे मित्रता करते थे। मानस में देखिए

'पावक साखी देइ करि जोरी प्रीति दृढ़ाइ।'[3]

---

1. मानस 4/22/2
2. वही 4/23/1
3. वही 4/4

यहाँ अग्नि को साक्षी देकर परस्पर दृढ़ करके राम तथा सुग्रीव ने प्रीति जोड़ दी। अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में भी इसका वर्णन है। जैसे

'अग्नियेयुंज्वलिप्पिच्चुशुभमायलग्नवुंपार्तुचेय्यिप्पिच्चुसख्यवुं।।'[1]

(अर्थात् अग्नि को साक्षी देकर प्रतिज्ञापूर्वक उनकी मैत्री करवा दी।)

वानर जाति की स्वामिभक्ति एवं कृत्यनिष्ठा का चित्रण मानस तथा अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में देखा जा सकता है।

अध्यात्मरामायण् किळिप्पाट्टु में राम के प्रति भक्ति तथा श्रद्धा दिखानेवाले सुग्रीव का चित्रण देखिए

'सुग्रीवनर्घ्यपाद्याध्योनपूजचेय्यग्रभागेवीणुवीण्डुं वणङ्ङिनान्।'[2]

यहाँ राम के चरणों में मस्तक नवाकर आदर सहित मिले। उनकी आदर भावना यहाँ द्रष्टव्य है।

ये वानर श्रेष्ठ योद्धा भी थे। सीता जी की खोज के संदर्भ में यह कार्यकुशलता देखने को मिलती है। यों कहा है

'राम काज लयलीन मन बिसरा तन कर छोह।।'[3]

श्रीरामजी के कार्य में वे लवलीन हैं। इतना तल्लीन है कि कहीं किसी राक्षस से भेंट हो जाती है तो एक-एक चपत में ही उसके प्राण ले लेते हैं।

---

1. अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु - पृ. 258
2. वही पृ. 290
3. रामचरितमानस - 4/23

एषुत्तच्छन इन्हें 'शैल शरीर' कहते हैं। आकार में छोटे, बडे, बडे बडे पर्वत के समान भी हैं। कभी-कभी रूप परिवर्तन भी वे करते थे। यह क्षमता हनुमान में थी।

मानवेतर प्राणियों की जो संस्कृति है, वह मनुष्य की अपेक्षा अत्यंत गुणदायक एवं महत्वपूर्ण है। इस जाति में भी वैर, द्वेष आदि भावना देखी जा सकती है। यहाँ अपने अनुज सुग्रीव से युद्ध करनेवाले बाली को मारकर राम ने सुग्रीव को अपनी ओर मिला लिया था। वानर जाति लोकजीवन तथा समाज के बीच जीवित जाति है। प्रकृति की गोद में ये पले। वन्यसंस्कृति लोकसंस्कृति का अभिन्न अंग भी है। अध्यात्मरामायणम् में एषुत्तच्छन ने भी उनके स्वभाव का चित्रण यों किया है

'चाडियुमाडियुमोरोवनङ्ङळिल् तेडियुंपक्वफलङ्ङळ्भुजिक्कयुं

शैलवननदीजालङ्ङळ्पिन्निट्टु शैलशरीरिकळाय कपिकुलं।'[1]

(अर्थात् यहाँ, अत्यंत गर्व के साथ वृक्षों में कूद-कूदकर फल-मूल को खाकर विविध क्रीडायें करनेवाले वानर समूह का चित्रण है।)

यहाँ कूदना, भागना वानरों के सहज स्वभाव है। फलों को खाना वन्य भौतिक संस्कृति को दिखाते हैं। उनका आकार पर्वत के समान भी है। इस प्रकार वन्य संस्कृति का एक अविभाज्य अंग है यह वानर जाति।

राक्षस-संस्कृति

प्राचीनकाल से ही राक्षस जाति को दुष्ट शक्ति के रूप में माना जाता है। ये परम नृशंस एवं अत्याचारी हैं। राक्षसीय स्वभाव इनके रक्त में लीन हो जाने के कारण

---

1. अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु पृ. 376

लोकजनता इनसे डरती है। अपनी मायावी शक्तियों से समाज को हानि पहुँचाना इनका लक्ष्य है। लोक का विश्वास है कि वे अनेक भयंकर रूप के होते हैं, अत्याचारी और निष्ठुर जो देवों और ऋषियों के यज्ञों का विध्वंस करते हैं। स्त्री का अपहरण करते हैं। मानस तथा अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में मुख्य रूप से दो प्रकार की संस्कृतियों के संघर्ष देखने को मिलते हैं। 'एक रामपरक सत् संस्कृति, जिसका मूलाधार लोकसंस्कृति है और जिसमें वीरता के साथ उदारता एवं वचनबद्धता, एकपत्नीव्रत के साथ अन्य स्त्रियों को माता मानना, दलितों का उद्धार, ऋषि-मुनियों एवं पंडितों के प्रति सम्मान और श्रद्धा की भावना आदि का भंडार है।'[1] दूसरी असत् संस्कृति याने राक्षस संस्कृति, जिसकी विशेषताएँ मानस तथा अध्यात्मरामायणम् में खूब चित्रित हैं। स्वभाव में राक्षस दुष्ट है। मानस में इनके बारे में यों कहा है कि

'खल मनुजाद द्विजामिष भोगी।'[2]

लोगों के माँस खानेवाले दुष्ट हैं ये राक्षस। अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में राक्षसीय संस्कृति का स्पष्ट रूप देखा जा सकता है। यहाँ विराध राक्षस का रूप राक्षसीय संस्कृति का परिचय हमें देता है। जैसे

'उद्धूतवृक्षकरालोज्वलदंष्ट्रान्वितं वक्त्रगहवरंघोराकारमारुण्य नेत्रं।
वामांसस्थलन्यस्तशूलाग्रत्तिंकलुण्डु भीमशार्दूलसिंह महिषवराहादि।।
वारणामृगवनगोचरजंतुक्कळुम्, पुरुषन्मारुंकरञ्ञेट्टवुं तुळ्ळितुळ्ळि।
पच्चमांसङ्ङळेल्लां भक्षिच्चुभक्षिच्चुकोण्डुच्चत्तिललरिवन्नीडिनानतुनेरं।।'[3]

---

1. साहित्य अमृत (जुलाई 2002) पृ. 23
2. मानस 6/44/2
3. अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु - पृ. 181

भयानक आंखें तथा डारावनी दंष्ट्रा से युक्त तथा घनघोर शब्द निकालकर विराध राक्षस बडे-बडे वृक्षों से लेकर आता है। उनके बायें कन्धे पर एक बडा शूल है। उस शूल के अग्र पर निरीह मानव तथा व्याघ्र, हाथी, सिंह, हिरण जैसे जीवजन्तुओं को रखकर उनमें से एक-एक को काटकर अट्टहास करते हुए खाते हैं। यहाँ विराध नामक राक्षस के वर्णन से राक्षसीय रूप की भीषणता हमें देखने को मिलती है। घनघोर शब्द करके बडे बडे वृक्षों को लेकर आनेवाले तथा मांस खानेवाले राक्षस निश्चय ही लोगों को डराते हैं।

मान, मद और मोह में पडे हुए ये राक्षस सदा भोगविलास में डूबे हुए हैं। राक्षसराज रावण के बारे में यों कहा है कि

'सुनासीर सत सरिस सो संतत करइ बिलास'[1]

यों कहा है कि राक्षस निरंतर सैकडों इन्द्रों के समान भोगविलास करते रहते है। यद्यपि अत्यंत प्रबल शत्रु सिरपर है, फिर भी उसको न तो चिंता है और न डर ही है। मान, मद, और मोह में पडे हुए रावण से विभीषण का कथन है

'परिहरि मान मोह मद, भजहु कोसलाधीस'।[2]

मान, मोह और मद को त्यागकर श्रीराम का भजन कीजिए। इस प्रकार कामी, क्रोधी, मदयुक्त, लोभी, मानी, मोहयुक्त, विलासी, अखाडे का संगीत एवं नृत्य देखनेवाले, धर्महीन, खल, मनुष्य और ब्राह्मणों का मांस खाना, सुन्दरी कन्याओं का हरण करना आदि राक्षस संस्कृति की विकृतियाँ हैं, जिनसे राम संघर्ष करते हैं और विजय पाते हैं।

---

1. मानस 6/10
2. वही 5/39

राम की पत्नी सीता का हरण करनेवाले रावण निश्चय ही राक्षसीय संस्कृति का प्रतिबिंब है। इसका वर्णन तुलसी ने इस प्रकार किया है कि

'क्रोधवंत तब रावन लीन्हिसि रथ बैठाइ।

चला गगनपथ आतुर भयँ रथ हाँकि न जाइ।।'[1]

यहाँ अपनी मायावी शक्ति के कारण रूप बदलने में भी रावण समर्थ थे। यहाँ अपना रूप बदलकर एक सन्यासी के रूप में आकर सीता का हरण करता है।

अध्यात्मरामायण् किळिप्पाट्टु में भी दस मुख, बीस भुजाओं, पर्वत जैसा रूप, आदि का वर्णन है। जैसे

'तन्नुडेरूपंनेरेकाट्टिनान् महागिरिसन्निभं दशानन् विशंतिमहाभुजं।

अञ्जनशैलाकारं कागयनेरमुळ्ळिलञ्जसाभयप्पेट्टु वनदेवतमारुं

राघवपत्नियेयुंतेरतिलेड्डुत्तुवच्चाकाशामार्गेशीघ्रंपोयितु दशास्यनुं।'[2]

(अर्थात् क्रोध में रावण ने अपने दस मुख,बीस भुजाओं के साथ भयंकर रूप दिखाकर सीता को रथ पर बिठा लिया और बडी उतावली के साथ आकाशमार्ग से चला।)

राक्षसी स्त्रियाँ भी बहुत ही निष्ठुर एवं कठोर होती हैं। उनमें भी राक्षसी माया का काफी प्रभाव देखा जा सकता है। अपनी मायावी शक्ति से वेष तथा रूप बदलकर जनता पर आक्रमण करना इनका स्वभाव है। शूर्पणखा नामक राक्षसी की करतूत मानस एवं अध्यात्मरामायणम् में हम देख सकते हैं। अपनी मायावी शक्ति के कारण सुन्दर स्त्री

---

1. मानस 3/28
2. अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु - पृ. 228

बनकर राम तथा लक्ष्मण को मोहित करके सीता को मार डालने केलिए तैयार होनेवाली शूर्पणखा राक्षसीय शक्तियों का मूर्तिमत् रूप है; दुष्टता एवं दुराग्रह का प्रतिरूप है। मानस में यों कहा है

'सूपनखा रावन कै बहिनी। दुष्ट हृदय दारुन जस अहिनी।'[1]

मान-मर्यादा, लज्जा या भद्रता इन जातियों के चरित्र में नहीं है। भयंकर रूप बनाकर सीता को अपने मार्ग का काँटा समझकर खाने केलिए तैयार होनेवाली शूर्पणखा का चित्रण अध्यात्मरामायणम् में भी देखा जा सकता है। देखिए

'कामवुमाशाभंङ्गंकोण्डुकोपवुमतिप्रेमवुमालस्यवुंपूण्डु राक्षसियप्पोळ्।
मायारूपवुंवेर्पेट्टञ्जनशैलंपोले कायाकारवुंघोरदंष्ट्रयुं कैकोण्डप्पोळ्।
कम्पमुळ्कोण्डु सीतादेवियोडडुत्तप्पोळ् संभ्रमत्तोडुरामन् तडुत्तुनिर्तुन्नेरं
बालकन्कण्डुशीघ्रं कुतिच्चुचाडिवन्नुवाळुरयूरि कातुंमुलयुंमूक्कुमेल्लाम्।'[2]

(शूर्पणखा अपना भयंकर रूप प्रकट करके सीताजी को अपने मार्ग की बाधा मानकर मारने के लिए जब बढा तब लक्ष्मण ने बडी फुर्ती से उसको बिना नाक कान के बना दिया।) यहाँ काम, कोप, आलस्य, मयारूप, पर्वत जैसा आकार आदि का चित्रण करने के साथ दुष्टता या असत् शक्ति का नाश दर्शनीय है। शूर्पणखा के ही कारण खर-दूषण तथा राक्षसराज रावण का वध भी हुआ।

स्पष्ट है कि राक्षस संस्कृति की विकृतियों का उन्मूलन करना ही मानस तथा अध्यात्मरामायणम् का उद्देश्य है। राक्षस सदा अत्याचार एवं कठोर कार्य करने में तत्पर

---

1. मानस 3/16/2
2. अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु - पृ. 207

हैं। राक्षसराज रावण का वध करने पर असत् शक्तियों का नाश हुआ है। अधर्मी राक्षस समूहों का चित्रण तुलसी तथा एषुत्तच्छन ने उसकी भीषणता के साथ किया है। लोकजीवन में प्राचीनकाल से ही इन जातियों से लोग डरते हैं।

अन्य अवशिष्ट तत्व

इसके अलावा लोक से जुडी हुई जातियों में बंदी, मगध, सूत, चरण, भाट आदि का उल्लेखनीय स्थान है। इनकी मानस में व्यक्त होनेवाली संस्कृति पर विचार करना है।

'बंदी मगध सूतगन बिरुद बदहि मति धीर,
करहिं निछावरि लोग सब हय गय धन मनि चीर।'[1]

मांगलिक अवसर पर ये कुल की कीर्ति का उच्चारण करते हैं। यों कहा है कि

'कतहुँ बिरिदबंदी उच्च रही।'[2]

राम की बारात आते समय मगध, सूत, विद्वान और भाटों ने बारात सहित आदर किया।

'मागध सूत बिदुष बंदीजन'[3]

भाट और मगधों में गुणों का गान करके लोकजनता को आकर्षित करने की क्षमता है। जैसे

'बंदि मागधन्हि गुनगान गए। पुरजन द्वारा जोहारन आए।'[4]

---

1. मानस 1/262
2. वही 1/296/3
3. वही 1/308/3
4. वही 1/357/3

ये सारी बातें लोक में इनकी कीर्ति या संस्कृति का महत्व दिखाती हैं। मानस में तुलसी ने इनकी संस्कृति को दिखानेवाले अनेक प्रसंग चित्रित किए हैं। लेकिन एषुत्तच्छन के अध्यात्मरामायणम् में इस संस्कृति का उल्लेख तक नहीं। चरण, भाट, बंदी आदि एक ही जाति कें भिन्न भिन्न नाम हैं। 'तुलसीदास जी ने विशेषतः' विदेह के राज-दरबार में ही इनके द्वारा गुण-गान करने तथा विरुद्ध बखानने की बात कही है।'[1] इस वर्णन में जहाँ जातिगत सूचना मिलती है वहाँ लोकमानस की अपने पूर्वज तथा अपनी प्रशंसा सुनने की प्रवृत्ति की ओर भी निर्देश है।

इसके अतिरिक्त वन्य संस्कृति में बहुत सारे ऋषि मुनियों की संस्कृति भी है। इन सबका लोक से अटूट संबन्ध है। लोकजनता पर इन संस्कृतियों का असर गहराई से है।

इस प्रकार तुलसीदास तथा एषुत्तच्छन में लोक संस्कृति के सरल धरातल पर सांस्कृतिक समन्वय की साधना सिद्ध होती है। हर एक संस्कृति में सृजनात्मक तथा विनाशात्मक शक्तियाँ दिखाई पड़ती हैं। इन दोनों शक्तियों के बीच में होनेवाले अंतःसंघर्ष सांस्कृतिक समस्याओं को और जटिल बनाते हैं। अतः विवेकशील मनुष्य इन संघर्षों का मूल्यांकन करके एक सर्वसाधारण धरातल पर पहुँचते हैं। जहाँ सभी की स्थिति में समानता है। उस धरातल को वास्तव में लोकसंस्कृति कहते हैं। वहाँ पर जटायु राम से सहानुभूति के कारण रावण से युद्ध कर सकता है; संपाती मार्गनिर्देश कर सकता है; काकभुशुण्डि ज्ञान कथाएँ कह सकता है। लोक में संस्कृति के इसी रूप के दर्शन मिलते हैं। इस धरातल पर भावात्मकता की प्रधानता है। वहाँ बुद्धिजन्य भेद-भाव नहीं। 'इस धरातल पर अमीर-गरीब; उच्च-नीच सब समान है। इस भावात्मक धरातल पर टिकी लोक-संस्कृति की

1. मानस में लोकवार्ता चन्द्रभान - पृ. 167

भारतवर्ष में प्रधानता रही।'[1] तुलसीदास तथा एषुत्तच्छन ने सभी विरोधी तत्वों को लोकसंस्कृति के आधार पर निर्मित किया। जहाँ ग्राम-नगर, सभ्य-असभ्य, देव-राक्षस सभी के बीच एकता का धाग दीखने लगे; अन्धविश्वास विरोधी रूप में नहीं, भावात्मक शृंखला में सुन्दर कडी बन गए। अरण्यकाण्ड में मिलनेवाले वैदिक ऋषियों से लेकर वन-पथ में मिलनेवाले भोले ग्रामीणों तक की, निषाद आदि वन्य जातियों से लेकर राक्षस तक की संस्कृति को उस लोकसंस्कृति के धरातल पर तुलसी तथा एषुत्तच्छन ने सजा दिया; उनके अन्दर कोमल-करुणा धारा को बहती दिखाकर सबको एक कर दिया। मानस तथा अध्यात्मरामायणम् की अभिव्यक्ति भी लोकसंस्कृति के अनेक तत्वों से बल पाकर तथा लोकप्रतीकों के आधार से भव्य बन गई।

रामचरितमानस तथा अध्यात्मरामायण् किळिप्पाट्टु में संस्कार

भारतीय जन जीवन में संस्कारों का अनुवर्तन जन्म से ही शुरू होता है। लोकसमाज में संस्कारों का महत्वपूर्ण स्थान भी है। भारतीय जीवन में भारतीयता के प्रतीक रूपी संस्कार भी जीवित हैं। लोकसंस्कारों में जन्म, विवाह और मृत्यु तीनों लोकजीवन में प्रमुख हैं। रामचरितमानस तथा अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में इसका विस्तृत वर्णन है।

जन्म संस्कार

भारतीय लोकजीवन में संस्कारों का प्रवेश जन्म से ही माना जाता है। भारत में पुत्र-जन्म आनन्द और प्रसन्नता का विषय माना जाता है। पुत्र-जन्म का उद्देश्य यही रहता है कि पुत्र तो अपने पिता एवं पूर्वजों को जीवन के तीन ऋणों से मुक्त कर देता है। पुत्र शब्द का अर्थ इसका द्योतक है कि 'पुन्नाम नरकात् त्रायते इति पुत्रः' पुत्रजन्म पर योग,

1. मानस में लोकवार्ता चन्द्रभान पृ. 177

लग्न, ग्रह, वार और तिथि देखने की रीति है। मानस में श्रीराम के जन्म के बारे में यों कहा है

"नौमी तिथि मधु मास पुनीता। सुकल पच्छ अभिजित हरिप्रीता।।
मध्यदिवस अति सीत न घामा। पावन काल लोक बिश्रामा।।"[1]

यह लोक केलिए आनन्ददायक समय था। पुत्र-जन्म पर अनेक गीत गाये जाते हैं। ऐसे गीतों को सोहर कहते हैं। ये गीत स्त्रियों के द्वारा गाये जाते हैं। शुभ समय में पुत्र-जन्म परिवार की उन्नति का कारण बनता है। राम जन्म के बारे में यही कहा गया है। लोकसंस्कृति में पितरों तथा पूर्वजों की पूजा का भाव होता है। अपने पितरों का बखान तथा प्रशंसा सुनकर गर्व अनुभव करना एक जातीय तत्व है। मानस के अनेक स्थानों में इनका उल्लेख है। जन्म संस्कारों के अन्तर्गत जातकर्म, नामकरण, चूडाकर्म आदि आते हैं।

जातकर्म

निर्विघ्न प्रसव के साथ शिशु यशस्वी एवं वर्चस्वी बने अतः इस संस्कार में शिशु की भलाई केलिए अपनी-अपनी परंपरा के अनुसार अनेक क्रियायें की जाती हैं। मानस में राम के जन्म पर दशरथ नांदीमुख श्राद्ध करके ब्राह्मणों को स्वर्ण, धेनु, वस्त्रादि दान देते हैं।

यों कहा है

"नांदीमुख सराध करि जातकरम सब कीन्ह।
हाटक धेनु बसन मनि नृप बिप्रन्ह कहुँ दीन्ह।।"[2]

---

1. मानस 1/190/1
2. वही 1/193

दशरथ ने नान्दीमुख श्राद्ध करके सब जातकर्म संस्कार आदि किये और ब्राह्मणों को दान भी दिये। जातकर्म से लेकर विवाह तक सब कर्मों के आदि में अभ्युदयिक नामक प्रसिद्ध नान्दीमुख श्राद्ध का अधिकार है। जन्म पर जातकर्म होता है, उसके आदि में नान्दीमुख श्रद्ध चाहिए। 'यह श्राद्ध मांगलिक है, इसलिए पिता को पूर्वमुख बिठाकर वेदिका पर दूब बिछाकर चौरीठा, हल्दी, तिल, दही, और बेरी के फल मिलाकर इनके नौ पिण्ड बनाकर पिण्डदान कराया जाता है, फिर दक्षिणा दी जाती है।'[1] रामचरितमानस की तरह अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में भी जातकर्म का उल्लेख है।

'चेय्तितु जातकर्मबालन्मार्केल्लावर्कुं पेरित्तुसंतोषंकोण्डश्रुक्कळ् जनङ्ङळ्क्कुम्

स्वर्णरत्नोधवस्त्रग्रामादिपदार्थङ्ङळेण्णमिल्लालोकम् दानं चेय्तु भूदेवनाम्।।'[2]

(अर्थात् बच्चों का जातकर्म कराकर ब्राह्मणों को स्वर्ण, गौ, रत्न, वस्त्र आदि दान दिये।)

नामकरण

समाज में नामकरण अपनी परंपराओं तथा गोत्रों के अनुसार किए जाते हैं। यह संस्कार ग्यारहवें अथवा बारहवें दिन में शुभ तिथि, नक्षत्र एवं मुहूर्त में किया जाना चाहिए। 'नाम का मनुष्य के काम पर तथा व्यक्तित्व पर प्रभाव पडता है, अतः शिशु के शुभाशुभ के परिप्रेक्ष्य में नामकरण संस्कार किया जाना चाहिए।'[3]

लोग नामकरण संस्कार अठाईस दिन के बाद करते हैं। केरल में कुछ जातियों में प्रायः ऐसा देखा जा सकता है। मानस में नामकरण संस्कार का उल्लेख यों है कि

---

1. मानस पीयूष अंजनीनंदन शरण पृ. 21
2. अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु - पृ. 32
3. भारतीय सांस्कृतिक प्रतीक कोश शोभानाथ पाठक पृ. 329

"नामकरण कर अवसरु जानी। भूप बोलि पठाए मुनि ग्यानी।।

करि पूजा भूपति अस भाषा। धरिअ नाम जो मुनि गुनि राखा।।

इन्ह के नाम अनेक अनूपा। मैं नृप कहब स्वमति अनुरूपा।"[1]

अध्यात्मरामायणम् में एषुत्तच्छन ने यही बात बतायी है।

'समस्तलोकङ्ङ्ळुमात्मावामिवङ्ङ्गले रमिच्चीडुन्नुनित्य मेन्नोर्त्तुवसिष्ठनुम्।

श्यामळनिरं पूण्डकोमळकुमारनु रामनेन्नोरु तिरुनामवुमिट्टानल्लो

भरणनिपुणनांकेकेयीतनयनुभरतनेन्नुनाममरुळिचेय्तुमुनि

लक्षणान्वितनायसुमित्रातनयनु लक्ष्मणनेन्नुतन्नेनामवुमरुळ्चेय्तु।।

शत्रुवृन्दत्तेहनिच्चीडुकनिमित्तमाय् शत्रुघ्ननेन्नुसुमित्रात्मजावरजनुम्।

नामधेयवुं नालुपुत्रन्मार्कुं विधिच्चेवं भूमिपालनुम् भार्यमारुमायानन्दिच्चान्'।।[2]

(अर्थात् नामकरण संस्कार का समय जानकर मुनि वसिष्ठ ने मन में कुछ विचार करके पुत्रों का नामकरण किया। जो आनन्द के समुद्र और सुख की राशि है, उनका नाम राम है, जो सुख का भवन और संपूर्ण लोगों को शांति देनेवाला है। लक्षणों से युक्त होने के कारण लक्ष्मण संसार के भरण-पोषण करनेवाला भरत, नाममात्र से शत्रु का नाश होनेवाला शत्रुघ्न आदि नाम देते हैं।) यहाँ पर एषुत्तच्छन ने राजकुमारों के नामों की सार्थकता पर विचार किया है। राम चूँकि समस्त संसार को सुख देनेवाले हैं, उनका नाम इसी अर्थ का प्रतिपादन करनेवाला बना।

---

1. मानस 3/196/1,2
2. अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु - पृ. 32

विद्याध्ययन

भारतीय संस्कार में इसका विशेष स्थान है। इसमें बालक को ज्ञानार्जन हेतु गुरु के पास भेजा जाता था। तुलसी ने रामचरितमानस में इसका विस्तृत विवरण दिया है। यहाँ सब भाइयों को कुमारावस्था प्राप्त करते ही माता-पिता द्वारा विद्याध्ययन करने एवं गुरुकुल भेजने का चित्र प्रस्तुत किया है।

मानसकार के अनुसार

'भये कुमार जबहि सब भ्राता। दीन्ह जनेऊ गुरु पितु माता।।

गुरुग्रहँ गए पढ़न रघुराई। अल्पकाल विद्या सब आई।'[1]

प्राचीनकाल में विद्यार्थियों को गुरुकुल में रखने की रीति थी। शिष्य कितने समय तक गुरु के घर रहे, इसका कोई नियम नहीं था। बचपन में कोई दीर्घकाल तक गुरु के घर में ही रहता था। खेती बाडी में सहायता करना, गोपालन, होम केलिए लकडी बीनना आदि भी शिष्यों के आवश्यक कर्तव्यों में माना जाता था। संपूर्ण अध्यापन मौखिक था। गुरु-शिष्य-संबन्ध लोक में पवित्र माना जाता था। अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में एषुत्तच्छन ने विघाध्ययन का उल्लेख किया है कि

'विधिनन्दननायवशिष्ठमहामुनि विधिपूर्वमुपनयिच्चु बालन्मारे।

श्रुतिकळोडुपुनरंगङ्ङळुपांगङ्ङळ् स्मृतिकळुं परस्मृतिकळुंमश्रममेल्लाम्।'[2]

(वसिष्ठ महर्षि ने चारों पुत्रों का विधिवत् विद्यारंभ किया। वेद, वेदांत, उपांग, स्मृति, उपस्मृति सबका अध्ययन कराया।)

---

1. रामचरितमानस 1/203/2
2. अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु - पृ. 35

बच्चे के विद्याध्ययन केलिए प्रारंभ किए जानेवाले संस्कार को अक्षरारंभ संस्कार भी कहते हैं। अच्छे मुहूर्त के साथ इस संस्कार का शुभारंभ विधि-विधान के साथ कराया जाता है, जिससे बच्चा पढ़-लिखकर यशस्वी बने। लोक में आज भी इस संस्कार का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। मन्दिरों में या गुरुजनों के घर में बच्चों को विद्यारंभ कराया जाता है। एषुत्तच्छन के जन्म-स्थान तथा तुंचनपरम्पु से मिट्टी लेकर आज भी विद्यारंभ किया जाता है। इस संस्कार के शुभारंभ का लोकजनता विशेष ध्यान रखती है, क्योंकि बच्चे के भविष्य केलिए यह अत्यधिक महत्वपूर्ण संस्कार है।

विवाह

लोकजीवन में विवाह का अत्यधिक महत्व है। 'विवाह गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करने केलिए तोरण द्वार है, जिसके पार विशाल कर्म-क्षेत्र मनुष्य की प्रतीक्षा करता रहता है। इस कर्म-भूमि में स्त्री पुरुष दोनों की ही एक दूसरे के लिए समान रूप से आवश्यकता रहती है।'[1] भारतीय जीवन में जन्म के बाद दूसरा महत्वपूर्ण संस्कार विवाह है। इसके संपन्न हुए बिना कोई भी व्यक्ति न तो समाज में प्रतिष्ठित माना जाता है और न समाज केलिए उपयोगी। विवाह-संस्कार से संबन्धित रीतियाँ विभिन्न स्थानों में, विभिन्न प्रकार की हैं। मानस में तुलसी एवं अध्यात्मरामायण में एषुत्तच्छन रामविवाह के ज़रिये इन संस्कारों का चित्रण करते हैं। राम-सीता विवाह प्रसंग लोकजीवन से जुडा हुआ है। इस संदर्भ में लोक में दिखाई पडने वाले कई रीति-रिवाज़ों का चित्रण मिलता है।

सगुन भेजने, वर का मण्डप में आगमन, शंखोच्चार, गाँठ बान्धना, भाँवरी, सिन्दूरदान, वर-वधूके कोहबर-गमन और लहकौर आदि का संबन्ध सीधे उत्तरभारत में

---

1. खडीबोली का लोकसाहित्य सत्यागुप्त पृ. 46

विवाह की लौकिक रीतियों से है। राम विवाह के अवसर पर यह देखा जा सकता है। दूत द्वारा पत्रिका भेजना, बारात तथा परिछन, दूल्हा का मंडप में जाना, सीता का मण्डप में आना, पाँव-पखराई, कन्यादान, गाँठ जोड़ना, राम का सिंदूर भरना, दायज सौंपना, कोहबर, गारी गायन, गायन विदाई, अयोध्या में कंकन छूटना आदि राम सीता विवाह में प्रमुख हैं। लोकजीवन में विवाह के अवसर पर ये संस्कार विभिन्न रूपों में देखे जा सकते हैं। लोकचित्त में आनन्द प्रदान करनेवाले संस्कारों में विवाह संस्कार का महत्वपूर्ण स्थान है।

राम-सीता विवाह का वर्णन बिल्कुल लोकसंस्कृति के आधार पर हुआ है। राम का परिछन करने जब सीता माता चली, तब वेद रीति के साथ कुल आचार का निर्देश किया गया है। मण्डप के निर्माण में हरे बाँसों के उपयोग की बात कही गई है।

'बेनु हरित मनिमय सब कीन्हे। सरल सपरब परहिं नहिं चीन्हे।'[1]

हरे-भरे मणियों के पत्तों से तथा नागबेलि से मण्डप सजाया है। आज भी विवाह आदि मांगलिक अवसर पर केले के स्वम्भे, आम के पत्ते के तोरण (बंदनवार) आदि से मण्डप सजाया हुआ देख सकते हैं। ये सब ऐश्वर्य के प्रतीक मानते हैं। लोकमन में यह संस्कार उतना ही घुल-मिल गया है। जैसे

"रचे रुचिर बर बंदनिवारे। मनहुँ मनोभवँ फंद सँवारे ।।
मंगल कलस अनेक बनाए। ध्वज पताक पट चमर सुहाए।।'[2]

ऐसे सुन्दर और उत्तम बन्दनवार बनाये मानो कामदेव ने फंदे सजाये हों। अनेकों मंगल-कलश और सुन्दर ध्वजा, पताका, पर्दे और भंवर बनाये। ये सब मंगलदायक हैं।

---

1. मानस 1/287
2. वही 1/288/1

अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में एषुत्तच्छन ने भी इसका उल्लेख किया।

'चित्रमायिरिप्पोरुमण्डपमतुं तीर्त्तु मुत्तुमालकळ् पुष्पमालकळ् तूक्किनाना रत्नमण्डितस्तंभतोरणाङ्ङळ्नाट्टि।'[1]

(मोतियों का हार, पुष्प, फल, पत्ते तथा विविध प्रकार से सजाए हुए खम्भे, बंदनवार आदि से सुन्दर मण्डप बनाया।) ये सब मंगलदायक एवं सुखदायक हैं।

ज्योतिषियों से लग्न (मुहूर्त) देखने की रीति अत्यंत प्राचीनकाल से आज तक लोक में जारी रही है। ज्योतिषी आकर लग्न, तिथि, शुभ दिन आदि के अनुसार विवाह का मुहूर्त कहते हैं। उदाहरण केलिए

'गनी जनक के गनकन्ह जोई।'[2]

इसके बाद शंख, नगाडे, ढ़ोल और बहुत से बाजे बजने लगे तथा मंगल कलश और शुभ शकुन की वस्तुएँ सजाई गई। यों कहा है

'संख निसान पनव बहु बाजे। मंगल कलस सगुन सुभ साजे।।'[3]

फिर सुहागिन स्त्रियों को बुलाकर परछन केलिए मंगलद्रव्य सजाने लगे। वर तथा वधू की हथेलियों को मिलाकर शंखोच्चार करने लगे। श्रीरामजी सीता की माँग में सिंदूर डालते हैं।

'राम सीय सिर सेंदूर देही। सोभा कहि न जाति बिधि केही।'[4]

---

1. अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु पृ. 60
2. मानस 1/311/4
3. वही 1/312/2
4. वही 1/324/4

नारी के सुहाग का प्रतीक एवं सौभाग्य का सूचक सिंदूर उसके सुखी दाम्पत्य जीवन का परिचायक होता है। यह सिंदूर डालने की प्रवृत्ति लोक में अत्यंत पवित्र भी मानी जाती है। 'सिंदूर का प्रयोग और अनुष्ठानों में नारियल और पान रखने के रिवाज़ भी संभवतः आग्नेय रिवाज़ों का योगदान है। आग्नेय जाति के लोग देवता के सामने बलिदान किए गए पशु का रक्त मस्तक में लगाना शुभ मानते थे। वही रिवाज़ सिन्दूर लगाने में बदल गया।[1] भारतीय शास्त्रों में सिंदूर के गुणों के बारे में यही बताया है कि शारीरिक इंद्रियों केलिए जैसे बिंदी, तिलक आदि की महत्ता है, उसी प्रकार सिंदूर भरने से सिर से पैर तक के इंद्रियों पर विविध सुखमय प्रभाव पडते हैं। इस प्रकार सिंदूर भारतीय संस्कृति की अद्वितीय पावनता का परिचायक है। लोकजीवन में इस कारण इसका विशेष महत्व भी है।

कोहबर तथा लहकौर की बात भी तुलसी ने की है। कोहबर के गीतों में मनोविनोद या हास-परिहास का भाव रहता है। बारातियों केलिए गारी भी गायी जाती है। लग्न चढ़ जाने के दिन से मण्डप तक व्याह के गीत प्रतिदिन गाए जाते हैं।

मानस में देखिए

'कोहबरहिं आने कुअँर कुअँर सुआसिनिन्ह सुख पाइ कै।
अति प्रीति लौकिक रीति लगीं करन मंगल गाइ कै।'[2]

यहाँ लोक के आनन्द उल्लासपूर्ण वातावरण का सीधा साधा चित्रण है।

अध्यात्मरामायणम् में एषुत्तच्छन ने इसका विस्तृत विवरण नहीं किया है। फिर भी लग्नपत्रिका देकर दूत को भेजने तथा दशरथ परिवार का जनकपुर में आने का वर्णन किया है। देखिए

---

1. संस्कृति के चार अध्याय रामधारीसिंह दिनकर पृ. 89
2. मानस 1/326/छंद

'अन्नेरं विश्वामित्रन् तन्नोडुजनकनुं वन्दिच्चुचोन्नेनिनिकालत्तेकळयाते।

पत्रवुं कोडुत्तयच्चीडणं दूतन्मारेसत्वरंदशरथभूपनेवरुत्तुवान्।।

* * * * * * *

सन्देशं कण्डुपंक्तिस्यन्दननन्तानुमिनि सन्देहमिल्ल पुरप्पेडुकेन्नुरचेय्तु।।'[1]

(दशरथ के यहाँ चिट्टी देकर दूत को भेजना एवं चिट्टी पढ़कर दशरथ परिवार सहित जनकपुर की ओर निकलने की बात है।)

फिर सीता बिदाई के समय अनेक हाथियों, रत्न, असंख्य घोडे, अमूल्य वस्त्र, मोतियों का हार, सोना आदि देने की बात है, जिसका तुलसी तथा एषुत्तच्छन ने मानस तथा अध्यात्मरामायणम् में वर्णन किया हैं। इस प्रकार लोकरीति के अनुसार सभी विधि विधान चल रहे हैं। अतः यह संस्कार लोकजीवन के अत्यंत निकट भी है। विवाह की पवित्रता और स्थायित्व केलिए यह संस्कार आवश्यक माना जाता है। लोकजीवन में मूलतः विवाह एक धार्मिक अनुष्ठान रह गया है।

अन्त्येष्टि

मृत्यु के उपरान्त किये जानेवाले अंतिम संस्कार को अन्त्येष्टि संस्कार की संज्ञा दी गयी है। लोकसंस्कृति का एक विशिष्ट अंग बनकर प्राचीनकाल से ही इस संस्कार ने लोकजीवन में प्रमुख स्थान अदा किया। मृत्यु के पश्चात् मृतक की आत्मा की शान्ति केलिए किए जानेवाले अनेक विधि-विधान एवं प्रथाओं, पिंड देने, पितरों का श्राद्ध-तर्पण करने, ब्राह्मणों को भोजन और दक्षिण देने आदि बातों का उल्लेख किया है। 'लोक-

---

1. अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु - पृ. 59

परलोक दोनों सुधारने का सतत प्रयास मनुष्य करता है और मोक्ष-प्राप्ति उसका अंतिम उद्देश्य होता है।'[1] रामचरितमानस तथा अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु के अयोध्याकाण्ड में दशरथ मरण प्रसंग में शवस्नान, अर्थीसज्जा, तिलांजलि और दसगात्र विधान के उल्लेख अधिक मात्रा में दिखाई पडते हैं। लोक तथा वेदों में बताई गई विधि से राजा की देह को स्नान कराके परम पवित्र विमान बनाया। मानस में यों वर्णित है कि

'चंदन अगर भार बहु आए। अमित अनेक सुगंध सुपाए।।
सरजु तीर रचि चिता बनाई। जनु सुरपुर सोपान सुहाई।।
ऐहि विधि दाह क्रिया सब कीन्ही। विधिवत् न्हाइ तिलांजुलि दीन्ही।।
सोधि सुमृति सब बेद पुराना। कीन्ह भरत दसगात विधाना।।'[2]

चन्दन और अगर के तथा और भी अनेकों प्रकार के कपूर, गुगुल, केसर आदि सुगन्धित द्रव्यों के बहुत से बोझ आये। सरयू तट पर सुन्दर चिता भी सजायी। इस प्रकार दाहक्रिया की गयी और सबने विधिपूर्वक स्नान करके तिलाञ्जली दी। फिर वेद, स्मृति और पुराण सबका मत निश्चित करके उसके अनुसार भरत जी ने पिता का दशगात्र-विधान किया। इसके बाद गहने, कपडे, अन्न, पृथ्वी, धेनु मकान आदि भूदेव ब्राह्मण को दान में दिया। दान देने की यह प्रवृत्ति आज भी लोकसमाज में विद्यमान है। सामान्य लोग भी अपनी मेहनत की कमाई से कुछ न कुछ अवश्य दान देते हैं। इससे मृतक की आत्मा को मोक्ष मिलेगा। ऐसा विश्वास भी लोक में प्रचलित था।

अध्यात्मरामायणम् में एषुत्तच्छन ने अन्त्येष्टि संस्कार का विस्तृत वर्णन किया है।

---

1. भारतीय सांस्कृतिक प्रतीक कोश शोभानाथ पाठक - पृ. 333
2. मानस 1/169/2, 3

'तातशरीरमेण्णत्तोणितन्निलतिन्नादरपूर्वमेड्डुत्तु नीराडिच्चु

दिव्यांबराभरणलेपनङ्ङळाल् सर्वांगमेल्लामलङ्करिच्चीड़िनान्।।'[1]

(अर्थात् तेल की नाव में से पिताजी के शरीर को बाहर निकालकर स्नान कराके महँगे, रेशमी वस्त्रों से, विभिन्न अलंकारों से और सुगन्धद्रव्यों से अंग-प्रत्यंग को विभूषित किया।)

इसके अलावा राम ने सुग्रीव द्वारा बालि का मृतक कर्म भी करवाया था। अध्यात्मरामायणम् में देखिए

'सुग्रीवनोडरुळ्चेय्तानन्तरंमग्रजपुत्रनांमंगदन तन्नेयुम

मुन्निट्टु संस्कारादिकर्मङ्ङळेपुण्याहपर्यन्तमहन्तचेरक्नी।।'[2]

(अर्थात् पिण्ड डालनेवले अंगद के ज़रिए पुण्यजल छिडकाकर नहाने तक के बालि का दाह-संस्कार विधि-विधान के अनुसार करना है।)

इसके अलावा संपाति द्वारा जटायु का मृतकर्म, विभीषण द्वारा रावण का दाह संस्कार भी किया गया। मरते समय विधिपूर्वक अनुष्ठान न किया गया तो मृतक की आत्मा को मुक्ति नहीं मिलती। ऐसा विश्वास लोकजनता के बीच प्रचलित है। इसलिए इस प्रकार के क्रियाकर्म विभिन्न जातियों में विभिन्न प्रकार किये जाते हैं। इसप्रकार अन्त्येष्टि संस्कार का लोक में महत्वपूर्ण स्थान है।

वस्तुतः जन्म, विवाह, अन्त्येष्टि से लोक में प्रचलित सामाजिक संस्कारों का एक विस्तृत परिचय तुलसी तथा एषुत्तच्छन ने दिया है। आज की प्रदूषणयुक्त हलचल भरी

---

1. अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु - पृ. 156

यांत्रिक ज़िन्दगी में आंशिक रूप से इन संस्कारों पर सोचना-समझना एवं जीवन में उतारना मानव मंगल केलिए आवश्यक है। अतः अपने अतीत के आलोक में अपनी सांस्कृतिक थाती को परखकर उसमें बताए गए उच्चादर्शों, सुसंस्कारों को अमल में लाएँ, यही आज की आवश्यकता है। इस परिप्रेक्ष्य में इन संस्कारों से लोकसमाज को सुसंस्कृत बनाकर सँवारने का प्रयास तुलसी तथा एषुत्तच्छन ने किया।

लोकसंस्कृति में विश्वासों, मूढ़ाग्रहों, आदि का भी महत्वपूर्ण स्थान है। समाज में इन विश्वासों के आधार पर जीवन बितानेवाले लोग हैं। भारतीय संस्कृति के एक अभिन्न अंग के रूप में लोकविश्वासों को माना जाता है। लोकविश्वास लोकजनता को अपनी परंपरा के प्रति जागरूक कराकर अस्तित्वबोध को जगाता है। जनता अपने जीवन के महान् मूल्यों के रूप में इन विश्वासों को मानती है।

लोकविश्वास

लोकविश्वास लोक का वह विश्वास है जो किसी जनपद में लोकमान्य होकर लोकप्रचलित रहता है। लोकजीवन में इसका महत्वपूर्ण स्थान है। लोकविश्वासों के संदर्भ में उल्लेखनीय बात यह है कि इनसे लोकसमुदाय का मानसिक, सामाजिक, नैतिक, व्यावहारिक और प्राकृतिक कोई भी क्षेत्र अछूता नहीं रहा है। इन विश्वासों में जीवन का हर दृष्टि से सूक्ष्म और गहन अनुभव प्राप्त होता है। ये लोकविश्वास यहाँ के मानव जीवन के सूक्ष्म निरीक्षण त्रुटियों और अनुभवजन्य धाराओं का परिणाम हैं और इसी कारण उनमें सत्य का अंश अवश्य होता है। 'लोकविश्वास विश्व के प्रत्येक लोकमानस तथा वाणी में अनायास आ जाते हैं। इनके मूल में मनुष्य के अन्तःकरण में अन्तर्निहित धारणाएँ होती हैं जो समयानुकूल न होकर अविकसित या विषमतापूर्ण परिस्थिति में जन्म लेती हैं। अतः

लोकविश्वास शुभाशुभ शब्दों या वाक्यों की जो परंपरा समाज में दिखाई देती है वह यथार्थ न होकर भी शाश्वत है।'[1] लोकमानस में प्रतिष्ठित ये विश्वास, (जिन्हें सामान्यतः अन्धविश्वास कहा जाता है) और मूढाग्रह लोकसाहित्य में विशेषतः लोककथाओं में भी व्यक्त हुए हैं। स्वप्न द्वारा सभी घटनाओं की सूचना शुभ शकुनों द्वारा भावी संकेत, अपशकुन वर्णन, परंपरागत मान्यताएं भाग्यवाद, जादू-टोना, ज्योतिष विचार आदि इन्हीं लोकविश्वासों के अन्तंगत आनेवाले तत्व हैं। परिवर्तन चक्र के साथ ये शुभाशुभ संकेत विश्वास के रूप में आज भी विश्व के हर समाज में व्याप्त हैं। वैज्ञानिक प्रगति के बराबर होते रहने पर भी लोकविश्वासों का समूल नष्ट होना संभव नहीं हो पाया है।

रामचरितमानस एवं अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में लोकविश्वास

लोकसंस्कृति का अभिन्न तत्व लोकविश्वास साहित्य का भी विषय है। रामायण महाभारत जैसे हमारे महान् ग्रन्थों में भी इसका उल्लेख है, तुलसीदास तथा एषुत्तच्छन इन लोकविश्वासों को उदाहरण सहित मानस तथा अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में व्यक्त करते हैं। स्वप्न विचार, शुभ या मंगलकारी शकुन, अशुभ या अमंगलकारी शकुन आदि अनेक प्रसंग हम देख सकते हैं। अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु की अपेक्षा रामचरितमानस में इन तत्वों का बहुत मात्रा में उल्लेख है। इसके अलावा अनेक कथानक रूढ़ियों का चित्रण भी देखा जा सकता है।

स्वप्न विचार

लोगों की ऐसी धारणा है कि स्वप्न में जो वस्तु देखी जाती है, उससे शुभ और अशुभ का अनुमान सरलता से लगाया जा सकता है। 'विभिन्न प्रकार के स्वप्नों से संबन्धित

---

1. लोकविश्वास डॉ. धर्मवीर भारती शब्दकोश

विभिन्न विश्वास लोकसमाज में प्रचलित एवं सर्वमान्य रहे हैं। इस दृष्टि से कतिपय स्वप्न और उनके फल का उल्लेख है।'[1] स्वप्न में रोना आनन्द और हर्ष की प्राप्ति का सूचक है तथा विवाह एवं उत्सव का देखना किसी दुःखद घटना का सूचक है। 'ब्राह्म मुहूर्त में देखा गया स्वप्न प्रायः सच्चा होता है।'[2] इन स्वप्नों की यथार्थता पर लोगों का अटूट विश्वास है। रामचरितमानस में स्वप्न के संबन्ध में अनेक लोकविश्वासों का वर्णन किया है। मानस में मंथरा की कपटवाणी से सम्मोहित कैकेयी को भी अमंगल और अशुभ के लक्षणों की सूचना दुःस्वप्न और दाहिनी आँख के फड़कने के द्वारा मिलती है।

'सुनु मंथरा बात फुरि तोरी। दाहिनी आँख नित फरकइ मोरी।।
दिन प्रति देखउँ राति कुसपने। कहउँ न तोहि मोह बस अपने।।'[3]

ग्रहों का अरिष्टता, दुःस्वप्न के परिणाम, शकुन अपशकुन में मानस के सभी पात्र आस्था रखते हैं। ये स्वप्न लोकमान्यता के अनुसार भविष्य की शुभ-अशुभ घटनाओं का पूर्वभास देते हैं। चित्रकूट में सीता के अनाभरण मलिन वेश में सासों को स्वप्न में देखना परब्रह्म के नर रूप राम को भी अमंगल का सूचक प्रतीत होता है। उस स्वप्न के प्रभाव को मिटाने केलिए वे शिव पूजा का अनुष्ठान, अरिष्ट के निवारण केलिए रुद्र का जप, रुद्राभिषेक दान, ब्राह्मण भोजन आदि कराते हैं। ये विश्वास आज भी लोकपरंपरा में विद्यमान हैं। भविष्य की सूचना देनेवाली कथानक रूढ़ियों में भी स्वप्नों का स्थान है। चित्रकूट में सीता जी अपनी सास को अत्यंत दुःखी और अशुभ रूप में स्वप्न में देखती है।

---

1. हिन्दी भक्तिसाहित्य में लोकतत्व डॉ. रवीन्द्र भ्रमर पृ. 247
2. लोकसंस्कृति की रूपरेखा कृष्णदेव उपाध्याय पृ. 141
3. रामचरितमानस - 2/19/3

'सकल मलिन मन दीन दुखारी। देखीं सासु आन अनुहारी।।'[1]

कालान्तर में भरत आगमन के उपरान्त यह सूचना मिलती है कि उनके पिता दशरथ स्वर्गवासी हुए। इसी प्रकार जबसे अयोध्या में अनर्थ प्रारंभ हुआ, तभी से भरत अनेक दुःस्वप्न भी देखते थे। जैसे

'देखहिं राति भयानक सपना। जागि करहिं कटु कोटि कल्पना।।'[2]

ये भयानक स्वप्न किसी भयंकर घटना की सूचना देते हैं और शीघ्र ही भरत को उन सब अप्रिय घटनाओं का पता चलता है।

त्रिजटा नामक राक्षसी ने ऐसा ही सपना देखा था, जिससे रावण का नाश ही हो गया था। उनके स्वप्न भविष्य की घटनाओं तथा उनके परिणामों की सूचना देनेवाले हैं। जैसे

'सपने बानर लंका जारी। जातुधान सेना सब मारी।।
खर आरूढ़ नग्न दससीसा। मुंडित सिर खंडित भुज बीसा।'
इहि बिधि सो दच्छिन दिसि जाई लंका मनहुँ बिभीषन पाई।।
नगर फिरी रघुबीर दोहाई। तब प्रभु सीता बोलि पठाई।।'[3]

यहाँ गदहे पर चढ़कर रावण का दक्षिण दिशा की ओर जाना उसकी मृत्यु की सूचना देता है। त्रिजटा को स्वप्न में जैसा दिखाई दिया, बाद में ठीक उसी प्रकार की घटनाएँ घटीं। इससे लोकविश्वास का समर्थन तो हुआ ही, राक्षसियों का सीता के प्रति

---

1. रामचरितमानस 2/225/3
2. वही 2/156/3
3. मानस 5/10/2,3

अप्रिय व्यवहार भी रुक गया। अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में एषुत्तच्छन ने भी त्रिजटा के स्वप्न का वर्णन किया है। जैसे

'अखिलजगदधिपनभिरामनांरामनुमैरावतोपरिलक्ष्मणवीरनुं।
शरनिकरपरिपतनदहनकणजालेन शंकाविहीनंदहिप्पिच्चु लंकयुं।
रणशिरसिदशमुखनेनिग्रहिच्चश्रमं राक्षसराज्यंविभीषणनुं नल्की।
महिषियेयुमष्किनोडुमडियिल्वच्चादराल् मानिच्चुचेन्नयोध्या पुरंमेविनान्।
कुलिशधररिपुदशमुखन्नग्नरूपियाय्गोमयामायमहाह्रदं तन्निले।
तिलरसवुमुडल्मुषुवनलिविनोडणिञ्ञुडन् धृत्वानळदमाल्यनिजमूर्धनि
निजसहजसचिवसुतसैन्यसमेतनाय् निर्मग्ननाकण्डुविस्मयंतेडिनान्
रजनिचरकुलपतिविभीषणन्भक्तनाय् रामपादाब्जवुंसेविच्चुमेविनान्।।'[1]

(अर्थात् राम-लक्ष्मण ने ऐरावत पर बैठकर बाणाग्नि से लंका जलाकर, रावण का भी वध करके विभीषण को राजा बनाकर सीता के साथ अयोध्या जाकर सुखपूर्वक जीवन बिताया। रावण नंगे होकर, शरीर पर तेल लगाकर, सिर पर एक खसखस माला पहनकर बन्धुजनों के साथ गोबर से भरे हुए एक बडे भँवर में डूब गया। विभीषण ने राम का भक्त बनकर लंका के शासन का शाश्वत कार्य किया।)

यहाँ त्रिजटा के स्वप्न में रावण की भयानक मृत्यु की ओर इशारा है। बाद में यह सत्य साबित होता है। राम की विजय भी दिखाई जाती है। इतना ही नहीं रात के पूर्व पहर में रावण ने भी एक सपना देखा। इसका चित्रण अध्यात्मरामायण में यों किया है

---

1. अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु - पृ. 337

'कपिकळकुलवरनवेटियाशु चेल्लुंमुंपे कण्डितुरात्रियिल् स्वप्नं दशानन्

रघुजननतिलकवचनेनरात्रौवरुं कश्चिल्कपिवरन् कामरूपान्वितन्

कृपयोडोरुकृमिसदृशसूक्ष्मशरीरनाय् कृल्स्नंपुरवरमन्वीष्यनिश्चलं

तरुनिकस्वरशिरसिवन्नीरुन्नादराल् तारमकळ्तन्नेयुं कण्डुरामोदांत

अखिल मवळोडुबत! परञ्ञडयाळवुमाशुकोडुत्तुडनाश्वसिप्पिच्चुपों।'[1]

रात के पूर्वयाम में रावण ऐसा सपना देखा था कि श्रीराम की आज्ञा के अनुसार एक वानर कृश देह धारण करके लंका में प्रवेश करता है और शिंशिपा वृक्ष पर बैठकर सीता देवी को श्रीराम का सन्देश बताकर लौट जाता है।

इस प्रकार लोकजीवन में स्वप्न का स्थान ऊँचा है। क्योंकि स्वप्न भविष्य की अनेक घटनाओं की सूचना दे जाता है। लोकसमाज इन स्वप्नों पर विश्वास करके दुःस्वप्नों के निवारण केलिए पूजा, जाप आदि करता है। आज यह प्रवृत्ति विश्वव्यापी दृष्टिगोचर होती है। विज्ञान के इस आधुनिक युग में भी अधिकांश मनुष्यों का विश्वास इन स्वप्नों के शुभाशुभ होने में पाया जाता है। रामचरितमानस तथा अध्यात्मरामायणम् में अनेक विश्वासों में स्वप्न भी एक प्रमुख स्थान अदा करता है। तुलसी तथा एषुत्तच्छन इस दृष्टि से भी सफल रहे। इन्होंने स्वप्न को मात्र स्वप्न ही नहीं माना है, बल्कि उसे जीवन को प्रभावित करनेवाली घटना का स्थान दिया है।

शकुन-अपशकुन

नाना प्रकार के लोकप्रचलित विश्वासों पर आधारित शकुन अपशकुन विचार की पद्धति लोकजीवन की अपनी वस्तु है। 'इनके अनेक लोकप्रचलित माध्यम हैं, जिनमें

---

1. अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु - पृ. 329

वशु-पक्षी, जीव-जन्तु से लेकर अंगों का फडकना और प्राकृतिक सामाजिक घटनाओं तथा व्यवहारों का होना भी सम्मिलित है।'[1] पानी का भरा घडा, दूध और दही का, स्त्री का बायां और पुरुष का दाहिना अंग फडकना, काग का बोलना, नीलकंठ को देखना, हाथी देखना आदि शुभ शकुन माने जाते हैं तो बिल्ली का रास्ता काटना, बिल्ली तथा कुत्ते का रोना, विधवा, बाँझ आदि को देखना, शुभ कार्य केलिए जाते समय छींकना, छिपकली का गिरना आदि अपशकुन माने गए हैं। ये लोकविश्वास भारतीय लोकजीवन में आदिमकाल से ही चले आ रहे हैं, जिनका उपयोग व्यावहारिक शुभाशुभ निर्णय और शकुन विचार के अर्न्तगत फलित ज्योतिष में भी हुआ है। लोकसमाज में विभिन्न अवसरों पर शुभाशुभ शकुनों का उपस्थित होना कार्य निष्पत्ति की दृष्टि से पर्याप्त महत्व रखनेवाला है। 'गोस्वामी के अनुसार, इनका निर्माण (शकुन) ब्रह्मा ने स्वयं ही किया है और ये मनुष्य को उसके कार्यों के फल से अवगत कराने केलिए कुशल दूत हैं।'[2]

रामचरितमानस एवं अध्यात्मारामायण में तत्कालीन सामाजिक जीवन में प्रतिष्ठित परंपरागत शुभाशुभ शकुन संबन्धी लोकविश्वास विस्तारपूर्वक प्रतिबिंबित हुआ है। राजा दशरथ जिस समय बारात सजाकर जनकपुर प्रस्थान करते हैं तो अनेक प्रकार के शुभ शकुन होने लगते हैं। यहाँ तुलसी ने सभी मांगलिक शकुनों को एकत्रित कर दिया है।

चारा चाषु बाम दिसि लोइ। मनहुँ सकल मंगल कहि देई।।
दाहिन काग सुखेत सुहावा। नकुल दरस सब कहूँ पावा।
सानुकूल वह त्रिविध बयारी। सघट सबाल आव बर नारी।।'[3]

---

1. तुलसीदास की लोकतात्विक संरचना - डॉ. गयासिंह - पृ. 62
2. मानस का हंस अमृतलाल नागर पृ. 260-61
3. मानस 1/302/1, 2

इतना ही नहीं बार-बार लोमडी दिखाई दे जाती है। बछडों को दूध पिलाती हुई गायें, हरिनों की टोली का घूमकर दाहिनी ओर आना' ये सब मंगलों को देनेवाले हैं। इतना ही नहीं

'छेमकरी कह छेम बिसेषी। श्यामा बाम सुतरु पर देखी।।

सनमुख आयउ दधि अरु मीना। कर पुस्तक दुइ बिप्र प्रबीना।।"[1]

यहाँ सभी मंगलमय, कल्याणमय, और मनोवांछित फल देनेवाले शकुन देखे जा सकते हैं।

श्रीरामचन्द्र जी के राज्याभिषेक की सुहावनी खबर सुनते ही अवध भर में बधावे बजने लगे। इस समय श्रीरामचन्द्रजी और सीताजी के शरीर में शुभ शकुन सूचित हुए

'राम-सीय तन सगुन जनाए। फरकहिं मंगल अंग सुहाए।"[2]

यह मंगल अंग फड़कना लोकजीवन में व्यापक रूप से दिखाई पडनेवाली एक प्रमुख प्रवृत्ति है।

सामान्य लोक का यह विश्वास रहा है कि बायीं ओर छींकना अच्छा शकुन होता है। भरत का राम से मिलने केलिए चित्रकूट आते समय गुह बायीं ओर छींकता है इससे यही ध्वनित है कि भरत का आगमन राम केलिए हितकारी है न कि आपत्तिजनव मानस में कहा गया है।

'एतना कहत छींक भई बाँए। कहउ सुगनिअन्ह खेत सुहाए।'[3]

1. मानस 1/302/4
2. वही 2/6/2
3. वही 2/191/2

यहाँ बायीं ओर छींक होना तथा लहराते हुए खेत शुभदायक हैं। उस समय एक वृद्ध ने यह फल निकाला है कि भरत श्रीराम को मनाकर घर वापस ले जाने केलिए आ रहे हैं, लडने केलिए नहीं। तब वहाँ उपस्थित सभी व्यक्ति वृद्ध की इस बात को समझकर रुक गये।

उत्तरकाण्ड में भरत को होनेवाले शुभ शकुनों का वर्णन है। इस समय राम के लौटने का विश्वास दिखाया गया है। जैसे-

'भरत नयन भुज दच्छिथ फरकत बारहिं बार।
जानि सगुन मन हरष अति लगे करन बिचार।'[1]

यहाँ दाहिनी आंख और दाहिनी भुजा के बार बार फडकना शुभ सूचक माना जाता है। इस प्रकार मानस में तुलसी ने अनेक शुभ सूचक शकुनों का उल्लेख किया है। अध्यात्मरामायणम् में एषुत्तच्छन ने भी शुभ-सूचक शकुन का उल्लेख किया है। सीता दर्शन केलिए लंका में जानेवाले हनुमान को अनेक शुभ शकुन हुए।

'जनकनरपतिवरमकळ्क्कुंदशास्यनुं चेम्मेविरिच्चितु वामभागंतुलों।
जनकनरपतिदुहितृवरसुदक्षांगवुं।'[2]

शुभसूचक सीताजी का बाया अंग तथा श्रीरामजी का दाहिना अंग फडकता है। लेकिन रावण के बायें अंग का फडकना उनके नाश की सूचना देता है।

इतना ही नहीं रावण से युद्ध करने केलिए अपनी सेना को तैयार करके रहनेवाले श्रीरामचन्द्रजी के दाहिने अंग फडकते हैं। यों कहा है कि

---

1. मानस 7/11
2. अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु पृ. 327

'दक्षिणनेत्रस्फुरणवुमुण्डुमे लक्षणमेल्लां नमुक्कु जयप्रद।'[1]

(अर्थात् दाहिने अंगों का फडकना विजय की सूचना देता है।)

मानस तथा अध्यात्मरामायणम् में शुभ अर्थात् मंगलकारी शकुन का वर्णन करने के साथ ही अमंगलकारी याने अपशकुन का वर्णन भी मिलता है।

अपशकुन

भारतीय कथा काव्यों में जिस प्रकार किसी भावी घटना के मांगलिक रूप को मूर्त करने केलिए शकुन वर्णन की रूढ़ि का पालन किया गया ठीक उसी प्रकार भावी अमंगलों के संकेत के रूप में अपशकुनों का भी वर्णन किया गया है। लोकमानस में अपशकुनों से संबद्ध विभिन्न प्रकार के विश्वास दिखाई पडते हैं। ननिहाल में स्थित भरत को यद्यपि राम के वनवास और दशरथ के स्वर्गवास की सूचना नहीं है तथापि अपशकुनों के कारण वह दुर्घटना के प्रति आशंकित हो उठते हैं। मानस एवं अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में इसका वर्णन प्रचुर मात्रा में है। मानस में यो कहा है कि

'अनरथु अवध अरंभेउ जब तें। कुसगुन होहिं भरत कहुँ तब तें।।'[2]

व्याकुल होकर नगर में प्रवेश करते समय अपशकुन होने लगे। कौए बुरी तरह बैठकर बुरी तरह से काँव-काँव कर रहे हैं। यह अपशकुन संबन्धी एक प्रमुख विश्वास है, जो आज भी देखा जा सकता है। इतना ही नहीं मानस में यों कहा है

'खर सिआर बोलहिं प्रतिकूला। सुनि-सुनि होइ भरत मन सूला।।

श्रीहत सर सरिता बन बागा। नगरू बिसेषि भयावनु लागा।

---

1. अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु - पृ. 375
2. मानस 2/166/3

खग मृग हय जाहिं न जोए राम वियोग कुरोग बिगोए।

नगर नारि नर निपट दुखारी। मनहुँ सबन्हि सब संपति हारी।।'[1]

यहाँ गदहे और सियार के विपरीत बोलना, तालाब,नदी, वन, बगीचे आदि का शोभाहीन होना, सभी लोगों को दुःखी देखना आदि अमंगलसूचक है।

एषुत्तच्छन ने अध्यात्मरामायणम् में भी इसका उल्लेख किया है जैसे

'संतापमोड्डुमयोध्यापुरिपुक्कु संतोषवर्जितं शब्दहीनं तथा

भ्रष्टलक्ष्मीकंजनोलबोधवर्जितं दृष्टवाविगतोत्सवं राज्यमेतिदं।'[2]

(अर्थात् आनन्दविहीन, नीरवता से युक्त, ऐश्वर्यहीन चहल-पहल रहित, उत्सवरहित, राज्य को देखकर भरत सोचने लगा कि आखिर यहाँ क्या हो गया है। इस प्रकार भरत ने राजमहल में प्रवेश किया, जहाँ पर राजा के अस्तित्व का कोई भी लक्षण नहीं या और जिसकी शोभ पूर्णतः नष्ट हो चुकी थी।)

एषुत्तच्छन ने यहाँ पर नीरवता से युक्त, ऐश्वर्यहीन आनन्दविहीन, चहलपहल रहित, उत्सवरहित राज्य का जो वर्णन किया है वह दशरथ की मृत्यु से शून्य अयोध्या की ओर संकेत करता है। यहाँ पर मृत्यु के अपशकुन का वर्णन बडे ही प्रभावपूर्ण ढंग से एषुत्तच्छन ने प्रस्तुत किया है। शोभारहित अयोध्यनगरी भरत के मन केलिए दुःख देनेवाली थी।

रामचरितमानस में देखा जा सकता है कि रावण के युद्ध केलिए निकलते वक्त अनेक (असंख्य) अपशकुन होने लगे। यह तो बाद में उनके बिनाश का कारण भी बना। यों कहा है कि

---

1. मानस 2/157/4
2. अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु पृ. 149

'अति गर्व गनइ न सगुन असगुन स्रवहिं अयुध हाथ ते।
भट गिरत रथ ते बाजि गज चिक्करत भाजहिं साथ ते।।
गोमायु गीध कराल खर रव स्वान बोलहिं अति घने।
जनु कालदूत उलूक बोलहिं बचन परम भयावने।।'[1]

यहाँ हथियार का हाथों से गिरना, योद्धा का रथ से गिर पडना, घोडे, हाथी का साथ छोडकर चिंघाडते हुए भाग जाना, स्यार, गीध, कौए और गदहे है शब्द करना, बहुत अधिक कुत्ते का बोलना, उल्लू का भयानक शब्द आदि अमंगलकारी या अशुभ माने जाते हैं। विनाश याने ये सब रावण की मृत्यु के सूचक हैं।

इस प्रकार रामचरितमानस में अध्यात्मरामायणम् की अपेक्षा बहुत सारे ऐंसे उदाहरण हैं, जो लोकजीवन या समाज में प्रचलित हैं। रामचरितमानस तथा अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु जैसे लोकतत्व-प्रधान काव्य में इस लोकविश्वास का इतने अधिक स्थानों पर प्रयोग इस अभिप्राय की लोकप्रियता सिद्ध करता है। आज भी लोग इन विश्वासों के आधार पर जीते हैं। इसे वे कभी छोडते नहीं। क्योंकि वे इसे लोकहितकारी तत्व के रूप में मानते हैं।

कथानक रूढ़ियाँ

लोकमानव परंपरागत रूढ़ियों, लोकविश्वासों एवं अन्धपरंपराओं पर अखण्ड आस्था रखता है। उनका समस्त जीवन इन रूढ़ियों और अन्धविश्वासों से घिरा हुआ है। लोककथाओं में इन विभिन्न रूढ़ियों और विश्वासों का वर्णन पाया जाता है। संसार के समस्त मानवों की मंगलकामना ही इन लोककथाओं का एकमात्र उद्देश्य रहा है। यह भीषण संकट एवं जटिल समस्याओं को सुलझाने में जन-सामान्य को सहायता प्रदान करता है।

---

1. मानस 6/छंद

लोकविश्वास के अंतर्गत कथानक रूढ़ियों का स्थान उल्लेखनीय है। रामचरितमानस तथा अध्यात्मरामायणम् में ऐसी अनेक कथानक रूढ़ियाँ मिलती हैं। जिनका असर लोक जीवन तथा लोकजनता पर पडता है।

आकाशवाणी

लोकविश्वास के अनुसार आकाशवाणी का अर्थ देववाणी है। अर्थात् वह अलौकिक आवाज़ जो आकाश में अपने आप गूँज गई हो और जिसके आदर्शों या संकेतों के प्रति कोई अविश्वास न किया जा सके। 'अलौकिक प्राणियों द्वारा कथागत पात्र को अवश्य भावी घटना से सचेत करने अथवा किसी अज्ञात रहस्य को अवगत कराने और जटिल परिस्थिति को सुलझाने केलिए आकाशवाणी की विधि का प्रयोग भारतीय कथाओं में एक प्रचलित रूढ़ि के रूप में प्रचुरता से हुआ है।'[1] रामचरितमानस में रहस्योद्घाटन करने, सचेत करने, भविष्य की घटनाओं की ओर संकेत करने केलिए आकाशवाणी का प्रयोग हुआ है। बल्कि अध्यात्मरामायणम् में यह नहीं है। रामचरितमानस में मनु-शतरूपा के तप के समय यह आकाशवाणी हुई

'मागु मागु बरु नभबानी। परम गंभीर कृपामृत सानी।।'[2]

यहाँ मनु-शतरूपा सहस्रों वर्षों तक तपस्या करते हैं, भगवान् उनसे प्रार्थना करते हैं और आकाशवाणी होती है कि वे जो वर चाहें, माँग लें।

गंगा पार करते समय सीता के मनौती करने पर गंगा से उत्पन्न होनेवाली वाणी लोकमस्तिष्क को गहराई से स्पर्श करती है। और इसकी उपज लोक से ही अधिक संबन्ध रखती है।

---

1. तुलसी काव्य की लोकतात्विक संरचना डॉ. गयासिंह पृ. 125
2. मानस 1/144/3

'सुनु रघुवीर प्रिया वैदेही। तब प्रभाउ जग बिडिद न के ही।।

लोकप होहिं बिलोकत तोरें। तोहि सेवहिं सब सिधि कर जोरे।।'[1]

इसी प्रकार भरत सदल बल चित्रकूट आते देखकर लक्ष्मण ऐसा सोचते हैं कि भरत राम को मारने का निश्चय करके आते हैं। तभी वास्तविकता का उद्घाटन करने के निमित्त आकाशवाणी होती है।

'अनुचित उचित काजु किछु होऊ। समुझि करिअ भल कह सब कोऊ।।

सहसा करि पाछें पछिताहीं। कहहिं बेद बुधते बुध नाही।।'[2]

इसके अलावा सुर, मुनि, गन्धर्व, गो-तनु घाटी धरती और ब्रह्मा सब मिलकर भगवान से अवतार लेने केलिए प्रार्थना करते हैं और प्रसन्न होते हैं। तब आकाशवाणी होती है

"गगनगिरा गंभीर भइ हरनि सोक संदेह।

जति डरपहु मुनि सिद्ध सुरेसा। तुम्हहि लागि धरिहउँ नर बेसा।।[3]

कथानक रूढ़ि की दृष्टि से यह उदाहरण अत्यंत महत्वपूर्ण है। इससे आगे घटित होनेवाले संपूर्ण कथानक को गति मिली है। ब्राह्मणगण इस आकाशवाणी के कारण ही राजा को अपराधी ठहराकर उसे अभिशाप देते हैं और कालान्तर में वह रावण के रूप में जन्म लेता है। इस रहस्य का उद्घाटन भी हुआ है। लोकजनता इस कथानक रूढ़ी पर विश्वास करती है।

---

1. मानस 2/102/3
2. वही 2/230/2
3. वही 1/186

फलादि के द्वारा पुत्र-जन्म

प्राचीनकाल से ही लोक में ऐसा विश्वास प्रचलित है कि जिसको संतान प्राप्ति न होती है, उसे विविध प्रकार के उपायों से याने पूजा अनुष्ठान, व्रत, आदि से पुत्र की प्राप्ति होती है। भारतीय कथाकाव्यों में फलों के अतिरिक्त कुछ विशिष्ट प्रकार के भोजन में दवा के सेवन अथवा मंत्र के प्रयोग से भी संतान प्राप्ति के उल्लेख मिलते हैं। अवध के राजा दशरथ के मन में बडी ग्लानि हुई कि उसके पुत्र नहीं है। उन्होंने गुरु वशिष्ठ के कहने के अनुसार पुत्र प्राप्ति केलिए यज्ञ करने का निश्चय किया। मानस में यों कहा गया है कि

'सृंगी रिषिहि बसिष्ठ बोलावा। पुत्रकाम सुभ जग्य करावा।।
भगति सहित मुनि आहुति दीन्हें। प्रगटे अग्नि चरू कर लीन्हें।'[1]

अध्यात्मरामायणम् में भी इसका उल्लेख है। जैसे

'ऋश्यशृंगनाल्चेय्यप्पेट्टोराहुतियाले विश्वदेवतागणं तृप्तमायतुनेरं।
हेमपात्रस्थमायपायसत्तोडुंकूडि होमकुण्डत्तिल्निन्नु पोङ्ङिनान्वहिन्देवन्।'[2]

अर्थात् सृगी, ऋषि के द्वारा पुत्रकामेष्टि यज्ञ चलाया गया। मुनि के भक्तिसहित आहुतियाँ देने पर आग्निदेव हाथ में हविष्यान्न लिए प्रकट हुए। इस प्रकार उत्पन्न होने के कारण संतान में विशिष्ट गुणों का समावेश भी कराया जाता है। इससे यह स्पष्ट है कि संतान संबन्धी ये रूढ़ि लोककथाओं की अत्यंत प्राचीन एवं लोकप्रिय रूढ़ि है। आज भी लोग पुत्र प्राप्ति केलिए देवी-देवता से प्रार्थना, पूजा-अर्चना आदि करते है। यह केवल एक विश्वास मात्र नहीं। आज इस प्रकार की प्रवृत्तियों से लोगों को अच्छा फल भी मिल जाता है। इसमें वे अधिक विश्वास भी करते हैं।

---

1. मानस 1/188/3
2. अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु - पृ. 25

पत्थर का जीवित हो उठना (शाप-अभिशाप)

यह लोक से संबन्धित एक रूढ़ी है। यह रूढ़ी लोकविश्वास और लोककथाओं में प्रयुक्त है। गौतम ऋषि की स्त्री अहल्या शापवश पत्थर बनती है। अहल्या के इस पत्थर रूप को विश्वामित्र ने राम को दिखाया। अहल्या गौतम ऋषि के शाप के फलस्वरूप पत्थर हो गई थी। उसके आश्रम का वर्णन तुलसीदास इस प्रकार करते हैं

"आश्रम एक दीख मग माहीं। खग मृग जीव जन्तु तहँ नाही।"[1]

इस आश्रम के वर्णन से गौतम ऋषि के शाप की भयंकरता दिखाई गई है। इस अहल्या उद्धार की कथा का आधार लोक में निर्धारित हुआ। अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में एषुत्तच्छन ने इसके शाप आदि की विस्तृत व्याख्या है। देखिए

'शिलारूपवुंकैकोण्डुनीरामपादाब्जंध्यानिच्चिविटेवसिक्कणं।
नीहारातपवायुवर्षादिकळुंसहिच्चाहारादिकळेतुंकूडातेदिवारात्रं।
इङ्ङनेपलादिव्यवत्सरंकषियुम्पोळिङ्ङेषुन्नुळ्ळुंरामदेवनुमनुजनुं।
श्रीरामपादांभोजस्पर्शमुण्डायिङ्ङनाळ् तीरुंनिन्दुरितङ्ङळेल्लामरिञ्ञालुं।'[2]

(यहाँ गौतम का शाप है कि तू निराहार दिन-रात तप करती हुई, धूप-वायु वर्षा को सहन करती हुई, हृदयस्थ राम का एकाग्र मन से ध्यान करती हुई मेरे आश्रम में शिला बन कर रहना। अनेक संवत्सरों के बाद श्रीरामचन्द्रजी के पाद स्पर्श से मुक्ति मिल जायेगी।)

---

1. मानस 1/209/6
2. अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु - पृ. 45

श्रीराम के चरणों का स्पर्श पाते ही वह अहल्या बन गयी। मानस में यों कहा है कि

'परसत पद पावन सोक नसावन प्रकट भई तप पुंज सही।'[1]

इस प्रकार शाप के कारण पत्थर बननेवाली अहल्या श्रीराम के पाद-स्पर्श से पुनः जीवित हो उठती है। प्राचीनकाल से ही लेकर लोक में ऐसा तत्व देखा जा सकता है। इन रूढ़ियाँ को उनकी पूर्णता के साथ लोकजनता स्वीकार करती है।

रूपपरिवर्तन

लोककथाओं में रूप-परिवर्तन के उल्लेख मिलते हैं। यह एक लोकाश्रित कथानक रूढ़ी है। इसका मूल लोकविश्वासों तथा प्राचीन परंपरा में देखा जा सकता है। मानस तथा अध्यात्मरामायणम् में रूप-परिवर्तन के बहुत सारे प्रसंग हैं जिनका सीधा संबन्ध लोक से है। मानस में यों देखा जाता है कि प्रतापभानु राजा की कथा के प्रसंग में कपटी मुनि राजा के पुरोहित का तथा उसका मित्र कालकेतु निशाचर सूकर का रूप धारण कर नृप को भुलवा देता है। इस प्रकार नारदमोह के प्रसंग में नारद को विष्णु ने वानर का रूप दिया है। राम के सहायार्थ देवगण रीछ और वानरों का रूप भी धारण करते हैं। मारीच हिरन का, कालनेमी ऋषि का रूप धारण करता है। मानस में कालनेमी का चित्रण यों है।

'राच्छस कपट वेष तहं सोहा।'[2]

अध्यात्मरामायण में मारीच को हिरण के रूप में देखा जा सकता है। जैसे

'पोन्निरमायुळ्ळोरु मृगवेषवुंपूण्डान्।'[3]

---

1. मानस 1/छंद
2. रामचरितमानस 6/56/2
3. अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु - पृ. 222

(मारीच ने सुन्दर हिरण का रूप धारण किया) सीता-हरण के सन्दर्भ में रावण ने भी अपना रूप बदलकर एक सन्यासी का वेष धारण किया। यों कहा गया है कि

'सून बीच दसकंधर देखा। आवा निकट जती के बेषा।।'[1]

अध्यात्मरामायणम् में भी इसका चित्रण है।

'जटयुंवल्कलवुं धरिच्चुसन्यासियायुटजांगणेवन्नु निन्नितुदशास्यनुम्।'[2]

(जटा तथा वल्कल को धारण करके सन्यासी बनकर रावण प्रकट हुआ।) यहाँ रूप बदलकर कन्याओं का हरण करनेवाले लोगों का चित्रण प्राचीनकाल से ही हमारी संस्कृति में देखा जा सकता है। यह प्रवृत्ति कुछ परिष्कृत होकर हमारे समाज में आज भी विद्यमान है।

पशु-पक्षी द्वारा रक्षा या सहायता

लोकसंस्कृति में प्राचीनकाल से ही पशु या पक्षी के द्वारा युद्ध में जीतना, राजकुमारी को प्राप्त करना आदि की प्रवृत्ति देखी जा सकती है। संदेशवाहक के रूप में भी ऐसी सहायता होती है। मानस तथा अध्यात्मरामायण में इस अभिप्राय का प्रयोग किंचित् बदले हुए रूप में है। इन ग्रन्थों में बन्दर, भालू और गिद्ध जैसे पशु-पक्षी ही राम के प्रधान सहायक हैं। सीता-हरण के समय 'जटायु' नाम का गिद्ध रावण से युद्ध करके सीता को छुडाने के प्रयास में घायल भी हो जाता है। जटायु का भाई संपाति भी वानरों को सीता का समाचार देकर उनकी पूरी सहायता करता है। संपाति ने कहा कि लंका में रावण रहता है और अशोकवाटिका में सीता रहती हैं। यों कहा है कि

---

1. मानस 3/27/4
2. अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु - पृ. 226

'बूढ़ भयउँ न त करतेउँ कथुक सहाय तुम्हार।।'[1]

सीता-हरण के पश्चात् सुग्रीव, हनुमान अंगद, नल और नील जैसे बन्दर एवं जाम्बवान जैसे भालू राम के प्रधान सहायक बनते हैं। समुद्र पार करने केलिए पुल बाँधने समय इन वानरों की सहायता अत्यंत महत्वपूर्ण है। देखिए

'अति उतंगगिरि पादप लीलहिं लोहिं उठाइ।
अनि देहिं नल नीलहि रचहिं ते सेतु बनाइ।।
सैल बिसाल अनि कपि देहीं। कंदुक इव नल नील ते लेहीं।।'[2]

इन्हीं की सहायता से राम रावण को मारकर सीता को प्राप्त करने में सफल होते हैं।

अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में भी इन प्रसंगों का उल्लेख एषुत्तच्छन ने किया है। इस ग्रन्थ की प्रमुख विशेषता यह है कि ग्रन्थ के आरंभ से लेकर अंत तक एक पक्षी का उल्लेख है। अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु शैली में लिखा है। यहाँ कथा कहने का कार्य चिडिया करती है। देखिए

'श्रीरामनामं पाडिवन्न पैंकिळिप्पेण्णे। श्रीरामचरितं नी चोल्लीडुमडियाते।'[3]

(श्रीराम चरित गाने केलिए एषुत्तच्छन चिडिया (शुक) से कहते हैं।)

इस प्रकार लोकसंस्कृति में लोक कथाओं, काव्यों आदि के केन्द्र में किसी न किसी प्रकार पशु पक्षी द्वारा रक्षा या सहायता की कथा मिलती है।

---

1. मानस 4/28
2. वही 6/1/1
3. अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु - पृ. 2

राक्षस द्वारा कन्याहरण

किसी राक्षस द्वारा कन्या का हरण भारतीय साहित्य का अत्यंत प्रचलित अभिप्राय है। परंपरागत सभी कथा साहित्य में ऐसे अनेक प्रसंग हैं। रामायण में रावण द्वारा सीताहरण की प्रवृत्ति का उल्लेख है। यह लोकजनता कभी भूलती नहीं। मानस में तुलसी ने इसका वर्णन अत्यंत सुन्दर एवं लोकप्रिय ढंग से किया। राक्षसराज रावण अपना रूप बदलकर एक सन्यासी के रूप में आकर सीता का हरण करता है। जैसे

'क्रोधवंत तब रावन लीन्हसि रथ बैठाइ।
चला गगनपथ आतुर भयँ रथ हाँकि न जाइ।।'[1]

अध्यात्मरामायणम् में इसका भीषण या सशक्त रूप देखा जा सकता है। देखिए

'तन्नुडेरूपंनेरेकाट्टिनान् महागिरिसन्निभं दशाननं विरातिमहाभुजं।
अञ्जनशैलाकारं काणाय्नेरमुळ्ळिलञ्जसाभयप्पेट्टु वनदेवतमारुं
राघवपत्नियेयुंतेरतिलेडुत्तुवच्चाकाश मार्गेशीघ्रंपोयितु दशास्यनुं।'[2]

(अर्थात् क्रोध में रावण अपने दस मुख, बीस भुजाओं के साथ भयंकर रूप दिखाकर सीता को रथ पर बैठा लिया और बडी उतावली के साथ आकाशमार्ग से चला।)

बाद में राम उसका वध करके सीता का उद्धार भी करते हैं। यह कथा विश्व में प्रसिद्ध है।

1. मानस 3/28
2. अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु - पृ. 228

जादू का युद्ध

लोककथाओं का यह जादू का युद्ध लोकजनता केलिए बहुत ही प्रिय है। प्राचीनकाल में राक्षस लोग अपनी मायावी शक्ति के द्वारा बहुत ही अत्याचार करके युद्धों में जीतते थे। वे राजकन्याओं का हरण करके राजा लोगों से युद्ध भी करते थे। अपनी मायावी शक्ति पर अहंकार करते थे। रामचरितमानस तथा अध्यात्मरामायणम् में इसके अनेक रूप दिखाई देते है। यहाँ राम तथा राक्षसों के युद्ध में इस अभिप्राय के प्रयोग की काफ़ी गुंजाइश थी, फलतः तुलसी तथा एषुत्तच्छन ने यहाँ इसका खुलकर प्रयोग किया है। खरदूषण के साथ होनेवाले युद्ध में अकेले राम चौदह हज़ार राक्षसों की विशाल सेना से लडे और उसे समाप्त कर दिया।

युद्ध वर्णन में अनेक लोक कल्पनाएँ सम्मिलित हैं। कुंभकर्ण अपने आकार प्रकार के अनुसार युद्ध करते हैं। लोकमानस इन विचित्र कथा-तत्वों की उद्भावना बडी रुचि से करता है। उसके कहने-सुनने से भी उसको आनन्द प्राप्त होता है। कुंभकर्ण के युद्धवर्णन में तुलसी ने उसके पर्वताकार रूप की प्रधानता रखी है।

सर्वत्र शारीरिक आकार के आधार पर ही युद्ध-वर्णन नही हुआ है। लोग जादू के बल पर भी विश्वास करते थे। मेघनाद का युद्ध इस प्रकार था। वह माया रथ पर चढकर युद्ध केलिए चला।

'मेघनाद मायामय रथ चढ़ि गयउ अकास।
गर्जउ अट्टहास भई कपि कटकहि त्रास।।'[1]

UNIVERSITY LIBRARY * COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY * Cochin - 682 022

1. रामचरितमानस 6/72

राम-रावण युद्ध प्रसंग में मेघनाद और रावण दोनों ही अजेय होने केलिए यज्ञ करते हैं, लेकिन उनका यह कार्य सफल नहीं होता, वानर उसे नष्ट-भ्रष्ट कर देते हैं। तब वे माया-युद्ध करते हैं। मानस में इसका वर्णन यों किया है कि

देखोसि आवत पबि सम बाना। तुरत भयउ खल अंतरधाना।।

बिबिध बेष धरि करइ लेराई। कबहुँक प्रगट कबहुँ दुरि जाइ।।"[1]

अनेक रूप धारण करके कभी प्रकट होकर कभी छिपकर युद्ध करनेवाले मेघनाद का चित्रण अध्यात्मरामायणम् में भी एषुत्तच्छन ने किया है मायासीता को भी वे बनाते हैं :-

'तल्क्षणेचिंतिच्चु कल्पिच्चु लंकयिल्पुक्कुमायासीतये तेरिल्वच्चुडन्।'[2]

(माया सीता को रथ पर बिठाकर युद्ध करने केलिए आये मेघनाद निश्चयतः मायावी शक्तियों की प्रतिमूर्ति हैं।)

आकाश में उडकर वहीं से राम की सेना पर मेघनाद आंगारों की वर्षा करता है, पृथ्वी से जल की धाराएँ फूट पडती हैं और पिशाच पिशाचिनियों की चिल्लाहट है। खून, बाल, हड्डियों की वर्षा होती है। सभी व्याकुल हो जाते हैं। इस प्रकार मायावी युद्ध की भीषणता देखी जा सकती है।

राम-रावण युद्ध में लोकतत्व की प्रधानता है। एक तो रावण के सिरों का बार-बार काटना और बार-बार नए हो जाना जैसे

'काटतही पुनि भए नबीने। राम बहोरि भुजा सिर छीने।।

प्रभु बहु बार बाहु सिर हुए। कटत झटिति पुनि नूतन भए।।"[3]

---

1. रामचरितमानस 6/75/6
2. अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु पृ. 455
3. मानस 6/91/6

अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में देखिए

'रात्रिञ्चरन्टेतलयोन्नुत्तुडन् धात्रियिलिट्टानतुनेरमप्पोष़े

कूडेमुळच्चुकाणायितवन्तल कूडे मुऱिच्चुकळञ्ञु रण्डामतुं

इङ्ङने नूऱायिरं तलपोकिलुमेङ्ङुं कुऱविल्लावन्तलपत्तिनुं।'[1]

(अर्थात् रामबाण द्वारा रावण के सिर तथा भुजाएँ को काटने पर बढ़ते ही गये। एक के स्थान पर अनेक भुजाओं और सिरों का उत्पन्न होना निश्चय ही विश्वास लोकतत्व से युक्त है।)

रावण के नाभि कुंड में अमृत के वास की बात है। रावण को किसी भी प्रकार मरता न देखकर विभीषण इस रहस्य का उद्घाटन राम से करते हैं

'नाभिकुंडपियूष बस याकें। नाथ जिअत रावनु बल ताकें।'[2]

इस प्रकार शरीर के किसी अंग विशेष में प्राणों के निवास की बात मिलती है जो अनेक लोककथाओं का प्रसिद्ध अभिप्राय है।

इस प्रकार का युद्ध लोकसंस्कृति में देखा जा सकता है। लोक केलिए यह आकर्षक भी है।

इस प्रकार मानस तथा अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में ऐसी अनेक कथानक रूढ़ियाँ हैं जो लोकजीवन से जुडी हुई हैं। अलौकिक व्यक्ति अथवा देवताओं के द्वारा दुष्कर कार्य के संपादन में सहायता, मायावी युद्ध, मृत व्यक्ति का जीवित हो उठना, राक्षस

---

1. अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु पृ. 481
2. मानस 6/101/3

जातियों का विघ्न या कोई प्रपंच रचना जैसी अनेक रूढ़ियाँ मानस तथा अध्यात्मरामायणम् में देखी जा सकती हैं। ये रूढ़ियाँ लोकाश्रित तथा लोककल्पित दोनों ही प्रकार की हैं।

टोने के आधार पर केवट के मन में यह विश्वास जमा हुआ है कि राम की पद-रज में जड़ वस्तुओं को स्त्री बनाने का गुण समाया हुआ है। 'टोने में यह भ्रम आवश्यक रूप से रहता है कि एक बार जिस चमत्कारिक गुण का आरोप किसी वस्तु के साथ हो जाता है, वह सदैव रहता है।'[1] इसलिए केवट कहता है कि

'चरन कमल रज कहँ सबु कहई। मानुष करनी मूरि कछु अहई।।'[2]

केवट यहाँ अहल्या उद्धार की परिस्थितियों को भूलकर उस गुण का साधारणीकृत रूप देता है। इस मनोभूमि में ही अनेक विश्वासों का जन्म होता है। इस प्रकार केवट की यह मनोभूमि लोक के अत्यंत निकट है।

भारतीय सामाजिक आचार विचारों में लोकविश्वास चिर-पुरातन युगों से चले आ रहे हैं। प्रत्येक मानव में आगामी जीवन के विषय में जानने की उत्कट अभिलाषा शुरू से ही रही है। विश्वासों से शकुन और अपशकुन और फिर भविष्यवाणियों का रूप भी बनता गया। आज भी इसकी स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं आया है। विशृंखलित वातावरण में जीने केलिए लोग इन विश्वासों को स्वीकार करते हैं। सभ्य-असभ्य, ग्राम्य-नगर सभी समाजों में इन लोकविश्वासों का महत्वपूर्ण स्थान है। लोकविश्वासों में जो कथानक रूढियाँ हैं, यह प्राचीन न रहकर आज भी लोगों के मन में जीवित हैं। इनमें जो मंगलकारी तत्व हैं, लोग उसे स्वीकारते हैं। हित-अहित की भावना लोगों के मन में जागृत हो उठती है। इन

---

1. मानस में लोकवार्ता चन्द्रभान - पृ. 115
2. मानस 2/99/2

लोककथानक रूढ़ियों के माध्यम से हम सत् असत् का विवेचन करके जीवन बिताते हैं। सुखपूर्ण जीवन बिताने केलिए इनमें जो सन्देश है, वह अत्यंत महत्वपूर्ण है। तुलसीदास तथा एषुत्तच्छन ने मानस तथा अध्यात्मरामायणम् में ऐसे अनेक विश्वासों, रूढियों का उल्लेख किया है, जो सदा लोक केलिए मंगलकारी एवं लाभप्रदायक है।

लोकधर्म स्वरूप एवं महत्व

भारतीय जन जीवन में जितने भी प्रकार के विश्वास प्रचलित हैं, उन सबको किसी न किसी रूप में धर्म के अन्तर्गत खींच लिया गया है। महाभारत में धर्म की व्याख्या इस प्रकार है कि 'धरति धारयति व लोक इति धर्मः, अर्थात् जो लोक को धारण करे, वह धर्म है। 'लोकधर्म लोक का वह धर्म है, जो सभी जनों को मान्य होता है। दूसरे शब्दों में वे धार्मिक मूल्य, पद्धतियाँ, रीतियाँ आदि जो लोकहित में सभी केलिए होने के कारण सभी के धारण करने योग्य बनती हैं तथा लोकधर्म की संज्ञा प्राप्त करती हैं।'[1] लोकसमाज लोकधर्म से बंधा होता है। लोकधर्म में संस्कृति के सभी तत्व संचरित होते हैं। लोकव्यवहार और आस्था से लोकधर्म बनता है। 'समूह में एक ही जगह पर सुख, शान्ति और सहयोग से निवास, एक-दूसरे के सुख-दुःख में भागीदारी, मानवता और मानवीय गुणों की सच्ची उपलब्धि, आपसी प्रेम, देवतत्व की प्राप्ति, उज्वल चारित्रिक गुणों का विकास लोकधर्म की बुनियादी शर्तें हैं।'[2] इस तरह लोकप्रचलित रीति-रिवाज़ों, आचारों, और मान्यताओं के भी धर्म के अन्तर्गत ग्रहण किया जाता है।

---

1. साहित्य अमृत जुलाई 2002 पृ. 18
2. लोकसंस्कृति वसन्त निर्गुण पृ. 74

लोकधर्म के अर्न्तगत आनेवाले लोकाचारों में लोकमंगल या लोकहित की भावना निहित है। शिष्ट और सुशिक्षित समाज के लोगों में उतनी अधिक नैतिकता नहीं होती जितनी लोकजनता में होती है। असत्य, हिंसा भ्रष्टाचार, अन्याय, बेईमानी, ईर्ष्या-द्वेष आदि समस्त बुराइयाँ शिष्ट और सभ्य समाज में ही अधिक दिखाई पडती हैं। लोकजनता धर्मभीरु होने के कारण इन समस्त बुराइयों को अधर्म और अन्याय मानकर उनसे डरती हैं। लोकधर्म मानव समाज में समानता, सहयोग और प्रेम का वातावरण उत्पन्न करते हैं। मध्यकाल के मानवतावादी एवं लोकप्रिय भक्ति आन्दोलन में लोकधर्म के नैतिक मूल्यों पर सबसे अधिक बल दिया गया है, और उन्हीं को धर्म का प्रमुख अंग माना गया है। सत्य, अहिंसा, करुणा, प्रेम, क्षमा, क्रोध, परोपकार, विवेकशीलता आदि गुण लोकहितकारी हैं। रामचरितमानस तथा अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में इन मूल्यों का महत्वपूर्ण स्थान है। तुलसीदास तथा एषुत्तच्छन ने इन ग्रन्थों के माध्यम से भारतीयता को याने लोकतत्वों को दिखाया है। लोकमंगलकारी इन तत्वों के माध्यम से लोगों के मन में जनकल्याणकारी भावना जगाना इनका लक्ष्य है। यह लोकसंस्कृति का आध्यात्मिक रूप है।

रामचरितमानस एवं अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में लोकधर्म

रामचरितमानस तथा अध्यात्मरामायणम् में तुलसी तथा एषुत्तच्छन ने लोकधर्म के दो पक्षों का चित्रण किया है। एक तो लोकाचारों से संबन्धित है तो दूसरा लोकविश्वासों पर आधारित धार्मिक भावना है। इन दोनों में मंगलकारी अनेक तत्व हैं।

लोकाचार :- सत्य, अहिंसा, परोपकार, आदि लोकाचार धर्म के विभिन्न अंग है।

सत्य :- लोकजीवन में सत्य का स्थान ऊँचा है। सत्यवचन लोकमंगल का साधक है। रामचरितमानस में इसके अनेक प्रसंग हैं। कैकेयी-कोपभवन-प्रसंग में दशरथ द्वारा इस बात का स्पष्ट उल्लेख हमें मिल जाता है। जैसे

'नहिं असत्य सम पातक पुंजा। गिरि सम होहिं कि कोटिक गुंजा।।

सत्यमूल सब सुकृत सुहाए। बेद पुरान बिदित मनु गाए।'[1]

अर्थात् असत्य के समान पापों का समूह भी नहीं है। क्या करोडों घुँघचियाँ मिलकर भी कहीं पहाड के समान हो सकती हैं? 'सत्य' ही समस्त उत्तम सुकृतों (पुण्यों) की जड है। यह बात वेद पुराणों में प्रसिद्ध है और मनुजी ने भी यही कहा है।

श्रीराम ने प्रेम विचलित सुमंत्र को धर्म का मर्म समझाते हुए कहा

'धरमु न दूसर सत्य समाना। आगम निगम पुरान बखाना।।'[2]

सत्य की जड़ इस प्रसंग में देखी जा सकती है। संसार में सत्य की इस महत्ता का वर्णन करने में तुलसी सफल बन जाते हैं। सत्य को तुलसी सर्वश्रेष्ठ मानते थे। मानस के अयोध्याकाण्ड में बनगमन के अवसर पर वशिष्ठ द्वारा इसका उल्लेख भी किया गया है। तुलसी राम को सत्य की आकार मूर्ति मानते थे। राम के बारे में वशिष्ठ का कथन है कि-

'सत्यसंध पालक श्रुति सेतू। राम जनम जग मंगल हेतू।।'[3]

यहाँ राम सत्यप्रतिज्ञ हैं और वेद की मर्यादा के रक्षक हैं। श्रीराम जी का अवतार जगत् के कल्याण केलिए ही हुआ है।

अध्यात्मरामायणम् में भी एषुत्तच्छन ने सत्य की महत्ता इस प्रकार दिखायी है-

'सत्यत्तेलंघिक्कायिल्लोरुनाळुंञान् चित्तेविषादमुण्डाय्कतुमूलं।'[4]

---

1. मानस 2/27/3
2. वही 2/94/3
3. वही 2/253/2
4. अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु पृ. 83

(यहाँ राम सत्य स्वरूप है। किसी भी काल में सत्य का निषेध नहीं करना) यहाँ सत्य के प्रति राम का दृढ़ विश्वास देखा जा सकता है।

अहिंसा :- अहिंसा को भारतीय संस्कृति में परम धर्म माना गया है 'अहिंसा परमोधर्मः।' रामचरितमानस में तुलसी ने कहा है

"परम धर्म श्रुति बिदित अहिंसा। पर निन्दा सम अधम गरीसा।।"[1]

वेदों में अहिंसा को परम धर्म माना है। और पर निंदा को पाप भी कहा है।

परोपकार :- अहिंसा का दूसरा पक्ष है परोपकार। यों कहा है कि 'परोपकाराय सतांविभूतयः।' अर्थात् सज्जनों की संपत्ति दूसरों के उपकार केलिए ही होती है। तुलीदास ने भी परोपकार का महत्वपूर्ण स्थान माना है। उनके अनुसार

'परहित सरिस धर्म नहिं भाई। पर पीड़ा सम नहिं अधमाई।।'[2]

दूसरों की भलाई के समान कोई धर्म तथा दूसरों को दुःख पहुँचाने के समान पाप भी नहीं है। राम का जन्म ही परहित अथवा लोकहितं केलिए हुआ है। वे लोकाराधना में ही सारा जीवन व्यतीत करती हैं। इसलिए जब रावण-वध के बाद रामराज्य की स्थापना करते हैं तो उसमें सभी व्यक्तियों में परोपकार की भावना देखी जा सकती है। जैसे

'सब उदार सब पर उपकारी। बिप्र चरन सेवक नर नारी।।'[3]

यहाँ सभी नर-नारियों की परोपकारी भावना देखी जा सकती है। लोक जनता के बीच यह एकता का भाव सभ्य-समाज में ज्यादा देखा जा सकता है।

---

1. मानस 7/120/11
2. वही 7/40/1
3. वही 7/21/4

अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में एषुत्तच्छन ने इसका यों वर्णन किया है कि

'इन्द्रियनिग्रहमेल्लावनुमुण्डु निंदयुमिल्लपरस्परमाकुमे ।।'[1]

(अर्थात् लोग दूसरों की निन्दा न करके सुख पूर्व जीवन बिताते हैं।)

अहंकार :- मनुष्य के अहंकार या दंभ को छोडने से लोककल्याण संभव है। अहंकार के कारण मनुष्य अधर्मी और अत्याचारी बनते हैं। इसलिए सभ्य या असभ्य सभी मनुष्य केलिए अहंकार को छोडकर विनम्र होना आवश्यक है। तुलसी ने कलियुग वर्णन करते हुए बताया है कि दम्भ के कारण लोग विविध पंथ की स्थापना करते हैं

'दंभिन्ह निज मति कल्पि करि प्रगट किए बहु पंथ।।'[1]

दंभियों ने अपनी बुद्धि से कल्पना करके बहुत से पंथ प्रकट कर दिये। हमारे समाज की एक बहुत बिडंबना यहाँ तुलसी ने व्यक्त की है। जैसे-

'मारग सोइ जा कहूँ जोइ भावा। पंडित सोइ जो गाल बजावा।।
मिथ्यारंभ दंभ रत जोई। ता कहुँ संत कहइ सब कोई।।
सोइ सयान जो परधन हारी। जो कर दंभ सो बड आचारी।।'[2]

डींग मारनेवाले को पंडित बनाना, मिथ्या आरंभ करता है या दंभ में रत व्यक्ति को संत कहना, दूसरे का धन हरण करनेवाले को बुद्धिमान बनना आदि, अत्याचारों को हटाने से ही लोकमंगल संभव है। दंभ का दूसरा नाम अहंकार है। तुलसी के अनुसार

'अहंकार अति दुखद डमरुआ। दंभ कपट मद मानने हरुआ।।'[3]

---

1. अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु पृ. 512
2. मानस 7/97
3. वही 7/97/2, 3

अहंकार दुःख देनेवाला डमरू है। दम्भ, कपट, मद और मान नहरुआ (नसोंका) रोग है।

अध्यात्मरामायणम् में एषुत्तच्छन ने कहा कि

'नित्यमायुळ्ळोरविद्यासमुत्भवस्तुवायुळ्ळोन्नहंकारमोर्कनी'[1]

(अर्थात् अहंकार मिथ्यारूपी अविद्या से जन्म लेता है।)

एषुत्तच्छन के मत में अहंकार व्यक्ति को ईश्वर से दूर रखने का साधन है। तभी तो उन्होंने अहंकार को मिथ्यारूपी एवं अविद्या से जन्म लेता हुआ बताया है। विद्या मनुष्य को भगवान की ओर प्रेरित करती है तो अविद्या या माया उसे भगवान से दूर रखती है।

शुचिता या पवित्रता को भी संस्कृति में महत्वपूर्ण बताया है। रामकथा के प्रसंग में राम की जनकपुर, वन यात्रा और भरत की चित्रकूट यात्रा के प्रसंग में यह उल्लेखनीय है। जैसे

'सकल सौच करि राम नहावा। सुचि सुजान बट छीर मंगावा।'[2]

शौच के सब कार्य करके पवित्र और सुजान श्रीरामचन्द्रजी ने स्नान किया। यहाँ शौच या निर्मलता की श्रेष्ठता यह है कि इससे हमारे शारीरिक और मानसिक तनाव दूर हो जाते हैं। इस प्रकार निर्लोभ भावना, विवेकशीलता, समभावना आदि का भी उल्लेख मानस में तुलसी ने किया है। ये धर्म लोकाचारों की परंपरा को स्वीकार करते हुए जनता को लोककल्याण की भावना प्रदान करते हैं।

---

1. अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु पृ. 313
2. मानस 2/93/2

इसके अलावा तुलसी ने लोक तथा वेद शब्द का एक साथ प्रयोग करके दोनों को समान महत्व दिया है। मानस में इसके अनेक प्रसंग भी हैं। जैसे

'हनि कुसंग सुसंगति लाहू। लोकहू बेद बिदित सब काहू।।'[1]

अर्थात् बुरी संगति से हानि और अच्छी संगति से लाभ होता है। यह बात लोक और बेद में है और सभी लोग इसको जानते हैं। संसार में सुखपूर्ण जीवन बिताने केलिए सहज ज्ञान एवं शाश्वत शांति की ज़रूरत है, इसके अतिरिक्त क्रोध, वैर, ईर्ष्या आदि से दूर रहना भी आवश्यक है। मानस में यों कहा है कि

'काम क्रोध मद लोभ, परायन। निर्दय कपटी कुटिल मलायन।।
बयरु अकारन सब काहू सों। जो कर हित अनहित ताहू सो।।'[2]

काम, क्रोध, मद और लोभ, निर्दयता, कुटिलता कपट और पापों का घर होता है। वे भलाई करनेवालों के साथ ही बुराई करते हैं।

एषुत्तच्छन ने भी अध्यात्मरामायणम् में इसका वर्णन किया है। देखिए

'कामक्रोधलोभमोहादिकळ् शत्रुक्कळाकुन्नतंन्नुमरिकनी।'[3]

(काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि को शत्रु मानकर इन सबका त्याग करना चाहिए।)

इस प्रकार के अनेक तत्व मानस एवं अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु को उच्चकोटि तक पहुँचाने में सफल बन जाते हैं।

---

1. मानस 1/6/4
2. रामचरितमानस - 7/38/3
3. अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु - पृ. 109

रामचरितमानस एवं अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में भक्ति

लोकधर्म अथवा मानव धर्म के परिपालन से ही भक्ति की प्राप्ति संभव है, और यही मनुष्य जीवन की सार्थकता है। लोक में भक्ति का स्थान सर्वोत्तम है। क्योंकि सामान्य जनता पढ़ी लिखी नहीं होती, ताकि ज्ञानसंपादन करे या पुस्तकों से ईश्वर को पहचान सके। 'भक्ति चित्त की उस वृत्ति का नाम है, जो मनुष्य को परमात्मा के सन्निकट ले जाती है। वास्तव में भक्ति तो भगवान के प्रति किया जानेवाला प्रेम है, जो पढ़ा लिखा, अनपढ़ सब समान रूप से कर सकता है। इसमें केवल, श्रद्धाभाव की प्रमुखता रहती है, जिससे आम लोग आसानी से अपना सकते हैं। लोक में भक्ति पद्धतियों का महत्व बतानेवाले अनेकानेक संत, साधक, सुकवि और आचार्य हो गए हैं। पुरातनकाल से ही ईश्वरीय भक्ति ने लोकजीवन को इतना प्रभावित किया है कि इसके अलावा जीना निरर्थक माना जाता है। इसका प्रमाण है, कि अनेक भाषाओं के भक्ति साहित्य। संस्कृत में इस साहित्य का अथाह सागर भरा हुआ है। हिन्दी और मलयालम में भी वह असीम एवं अगाध कहा जा सकता है। इस विषय का अमर साहित्य देनेवालों में गोस्वामी तुलसीदास एवं तुंचत्तु रामानुजन् एषुत्तच्छन का अपना विशिष्ट स्थान है। इस दृष्टि से उनेक रामचरितमानस एवं अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु लोकमानस पर गहरा प्रभाव डालते हैं।

भक्तप्रवर तुलसीदास और एषुत्तच्छन जनता के प्रतिनिधि कवि हैं। पहले वे भक्त थे, और बाद में कवि। तुलसीदास तथा एषुत्तच्छन द्वारा प्रतिपादित भक्ति की महती विशेषता यह है कि वह दर्शन की गंभीरता, धर्म की विश्वसनीयता तथा लोकजीवन की आचार-संहिता का सारस्वत प्रतिमान बन गई है। गोस्वामी जी पतित से पतित को भी यथार्थ साधक बना देनेवाला आशावादी संदेश देते हैं। तुलसी का भक्तिमार्ग स्वच्छ जनपथ एवं निरापद राजमार्ग का प्रतीक है जिसमें किसी भी प्रकार की उलझन अथवा दिग्भ्रमित

करने की दुवृत्तियाँ नहीं हैं। इसमें लोकजीवन के अभ्युदय और सौहार्द की स्निग्ध रश्मियाँ आती हैं, जिन्होंने किसी समय देश के विषाक्त वातावरण में पीयूषवर्षण किया था। गोस्वामी जी ने अपनी भक्ति पद्धति में अपने आराध्य केलिए एक नाम चुना और वह था रामनाम। एषुत्तच्छन ने केरलीयों की सांस्कृतिक उन्नति को लक्ष्य करके भक्ति को महत्वपूर्ण स्थान दिया। भारतीय भक्तिमार्ग में सरलता एवं उदारता को स्थापित करने केलिए उन्होंने नितांत परिश्रम किया। तुलसीदास के समान एषुत्तच्छन केलिए दशरथपुत्र राम सबकुछ हैं। इन दोनों कवियों ने बाह्य और आन्तरिक दोनों प्रकार की साधनाओं को भक्ति के साधन माना है।

रामचरितमानस तथा अध्यात्मरामायणम् में भक्ति के क्षेत्र में कोई भेदभाव देखा नहीं जा सकता, सब समान हैं। निषाद, भीलनी, गणिका, व्याध, गिद्ध, आभीर, किरात सभी इसके अधिकारी हैं। भक्तिसूत्र के अनुसार भक्ति का मूल तत्व है ईश्वर के प्रति समर्पण भाव। 'भक्तिःपरानुरक्तिरीशरे'। यह समर्पण भाव सामान्य लोक की संपत्ति कहा जा सकता है। रामचरितमानस तथा अध्यात्मरामायणम् के सभी पात्रों के चरित्र में आत्मसमर्पण का भाव दिखाई पडता है। जो राम के शत्रु हैं, वे भी मरते समय भगवान के चरणों में अपने को अर्पित कर देते हैं। राम के परम भक्त भरत, लक्ष्मण और हनुमान तो आत्मसमर्पण की प्रतिमूर्ति ही हैं। रावण वध के उपरान्त विभीषण ने राम से निवेदन किया था

'देखि कोस मंदिर संपदा। देहु कृपाल कपिन्ह कहुँ मुदा।
सब बिधि नाथ मोहि अपानइअ। पुनि मोहि सहित अवधपुर जाइअ।।"[1]

---

1. रामचरितमानस - 6/115/3

यहाँ धन, संपत्ति तथा महल तक त्यागकर राम के साथ जाने केलिए तैयार हुए विभीषण की भक्ति में समर्पण का भाव है।

गुह की भक्ति में सरल बल्कि श्रद्धा से युक्त समर्पण का भाव देखा जा सकता है। अध्यात्मरामायणम् में एषुत्तच्छन ने इसका यों चित्रण किया है

'रामागमनमहोत्सवमेत्रयुमामोदमुळ्कोण्डुकेट्टुगहन तदा।

स्वामियायिष्टवयस्यनायुळ्ळोरु रामन्तिरुवडियेकण्डुवन्दिप्पान्।

पक्वमनस्सोडुभक्त्यैवसत्वरं पक्वफलमधुपुष्पादिकळेल्लां।

कैकोण्डुचेन्नुरामाग्रेविनिक्षिप्य भक्त्यैवदण्डनमस्कारवुंचेय्तु।।'[1]

(अर्थात् श्रीराम का आगमन सुनकर निषादराज गुह ने उसे देखकर प्रणाम करने केलिए अत्यधिक आदरपूर्वक शान्त मन से भक्ति के साथ मीठे कन्द शहद, फल आदि लेकर राम का दण्डनमस्कार किया।) यहाँ निषाद की भक्ति में समर्पण मनोभाव पूर्ण रूप से देख पाते हैं।

तुलसीदास तथा एषुत्तच्छन ने नवधाभक्ति का उल्लेख भी किया। शबरी की भक्ति देखकर राम द्वारा नवधा भक्ति का उल्लेख करवाते हैं, जिसका लोकजीवन में अत्यंत महत्व भी है। देखिए

'प्रथम भगति संतन्ह कर संगा। दूसरि रति मम कथा प्रसंगा।।

गुर पद पंकज सेवा तीसरि भगति अमान।

चौथि भगति मम गुन गान करइ कपट तजि गान।।

*   *   *   *   *   *

---

1. अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु पृ. 128

नवम सरल सब सन छलहीना। मम भरोस हिय हर्ष न दीना।

नव महुँ एकउ जिन्ह के होई। नारि पुरुष सचराचर कोई।'[1]

यहाँ संतों का सत्संग, राम-कथा में प्रीति, गुरु चरण की सेवा, निष्कपट रूप से राम कथा का गान, राम-नाम का जय तथा दृढ़विश्वास, इन्द्रियों का निग्रह, शील आदि का होना, सब को राममय देखना, पराये दोषों को न देखकर जो कुछ मिल जाय उसी में संतोष करना ये नवधा भक्ति के महत्वपूर्ण तत्व है। लोकभक्ति का व्यावहारिक पक्ष ही यहाँ पर उभर आया है। यह भक्ति-साधना बहुत ही सहज और सामान्य जनता केलिए सुलभ भी है।

सत्संग से दुष्ट जन भी सज्जन बन जाते हैं। सत्संग का महत्व बताते हुए तुलती ने कहा है

'तात स्वर्ग अपबर्ग सुख धरिअ तुला एक अंग।

मूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लब सतसंग।।'[2]

मतलब यह है कि सत्संग से मिलनेवाले सुख की तुलना करना असंभव है। मानस तथा अध्यात्मरामायणम् में तुलसी एवं एषुत्तच्छन ने राम के प्रति जो भक्ति भाव है या भगवान राम की महत्ता; उनके प्रति श्रद्धा आदि बातों का उल्लेख किया है। अध्यात्मरामायणम् में नारद, वसिष्ठ, वामदेव, लक्ष्मण, वाल्मीकि जैसे लोगों ने बार-बार श्रीराम भक्ति का उल्लेख किया है। भक्ति एषुत्तच्छन का केवल लक्ष्य नहीं, मार्ग भी है। श्रीराम वनगमन के अवसर पर नगरनिवासियों का दुःख देखकर 'वामदेव' नामक तापस राम-सीता-रहस्य बताते हैं।

---

1. रामचरितमानस 3/35
2. वही 5/4

'रामनेचिंन्तिच्चु दुःखियार्कारुमे रामरामेति जापिच्चिनेल्लावरुं

नित्यवुं रामरामेतिजपिक्कुन्न मर्त्यनुमृत्युभयादिकळोन्नुमे

सिद्धिक्कयिल्लतेयल्लाकैवल्यवुं सिद्धिक्कयेवनुमेन्नतु निर्णयम्।'[1]

(अर्थात् परमात्मस्वरूप श्रीराम की याद करके दुःखी न बने। सभी को राम-राम जप करना है। प्रतिदिन राम-नाम का जप करनेवाले मनुष्य को मृत्युबोध भी नहीं आता। इतना ही नहीं, सभी को मुक्ति भी मिल जाती है।)

वास्तव में संसार-सागर के भोग-विलास में डूबनेवाले मनुष्य के दुःख निवारण केलिए भगवान श्रीराम पृथ्वी पर अवतारित हुए। इतना ही नहीं 'वाल्मीकि' भी राम का महत्व बताते हुए कहता है कि

'सर्वलोकङ्ङळुंनिंकल वसिक्कुन्नु सर्वलोकेषुनीयुंवसिच्चीडुन्नु।'[2]

(अर्थात् साक्षात् परमात्म स्वरूप है श्रीराम। तीनों लोक उनमें है या वे तीनों लोकों में वास करते हैं।)

भक्ति के प्रकाश से लोगों को सन्मार्ग की ओर प्रवृत्त करना ही वास्तव में एषुत्तच्छन का उद्देश्य है। तुलसी ने मानस में भी इसका उल्लेख किया गया है। लक्ष्मण-गुह-संवाद में देखते हैं कि गुह से लक्ष्मण कहता है कि मन-वचन और कर्म से श्रीरामजी के चरणों में प्रेम होना यही सर्वश्रेष्ठ पुरुषार्थ या परमार्थ है। यों कहा है

'जासु नाम सुमिरत एक बारा। उतरहिं नर भवसिंधु अपारा।'[3]

---

1. अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु - पृ. 122
2. वही पृ. 137
3. मानस 2/100/2

श्रीरामचन्द्रजी का एक बार नाम स्मरण करते ही मनुष्य अपार भवसागर के पार उतर जाते हैं। इतना ही नहीं राम से वाल्मीकि का कथन है कि

'सोई जानइ जेहि देहु जनाई। जनत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई।।

तुम्हरिहि कृपाँ तुम्हहि रघुनन्दन। जानहि भगत भगत उर चंदन।'[1]

भगवत्कृपा से भक्त भगवान को पहचान सकते हैं। तुलसीदास ने रामकथा को मंगलकारिणी और कलिमलहारिणी बताया है। जैसे

'बिमल कथा हरि पद दायनी। भगति हो सुनि अनपायनी।।'[2]

श्रीराम की कथा सुनना परम पद तक पहुँचने में सहायता देना है। राम के गुण अनंत हैं। लोक में इनका श्रेष्ठ स्थान है। अध्यात्मरामायणम् में हनुमान की भक्ति देखिए

'स्वामिन्! प्रभो। निन्तिरुवडितन्नुटे नामवुंचारु चरित्रवुमुळ्ळनाळ्।

भूमियिल्वाष्वाननुग्रहिच्चीडणं रामनामं केट्टुकोळ्वाननरतं।'[3]

(अर्थात् श्रीराम का चरित अनंत है। यह चरित जब तक संसार में रहेगा, तब तक आपकी पाद सेवा करके भक्ति के साथ जीने की इच्छा है।) यहाँ हनुमान की भक्ति में भगवान के प्रति तल्लीनता एवं श्रद्धा एवं दृढ़ता है। लोकमन सदा भगवान के प्रति तल्लीन रहने केलिए लालायित है। रामकथा सांसारिक बन्धनों को नष्ट करनेवाली और भगवान के चरणों में अनुराग उत्पन्न करनेवाली है। रामनाम का मंत्र अत्यंत फलदायक है। राम मंत्र का अनजाने में उलटा जप करने से रत्नाकर नाम के डाकू वाल्मीकि जैसे महर्षि बन गये। कोई

---

1. रामचरितमानस - 2/126/2
2. मानस 7/51/3
3. अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु - पृ. 510

भी व्यक्ति आसानी से यह साधना संपन्न कर सकता है। भरत नन्दिग्राम में हर्ष विषाद सुख-दुःख, मानापमान एवं भौतिक संग्रहशीलता से विरक्त होकर राम नाम स्मरण में रत है। भरत ने व्यक्तिधर्म का पालन करते हुए लोकधर्म का कल्याणकारी मार्ग प्रशस्त किया है। भरत के चरित्र में रामभक्ति का यह सार्थक रूप मानस तथा अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में प्रतिपादित हुआ है।

तुलसी की भक्ति में साधुमत एवं लोकमत दोनों का समन्वय भी है। चित्रकूट में वसिष्ठ और निषाद का मिलन इसका उत्तम उदाहरण है। यों कहा है 'जानि रामप्रिय दीन्हि असीसा।'[1] यहाँ भक्ति के सामने भेदभाव का कोई स्थान नहीं है। तुलसी की भक्ति में शैव वैष्णव का समन्वय है, दोनों लोकजनता केलिए प्रिय है। भगवान राम लंका प्रस्थान करते समय समुद्रतट पर शिवलिंग की स्थापना करके विधिपूर्वक उसका पूजन करते हैं।

सचमुच तुलसीदास तथा एषुत्तच्छन ने भक्ति के माध्यम से व्यापक मानवतावाद की प्रतिष्ठापना की है। ये दोनों भक्ति को मूल तत्व या सार मानते हैं। तुलसी की भक्ति में लोकसंग्रह का भाव समाहित था जो अत्यंत व्यापक था। मानस तथा अध्यात्मरामायणम् में अद्वैत वेदांतदर्शन का उल्लेख है। 'ब्रह्मसत्यं जगत्मिथ्या' जैसे तत्व जनता नहीं जानती। वह ईश्वर को अपनेलिए सर्वस्व मानकर पूजा करती है। इनके सामने दर्शन का कोई स्थान नहीं। तुलसी तथा एषुत्तच्छन ने विशिष्ट दर्शन और लोकदर्शन का समन्वय भी किया है। लोक की आस्था का प्रमुख आधार लोकदर्शन है और लोकदर्शन ही लोकधर्म और लोकमूल्य का मार्ग प्रशस्त करता है। लोक के परिवर्तन का आधार भी लोकदर्शन है। इस कारण लोकदर्शन लोकजीवन का प्रमुख अंग भी है।

---

1. मानस 2/192/3

इस प्रकार तुलसीदास तथा एषुत्तच्छन की भक्ति भावना उनके लोकनायक होने का सच्चा प्रमाण है। ये दोनों कवि अतीत के ज्ञाता, वर्तमान के पारखी और भविष्य के द्रष्टा थे। इन्होंने अपने युग में सामाजिक सांस्कृतिक, धार्मिक सभी प्रकार के मूल्यों का ह्रास होते हुए देखा था, वे विशेष रूप में इसके प्रति जागरूक थे। इसी कारण इनकी रचनाओं का उद्‌देश्य रामचरितगान के साथ ही साथ मानव कल्याण भी था। इन्होंने व्यक्ति कल्याण के साथ लोकमंगल करनेवाले भक्तिमार्ग को स्वीकार किया। मानस तथा अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु के माध्यम से इन्होंने भक्तिरस का वह साहित्य निर्मित किया, जिसने देश-काल की सीमा को पार करके करोडों लोगों की जीवनधारा को राममय बना दिया। इन्होंने संस्कृति की आध्यात्मिक अनुभूति को रसात्मक वाङ्मय के माध्यम से प्रस्तुत किया, जीवन के मूलभूत प्रश्नों पर गंभीरता से विचार करके सत्य का साक्षात्कार किया, और उसे मंगलकारी बनाया है। आज के व्यस्त, अशांत एवं संघर्षशील वातावरण में भक्ति संजीवनी का काम करती है। इस अवसर पर मानस तथा अध्यात्मरामायणम्, ऐसे अनेक तत्वों को हमारे सामने रखते हैं, जिनसे सुख, संतोष और शांति की त्रिवेणी बहे।

तुलसीदास तथा एषुत्तच्छन सच्चे अर्थों में लोकजीवन के व्याख्याता और कुशल शिल्पी हैं। जिस भक्तिभावना को अपने जीवन का अभिन्न अंग बनाकर इन्होंने अभिव्यंजित किया, उसका तो मूल धरातल लोकजीवन ही है, क्योंकि भक्ति का लोकमंच छोटे-बडे, धनी-निर्धन, शिक्षित-अशिक्षित तथा ग्रामीण-नागरिक आदि का कोई वर्ग-भेद नहीं रखता। भक्ति की सर्वजनग्राह्‌यता भवगंगा की निर्मल धारा है जो लोकमानस से उद्‌भूत होकर सबको रससंसिक्त कर देती है। तुलसी तथा एषुत्तच्छन ने मानस तथा अध्यात्मरामायणम् के माध्यम से लोकजीवन में भक्ति की सफल अभिव्यक्ति की है।

रामचरितमानस तथा अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में धार्मिक सन्दर्भ

लोक में धर्म अथवा धार्मिक अन्धविश्वासों का क्षेत्र बडा व्यापक है। लोकधर्म और लोकविश्वास में व्यापक मानवीय भावनाओं, प्रवृत्तियों तथा अन्तर्वृत्तियों का आधार सदा बना रहता है। इसकी परिधि के अन्तर्गत आदिम प्रकृति प्रतीक पूजकों की वृक्ष, पर्वत आदि की पूजा तथा वैदिक प्रकृति-देवताओं, सूर्य, इन्द्र आदि पर विश्वास से लेकर पौराणिक कर्मकाण्ड, संस्कार और मध्ययुगीन भक्तिपरक श्रद्धा तथा समर्पण के अनेक स्तर एक साथ वर्तमान है। देवी-देवताओं से संबन्धित व तीर्थस्थानों से संबन्धित लोकविश्वास प्राचीनकाल से लोक में प्रचलित है। रामचरितमानस एवं अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में इस प्रकार के लोकविश्वास पर्याप्त मात्रा में दिखाई पडते हैं। श्रीरामचन्द्र जी के वनगमन के समय कौसल्या ने देवी-देवताओं से जो प्रार्थना की है, यह धार्मिक संदर्भ में लोकविश्वास को और सशक्त बनाने में सफल बन गई है। कौसल्या का कहना है कि

'पितु बनदेव मातु बनदेवी। खग मृग चरन सरोरूह सेवी।'[1]

अध्यात्मरामायणम् के अयोध्याकाण्ड में भी कौसल्या देवी-देवताओं से प्रार्थना करती है कि

'सृष्टिकर्तावे! विरिञ्ज। पदमासना। पुष्टदयाब्धे।

* * * * * *

एन्मकनाशु नटक्कुन्ननेरवुं कल्मषं तीर्न्निरुन्नीडुन्न नेरवुं

तन्मति केट्टूर् ङ्ङीडुन्ननेरवुं सम्मोदमार्न्नुरक्षिच्चीडुविन् निङ्ङळ्।'[2]

---

1. रामचरितमानस 2/55/2
2. अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु पृ. 114

(अर्थात् सृष्टिकर्ता, पद्मासनस्थ ब्रह्मा, बडे दयालु, पुरुषोत्तम, महाविष्णु, गौरीकामुक परमशिव महादेव, इन्द्र आदि दिक्पाल, दुःख को दूर करनेवाली भगवती दुर्गे, सृष्टि-स्थिति और संहार करनेवाली चण्डिके! मेरा बेटा जब चलते रहा हो, और अच्छे कर्मों को करते हुए पाप प्रक्षालन के बाद आराम कर रहा हो, उस वक्त और जागृत एवं सुषुप्ति की अवस्था में भी आनन्द के साथ उसकी रक्षा करें।) लोकजीवन में दुःख को हरण करने केलिए देवी देवताओं की प्रार्थना करने की रीति प्राचीनकाल से है। विशेषकर दुःख के अवसर पर। यहाँ राम का वनवास सभी केलिए दुःखदायक है। लेकिन अपने पुत्र की वनयात्रा को सुगम बनाने केलिए कौशल्या का पूजा आदि कार्य आज भी लोकजीवन के हर कोने में दिखाई पडता है।

हर एक ग्राम की एक देवी होती है, जो ग्राम की रक्षा करती है। ग्रामवासी किसी भी शुभकार्य के पहले इनकी उपासना कर किसी कार्य में संलग्न होते हैं। मानस में तुलसी ग्रामदेवी का उल्लेख करते हैं। राम-अभिषेक के समय कौशल्या अन्य देवताओं के पूजन के साथ ग्रामदेवी का पूजन भी उत्सव की सफलता केलिए करती है। जैसे

'पूजीं ग्रामदेबि सुर नागा। कहेउ बहोरि देन बलिभागा।।'[1]

लोकजीवन में गणेश लोकदेवता के रूप में आते हैं। यह देवता सर्वसाधारण जनता के सर्वाधिक लोकप्रिय देवता है। इनकी पूजा प्रत्येक मांगलिक कार्य के प्रारंभ में की जाती है। किसी गृहस्थ के घर में जब कोई भी मांगलिक कार्य पुत्र-जन्म, यज्ञोपवीत, विवाह, आदि होता है तो सबके प्रारंभ में गणेश की पूजा की जाती है। इन्हें विघ्न विदारक कहा गया है। अर्थात् ये समस्त विघ्नों को नष्ट करनेवाले हैं। रामचरितमानस के प्रारंभ में ग्रन्थ की निर्विघ्न समाप्ति केलिए इस देवता की वन्दना की गई है। जैसे

---

1. रामचरितमानस 2/7/3

'वर्णानामर्थसंघानां रसानां छन्दसामपि।

मंगलानां च कर्तारौ वन्दे वाणीविनायकौ।'[1]

यहाँ अक्षरों, अर्थसमूहों, रसों, छन्दों और मंगलों को करनेवाली सरस्वती जी और गणेश जी की वन्दना की है।

अध्यात्मरामायणम् में एषुत्तच्छन ने भी गणेश की स्तुति की है।

'कारणनायगणनायकन् ब्रह्मात्मकन् कारुण्यमूर्ति शिवशक्तिसंभवन् देवन्।

वारणमुखन् ममप्रारब्धविघ्नङ्ङ्ळे वारणं चेय्तीडुवानावोळं वन्दिक्कुन्नेन्।'[2]

(अर्थात् सभी का कारणभूत, गणनायक, ब्रह्मस्वरूप, दयामूर्त, पार्वती परमेश्वर के पुत्र, हाथी के मुख के समान मुखवाले गणेश जी मेरे कर्मफलों से उद्भूत पापों से होनेवाले कर्म बन्धनों को दूर कीजिए।) यहाँ लोकदेवता गणपति का महत्व देखा जा सकता है।

परमशिव को पृथ्वी के आदिदेवता के रूप में मानते हैं। शिव सृजन और संहार, कल्याण और करुणा के देवता हैं। आदिम समूहों में भी शिव को मूल देवता माना गया है। आदिवासियों का बडा या बडका देव शिव ही है। शिव का मूल स्वरूप लोकदेवताओं में भी है। मानस तथा अध्यात्मरामायणम् में राम द्वारा शिव की पूजा देखी जा सकती है। जैसे

'लिंग थापि विधिवत् करि पूजा।'[3]

रामेश्वर में शिवलिंग की स्थापना करके राम ने विधिपूर्वक उसका पूजन किया।

---

1. मानस 1/1
2. अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु पृ. 2
3. मानस 6/2/3

अध्यात्मरामायणम् में इसका चित्रण किया है कि

"इत्थं पडुत्तुतुडङ्डुं विधौरामभद्रनां दाराथिजगदीश्वरन्

व्योमकेशंपरमेश्वरंशंकरं रामेश्वरनेन्ननामवुमरुळ् चेय्तु।[1]

(अर्थात् संसार की पाप-शान्ति केलिए सेतुमुख में एक शिवलिंग की स्थापना करके उसे रामेश्वर नाम दिया।)

इन देवी-देवताओं की अवधारणा लोकजीवन में अत्यंत महत्वपूर्ण है।

तीर्थों का महत्व

भारतीय संस्कृति के अन्तर्गत तीर्थों का महत्वपूर्ण स्थान है। वैदिककाल से ही लोकजनता विशेषकर हिन्दू जनता धार्मिकता प्रधान भावनावाली रही है और उसने परंपरागत रूप से तीर्थ, व्रत, पूजा, उपवास आदि के प्रति धार्मिक आस्था को अन्तस् में निरन्तर विकसित किया है। भारत में काशी, प्रयाग अयोध्या, चित्रकूट, रामेश्वरम् आदि अनेक तीर्थस्थान हैं, जो लोकजनता के विश्वास एवं भक्ति को प्रमुखता देते हैं। तीर्थों का महत्व अनादिकाल से प्रचलित है, जो मानस एवं अध्यात्मरामायणम् में दिखाई पड़ता है। आज भी लोकविश्वास और शास्त्र दोनों इसका समर्थन करते चले आ रहे हैं। 'लोक में गंगा माई, जमुना जी और सरयू मैया के प्रति पूजा तथा बलि के अनेक प्रमाण मिलते हैं। वैदिक पौराणिक मान्यताओं के अनुसार इन्हें विविध देवताओं से संबद्ध किया गया है। इन्हें देशी या माता के समान तारनेवाली, कल्याण करनेवाली और मनोकामनाओं को पूर्ण करनेवाली कहा गया है तथा पाप-ताप हारिणी माना गया है। इनमें पर्व स्नान करने का उल्लेख सभी

---

1. अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु पृ. 400

हिन्दू धर्मग्रन्थों में मिलता है। इसी वैदिक-पौराणिक मान्यता के अनुसार लोक में अनेकानेक पूजाएँ, उत्सव और स्नानादि के कार्यक्रम प्रचलित हैं।'[1] तुलसीदास ने संतों के प्रसंगों में संत समागम को तीर्थराज कहा है।

'सुनि समुझहिं जन मुदित मन मज्जहिं अति अनुराग।
लहहिं चारि फल अछत तनु साधु समाज प्रयाग।'[2]

रामभक्ति गंगा की धारा एवं ब्रह्म विचार सरस्वती है। तीर्थराजा प्रयाग धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष आदि प्रदान करनेवाला है। गंगा पापों को हरनेवाली एवं सरस्वती अज्ञान का नाश करनेवाली है। मंगलों के मूल तीर्थ गंगा में पद पक्षालन करने की प्रवृत्ति भी मानस एवं अध्यात्मरामायणम् में देखी जा सकती है। वनवास के समय सीता-राम-लक्ष्मण गंगा पर पहूँचते हैं। वहाँ गंगा का महत्व और राम का अलौकिकत्व बताया गया है। समस्त कामनाओं को पूर्ण करनेवाली गंगा से सीता अपनी मनोकामना निवेदित करती है।

'मातु मनोरथ पुरअब मोरी।
पति देवर संग कुसल बहोरी। आइ करौं जेहिं पूजा तोरी।'[3]

अध्यात्मरामायणम् में एषुत्तच्छन ने इस लोकाचार का वर्णन किया है।

'गंगे! भगवती! देवी! नमोस्तुते!
ञङ्ङळ वनवासवुंकषिञ्ञादरालिङ्ङुवन्नाल बलिपूजकळ्
नल्कुवन्! रक्षिच्चुकोल्कनीयापत्तुकूडाते दक्षरिवल्लभे गंगे! नमोस्तुते।'[4]

---

1. दि पापुलर रिलीज़न एण्ड फोकलोर ऑफ नार्थन इण्डिया विलियम क्रूक खंड पृ. 35-40
2. मानस 1/2
3. वही 2/102/1, 2
4. अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु - पृ. 133

(अर्थात् गंगा से प्रार्थना करती हुई सीता कहती है कि देवी आपको प्रणाम। शिव के सिर (मौली) पर रहनेवाली मनोहरी! हैमवती! आपको नमस्कार। वनवास करके आते समय आपकेलिए बलि-पूजा आदि देती हूँ। सभी प्रकार की आपत्तियों से तू हमारी रक्षा करती है। शिव की पत्नी आपको प्रणाम।) इस प्रकार गंगा जैसी पवित्र नदियों पर विश्वास करके जीवन चलाने की रीति लोक में दिखाई पडती है।

गंगा में स्नान करके सारी थकावट दूर करते हुए पवित्र जल पीने से मन शुद्ध हो जाता है। लोक में गंगा मनुष्य के पापों को हरण करनेवाली है। आज भी अनेक घरों में 'गंगा जल' रखते हैं। सभी मंगल कर्मों केलिए यह उत्तम है।

गंगा, यमुना और सरस्वती का संगम पर ही 'प्रयाग' का अत्यंत सुशोभित सिंहासन है। अक्षय वट छत्र है, यमुनाजी और गंगाजी की तरंगें उसके चँवर हैं, जिनको देखकर ही दुःख और दरिद्रता नष्ट हो जाती है। पुण्यात्मा, पवित्र साधु उसकी सेवा करते हैं और सब मनोरथ पाते हैं। वेद और पुराण में भी प्रयाग का वर्णन है। प्रयाग के बारे में यों कहा है कि

'को कहि सकइ प्रयाग प्रभाउ। कलुष पुंज कुंजर मृगराऊ।।
अस तीरथपति देखि सुहावा। सुख सागर रघुबर सुखु पावा।।'[1]

इसके साथ ही प्रयाग में त्रिवेणी का वर्णन भी मानस में किया है। राम की कथा मंगल प्रदान करनेवाली सरयू है। गंगा, यमुना, गोमती सभी पवित्र नदियाँ हैं। सरयू नदी में स्नान करने से मनुष्य को सहज ही मुक्ति भी मिलेगी। 'लोकजीवन में विशेषकर अवध अंचल में सरयू और अयोध्या के साथ गंगा तथा काशी की पवित्रता और महानता का विश्वास गंभीरतापूर्वक प्रचलित है। वहाँ लोक में चैत्र की रामनवमी, वैशाखी, पूर्णिमा,

1. मानस 2/105/1

ज्येष्ठ का गंगा दशहरा, कार्तिक स्थान तथा चतुर्मासव्रत, दीपदान, कार्तिकी पूर्णिमा, मकर संक्रान्ति, मौनी अमावस्या, सोमवती अमावस्या, कुंभपर्व आदि पौराणिक पर्वों में गंगा और सरयू स्नान का बडा ही माहात्म्य माना जाता है।'[1] नदियों का लोकजीवन में स्थान इससे मालुम पडता है। इसके अलावा सूर्य-चन्द्र, अग्नि, वरुण आदि देवी-देवताओं का भी लोकजीवन में महत्वपूर्ण स्थान है। साथ ही, वृक्ष, पशु-पक्षी तथा नागदेवता की भी पूजा लोक करता है। स्त्रियां वट वृक्ष की पूजा अखण्ड सौभाग्य केलिए करती हैं। 'लोकविश्वास के अनुसार वट में वासुदेव निवास करते हैं।'[2] वृक्षों में सबसे अधिक महात्म्य 'तुलसी' का है। कार्तिक मास में कार्तिक पूर्णिमा के दिन 'तुलसी' की पूजा विशेष रूप से होती है। कृषिप्रधान देश होने के कारण लोक में 'गाय' माता के रूप में पूजित है।

व्रत एवं त्योहार

भारतवर्ष में अनेक व्रत और त्योहार मनाये जाते हैं, जिनका जन-जीवन से घनिष्ठ संबन्ध है। लोकजीवन में विभिन्न अनुष्ठानों, उत्सवों आदि का महत्व सबसे अधिक है। रामचरितमानस एवं अध्यात्मरामायणम् में उत्सवों का वर्णन रामकेन्द्रित है। राम-जन्म, विवाह, अयोध्या लौटने पर चौराहों, वीथियों और भवनों को सजाना आदि उत्सव की भाँति है। अयोध्या में पुत्र जन्म की खबर सुनकर लोगों को उत्सव की प्रतीति होती है। देखिए

'हरषवंत सब जहँ तहँ नगर नारि नर बृंद'[3]

लोगों का उत्साहभरा वातावरण देखा जा सकता है। ध्वज, पताका और तोरणों से नगर छा गया। राज्याभिषेक केलिए गुरु वसिष्ठ ने संपूर्ण तीर्थों का जल, औषधि, मूल-

1. अवधी का लोकसाहित्य सरोजनी रोहतगी पृ. 558-562
2. लोकसाहित्य गणेशदत्त सारस्वत पृ. 236
3. मानस 1/194

फल और पत्र आदि मांगलिक वस्तुओं को लाने केलिए सुमंत्र से कहा। ये मांगलिक वस्तुएँ किसी त्योहार या मंगल कर्म केलिए आवश्यक हैं। भारतीय जीवन में इसलिए ये वस्तुएँ महत्वपूर्ण बन गयी हैं। चाँवर, मृगचर्म, बहुत प्रकार के वस्त्र, असंख्यों जातियों के ऊनी और रेश्मी कपडे, नाना प्रकार के मणि आदि भी आवश्यक मांगलिक वस्तुएँ हैं। मानस में इसका वर्णन है

'बेद बिदित कहि सकल विधाना। कहेउ रचहु पुर बिबिध बिताना
सफल रसाल पुगफल केरा। रोपहु वीथिन्ह पुर चहुँ फेरा।।
रचहु मंजु मनि चौकें चारू। कहहु बनावन बेगि बजारू।।
पूजहु-गनपति गुर कुलदेवा। सब बिधि करहु भूमिसुर सेवा।
ध्वज पताक तोरन कलस सजहु तुरग रथ नाग।'[1]

अध्यात्मरामायणम् में एषुत्तच्छन ने इसका सुन्दर ढंग से वर्णन किया है, जो सामान्य लोकजीवन को गहराई से स्पर्श करनेवाला है।

'केळक्कनाळेप्पलर्कालेचमयिच्चु चेल्क्कण्णिमाराय कन्यकमारेल्लां
मध्यकक्षयेपतिनारुपेर्निल्क्कणं मत्तागजङ्ङळे पोन्नणियिक्कणं
* * * * * * *
देवालयङ्ङळ्तोरुं बलिपूजयुं दीपावलिकळुं वेणं महोत्सवं।।'[2]

(अर्थात् अलंकारों से युक्त सुन्दरी कन्याओं को कल सबेरे राजमहल के अन्दर तैयार रखना होगा। मदयुक्त हाथियों को सोने से अलंकृत रखना होगा। ऐरावत के वंश में

---

1. मानस 2/5/3, 4
2. अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु पृ. 86

उत्पन्न चार सींगवाले हाथी को राजमहल के आँगन में यथासंभव अलंकारों से युक्त खडा करना होगा। दिव्य रत्न जडे हुए पवित्र तीर्थों के जल से युक्त एक हज़ार सोने के घड़ों को तैयार करना होगा। तीन नये व्याघ्रचर्म, खरीदने होंगे। सोने के दंड से युक्त रत्नों से सुशोभित छतरी, मोतियों के हार से सुशोभित निर्मल वस्त्र, विभिन्न प्रकार की मालाएँ अलंकार ये सब तैयार करने होंगे।)

केरल के मन्दिरों में उत्सव के समय 'तालं'[1] सजाने की रिवाज़ रही है। तालं उठानेवाली कन्याओं को जीवन भर सुमंगली रहने की सिद्धि प्राप्त होगी, ऐसा विश्वास है। नहा-धोकर, नये वस्त्र पहनकर व्रतानुष्ठान के साथ ही कन्याएँ तालं ग्रहण करती है। तालं धान्य की थाली में सुपारी की मंजरी, चावल, तेल की बत्ती, फूल रहेंगे। नवयौवन से युक्त तरुणियाँ कतार बाँधकर तालं हाथ में लेती हुई ईश्वर की मूर्ति के दोनों ओर खडी रहती हैं। उत्सव के समय यही सबसे आकर्षक दृश्य है। अध्यात्मरामायणम् में इसी तालं का उल्लेख है।

मनोकामनाओं की पूर्ति केलिए व्रतों, मनौतियों एवं अनुष्ठानों की आयोजना लोकजीवन में बहुत पुरानी है। कुमारी कन्यायें योग्य वर प्राप्ति केलिए अनेक व्रत रखती हैं। योग्य वर की प्राप्ति केलिए पार्वती की कठोर तपस्या का चित्रण मानस में तुलसी ने किया है

'नित नव चरन उपज अनुरागा। बिसरी देह तपहिं मनु लागा।
संबत सहस मूल फल खाए। सागु खाई सत बरष गवाँए।।'[2]

---

1. तालं विशेष पर्वों के अवसर पर कन्या युवतियों के द्वारा ग्रहण की जानेवाली थाली।
2. मानस 1/73/2

एक हजार वर्ष तक मूल और फल खाकर बाद में सूखे पत्ते खाकर तपस्या करनेवाली पार्वती की स्थिति का वर्णन मानस में देखा जा सकता है। अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में एषुत्तच्छन ने इसका उल्लेख नहीं किया। श्रीराम को वर के रूप में मिलने केलिए सीता का वाटिका में तप करने का वर्णन भी तुलसी ने किया है। जैसे

'गई भवानी भवन बहोरी। बंदि चरन बोली कर जोरी।।'[1]

गिरिजा से प्रार्थना करती है पार्वती।

लंकाकाण्ड में मेघनाद युद्ध में विजय प्राप्त करने केलिए यज्ञ भी करता है। इस प्रकार पर्व, व्रत, अनुष्ठान आदि का सुन्दर चित्रण तुलसी ने किया।

लोकधर्म, लोकजीवन के प्रत्येक परिपार्श्व से संयुक्त रहता है। यह 'लोक' पर दृक्पात करता है। मानस एवं अध्यात्मरामायणम् में हमें स्थान-स्थान पर ऐसे संकेत मिलते हैं। इनमें लोकाचार, मर्यादा, धार्मिक सन्दर्भ, पूजा, व्रत, अनुष्ठान, पर्व, त्योहार आदि का चित्रण है। लोकमानस आज के भौतिकवादी युग में भी नैतिक मूल्यों को श्रेष्ठ स्थान दे रहा है। आज भी कितने भी लोग व्रत-अनुष्ठान आदि करके अपना इच्छित कार्य साध लेते हैं। संसार में सुखपूर्ण जीवन बिताने केलिए सहज ज्ञान एवं शाश्वत शांति की ज़रूरत है, इसके अतिरिक्त अत्याशा, क्रोध, वैर, ईर्ष्या आदि का त्याग भी करना है। इस प्रकार आज के युग के अनुकूल कई तत्व मानस एवं अध्यात्मरामायणम् में प्राप्त होते हैं। प्राचीन के गर्भ से इन नये तत्वों को निकालकर प्रगतिशील युग के योग्य उन्हें बनाने का काम आज के लोगों का है। ऐसा करने से प्राचीन धरातल पर नवीन संस्कृति का निर्माण किया जा सकता है। सबकहीं लोकमंगल की भावना जाग उठती है।

---

1. मानस 1/234/2

निष्कर्ष

तुलसीदास के रामचरितमानस तथा एषुत्तच्छन के अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में लोकसंस्कृति के बहुमुखी तत्वों की और सामान्य व्यक्तियों के जीवन की समग्रता की अभिराम व्यंजना हुई है। दोनों कवियों ने विभिन्न संस्कृतियों का समन्वय करके हमारी सांस्कृतिक एकता का परिचय दिया है। सामाजिक संस्कारों का उल्लेख करके हमें लोकजीवन की वास्तविकता की ओर जागरूक बनाया है। लोकप्रियता, लोकरुचि एवं लोक की मंगल कामना इन ग्रन्थों का लक्ष्य है। तुलसीदास तथा एषुत्तच्छन ने लोकजीवन को केवल समीप से देखा ही नहीं, अनुभव भी किया था। इसी कारण इन दोनों ग्रन्थों में जिस संस्कृति का विराट रूप प्रस्तुत किया गया है, वह वेद-शास्त्र को मान्यता देते हुए भी लोकानुभवों का समन्वित चित्र है, सामान्य जन के परिष्कारहीन परन्तु लोकनीति से अनुशासित जीवन सरणियों की सहज व्यंजना है। तुलसी और एषुत्तच्छन ने लोक से जो व्यापक अर्थ लिया है, उसमें ग्राम और नगर-समाज, निषाद, भील, वानर सभी समाहित हो जाते हैं। लोकजीवन के सुख-दुःख, भाव-अभाव, संचित विश्वास और नीति, पर्वोत्सवों के मधुमय उल्लास, कथानक रूढ़ियों और मूढ़ाग्रहों की पूर्ण अभिव्यक्ति इसमें मिलती है। आज भी लोक में दिखाई पडनेवाले ये विश्वास कभी भी नष्ट नहीं होते। लोकजीवन में प्रचलित सामाजिक रूढ़ियों, धार्मिक अनुष्ठानों तथा सांस्कृतिक आयोजनों के न जाने कितने सही चित्र इनकी तूलिका से रंजित किये गये हैं। मानस तथा अध्यात्मरामायणम् की रामकथा में ऐसे अनेक प्रसंग है, जिनमें विविध स्तरीय लोकजीवन के भिन्न-भिन्न अंगों का निरूपण हुआ है। ये सब इनके लोकजीवन दर्शन का ही परिणाम है। लोकमानस पर इन ग्रन्थों का अमिट प्रभाव अंकित है। लोकजनता के मन में राम के प्रति भक्ति-भावना जगाकर वे सांसारिक बंधनों से जनता को मुक्त करना चाहते थे। आज के अशांतिपूर्ण वातावरण में लोकजीवन केलिए ये तत्व अत्यन्त आवश्यक हैं। इनसे लोकमंगल की भावना या विश्वहित की भावना कायम हो जाती है।

.....📖.....

पाँचवाँ अध्याय

रामचरितमानस एवं अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु की शिल्पविधि एवं लोकतत्व

शिल्पविधि   सामान्य परिचय

साहित्य समाज का दर्पण है। हर देश के साहित्य की अपनी कुछ विशेषताएँ होती हैं, जिनमें समय के साथ परिवर्तन और संशोधन होता चलता है। रचना के बाह्य एवं आन्तरिक रूप तथा उसमें निहित विशेषताओं को परखने का कार्य प्रमुख रूप से शिल्पविधि के ही अन्तर्गत आता है। शिल्पविधि अंग्रेज़ी के 'टेकनिक' शब्द का हिन्दी पर्याय है; जिसका अर्थ है काव्य की संपूर्ण कलात्मक तथा भावाभिव्यक्ति के प्रकार अथवा रीति। कैलाश वाजपेयी के अनुसार 'काव्यकृति के निर्माण में जिन उपादनों द्वारा काव्य का ढाँचा तैयार किया जाता है वे सब काव्य के शिल्प तत्व कहे जाते हैं'।[1] काव्य की शिल्पविधि वास्तव में कवि की उर्वर कल्पना, प्रतिभा, विवेक और मौलिक सूझ पर आधारित है। कवि अपनी प्रत्येक कृति में परंपरा को कभी स्वीकारता है तो कभी नव्य काव्यविधि का उपयोग भी करता है। 'काव्य के उपादानों, उपकरणों और तत्वों के संयोजन का वह ढंग ही उसकी शिल्पविधि है, जिससे उसके रूप और वस्तु दोनों पक्षों से संबंध की अमूर्त अनुभूतियाँ मूर्त होकर काव्यकृति का ढाँचा प्रस्तुत करती हैं।'[2] अर्थात् काव्य का भावपक्ष तथा कलापक्ष जिन उपादानों के द्वारा व्यवस्थित होकर प्रस्तुत होता है, वे उपादान ही उसके शिल्पविधान के प्रमुख अंग हैं।

---

1. आधुनिक हिन्दी कविता में शिल्प-कैलाश वाजपेयी   पृ. 19
2. तुलसी काव्य की लोकतात्विक संरचना   डॉ. गया सिंह   पृ. 139

लोक की रुचि को समझकर अपने साहित्य को सौन्दर्ययुक्त बनाने का कार्य साहित्यकार का है। इसी दृष्टि से किसी भाव की कृतियों को काव्य सौन्दर्य की कसौटी पर कसने केलिए शास्त्र सम्मत दो आधार हैं - आन्तरिक अथवा भावपक्ष तथा बाह्य अथवा कलापक्ष। कलापक्ष ही वास्तव में काव्य का महत्वपूर्ण शैलीपक्ष है, जिसमें काव्य सौन्दर्य को बढाने योग्य अनुपम निधि समायी हुई है। लोकजनता भी इसपर आकर्षित हो जाती है। शैली पक्ष या अभिव्यक्ति पक्ष में प्रमुख स्थान भाषा शैली को है, जिसका मानव जीवन पर गहरा प्रभाव है। काव्यभाषा तथा अप्रस्तुत विधान के अंतर्गत आनेवाले तत्व, अलंकार, छंद, प्रतीक, बिंब, मुहावरे, लोकोक्ति, आदि भी काव्य सौन्दर्य बढ़ाने में सहायक बन जाते हैं, साथ ही लोकजनता की सौन्दर्यानुभूति को पल्लवित करते रहते हैं।

लोकभाषा   सामान्य परिचय

'भाषा' विचारों तथा भावों की अभिव्यक्ति का साधन है। वास्तव में समाज द्वारा समुत्पादित तथा उपार्जित सांस्कृतिक प्रक्रिया होने के कारण भाषा समाज विशेष के सांस्कृतिक तत्वों से संगठित रहती है। कवि के भाव-संप्रेषण केलिए भाषा एक अनिवार्य माध्यम है और प्रायः सभी कवियों का अपना भाषादर्श भी होता है। 'भाषा ही काव्य का कलेवर है। काव्य में भाषा का उतना ही महत्व है, जितना जीवन में देह का।'[1] अर्थात् भावों का संक्रमण वास्तव में भाषा की शक्ति पर निर्भर है। के.एम. जार्ज के अनुसार 'भाषा के बिना साहित्य नहीं, लेकिन साहित्य के बिना भाषा है।'[2] श्रेष्ठ काव्य देश और काल का प्रतिबिंब होता है। उसकी श्रेष्ठता का मापदण्ड उसकी परिनिष्ठित भाषा के आधार पर नहीं, प्रत्युत् समाजशास्त्रीय अध्ययन की दृष्टि से किया जाना चाहिए। इसकेलिए लोकभाषा की

---

1. वाल्मीकि रामायण और रामचरितमानस : सौन्दर्यविधान का तुलनात्मक अध्ययन   डॉ. जगदीश शर्मा - पृ. 302
2. साहित्य चरित्रम् प्रस्थानङ्ङळिलूडे - के.एम. जार्ज   पृ. 19

ज़रूरत है। जनसाधारण की भाषा ही वास्तव में लोकभाषा है। अशिक्षित तथा परंपरा के प्रवाह में जीनेवाले मनुष्य समुदाय के विचारों की अभिव्यक्ति को लोकभाषा कहा जा सकता है।

मानव समूह अस्तित्वबोध केलिए भाषा का प्रयोग अत्यंत प्राचीनकाल से करता आ रहा है। 'मानव ने अपनी सभ्यता के साधन के रूप में जिस भाषा का विकास किया, उसका आदिरूप लोकभाषा है। लोकजीवन के हर्ष-विषाद का प्रभाव लोकभाषा की संरचना पर अवश्य पडता है।'[1] एक सफल साहित्य सृष्टा अपनी मौलिक उद्भावनाओं के द्वारा लोकप्रचलित भाषा के माध्यम से जनसामान्य को आकर्षित करने में सफल बन जाता है। फलतः उनकी भावनाओं का जनसाधारण में पूर्ण समादार भी होता है। भाषा की इकाई के रूप में शब्द अपने अनेक सांस्कृतिक सन्दर्भों में अर्थ की प्रतीति कराते हैं जो लोकव्यवहार में प्रचलित होकर रूढ़ हो जाते हैं और इन्हीं अर्थों में जब वे पुनः व्यवहृत होते हैं तो उनमें अपने मूल संस्कार भी सुरक्षित रहते हैं। इसलिए भाषा समाज और संस्कृति सापेक्ष होती है।

भारतवर्ष के मध्ययुगीन इतिहास की सबसे प्रमुख घटना भक्ति आन्दोलन है। भक्तिकालीन साहित्य का मुख्य उद्देश्य जन-जन में भक्ति का प्रचार करना था। इसकेलिए जनसाधारण की भाषा की आवश्यकता हुई। इसी समय साधारण जनता को समझने और समझाने लायक अवधी भाषा को लेकर गोस्वामी तुलसीदास एवं शृंगारिकता से भाषा को मुक्त करके सामान्य किन्तु सुगठित एवं सुनियोजित संस्कृत मिश्रित मलयालम भाषा के साथ एषुत्तच्छन भी साहित्यिक क्षेत्र में अवतारित हुए। तुलसी तथा एषुत्तच्छन की भाषा लोक में प्रचलित शब्दावली से युक्त रही और लोकतत्वों और लोकसंस्कारों से पूर्ण रही। ये दोनों कवि भाषा एवं भावों के महान धनी थे। इन कवियों का प्रमुख उद्देश्य लोकजनता के अनुरूप अर्थात् लोक में प्रयुक्त शब्द, अलंकार, छंद आदि के माध्यम से जनता को जाग्रत करना ही था।

---

1. भाषा का लोकपक्ष डॉ. रामस्वार्थ ठाकुर पृ. 62

रामचरितमानस एवं अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में लोकभाषा

हिन्दी एवं मलयालम के मध्यकालीन भक्ति साहित्य प्राचीन धर्म की नवीन चेतना लेकर अवतारित हुए। लोकसंस्कृति, लोकरुचि और लोकभाषा का सम्बल पाकर गोस्वामी तुलसीदास और एषुत्तच्छन ने इस क्षेत्र में पदार्पण किया। भाषा-शैली की दृष्टि से इन्होंने एक ओर भक्तिकालीन प्रमुख लोकभाषाओं को सफलतापूर्वक काव्यभाषा का माध्यम बनाया, और दूसरी ओर तत्कालीन प्रचलित सभी प्रमुख काव्यशैलियों तथा काव्यरूपों को अपनाकर शिष्ट सामान्य जनों का साहित्य प्रस्तुत किया। तुलसीदास ने लोकभाषा अवधी को स्वीकार किया तो एषुत्तच्छन ने संस्कृत में परिवर्तन करते हुए उसे सामान्य जनता केलिए बोधगम्य बनाया। लोककण्ठ में सीमित ये भाषाएँ बहते नीर के समान निर्मल और मधुर हैं। यही कारण है कि जनसाधारण की चेतना को जागृत कर सामान्य लोगों में भक्ति की क्रान्ति उत्पन्न करने केलिए लोकभाषा अवधी में तुलसी ने मानस का प्रणयन किया। 'गोस्वामी तुलसीदास की संस्कृत निष्ठा एवं उनके भाषा-संबन्धी ज्ञान की परिसीमा में हमें सर्वप्रथम तो यही निवेदन करना है कि प्रमुख रूप से हमारे इस कवि का लक्ष्य जनभाषा में अपने काव्यनायक के चरित्रादर्श का प्रतिष्ठापन करना था।'[1] अर्थात् तुलसी की जनभाषा के प्रति एक स्वाभाविक अभिरुचि तथा उसकी जनोपयोगिता में उनका विश्वास तो स्पष्ट हो जाता है।

तुलसीदास के समक्ष भाषा-प्रयोग की दो परंपराएँ विद्यमान थीं। एक ओर संस्कृत के 'नानापुराणनिगमागम' का प्रभाव था और दूसरी ओर उन्होंने ऐसी काव्य-रचना का संकल्प लिया था जिससे सुरसरि सम सब कहँ हित होई।' इसी लोकमंगल की भावना से प्रेरित होकर उन्होंने भाषा के संबन्ध में बडा व्यापक और उदार दृष्टिकोण अपनाया।

---

1. रामचरितमानस का काव्यशास्त्रीय अनुशीलन - डॉ. रामकुमार पाण्डेय पृ. 335

संस्कृत भाषा में पूर्ण प्रवीणता रखते हुए भी अपनी काव्यगत अभिव्यक्ति केलिए उन्होंने लोकभाषा को ही उपयुक्त माध्यम चुना। मानस में उन्होंने यों कहा है

'भाषाबद्ध करीब मैं सोई। मोरे मन प्रबोध जेहिं होई।।'[1]

'दोहावली' में भी उन्होंने अपनी भाषा संबन्धी धारणा व्यक्त करते हुए कहा है:-

'का भाषा का संस्कृत प्रेम चाहिए साँच।
काम जु आवे कामरी का लइ करै कुलाँच।।'[2]

इन कथनों से प्रकट है कि लोकोपयोगी तथा लोकप्रिय साहित्य की रचना केलिए गोस्वामी जी लोकभाषा का समर्थन करते हैं। तुलसी की काव्य भाषा में निहित लोकतत्व का अध्ययन, लोकविशेष की सामाजिक - सांस्कृतिक भावधारा, विचार-व्यवहार की मर्यादा और अर्थ तथा उद्देश्य के सन्दर्भ में ही किया जा सकता है। तुलसीदास लोक तथा वेद के महान् प्रवक्ता होने के नाते उनकी काव्यभाषा में लोक तथा वेद का प्रतिनिधित्व करनेवाली अभिव्यक्तियों की द्विविध कोटियों का समाहार हुआ है। "स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा, भाषानिबन्धमतिमंजुलमातनोति।' जनता के भीतर उन्होंने अपने उपदेशों के साथ-साथ अपने इस भाषा संबन्धी दृष्टिकोण का भी पर्याप्त प्रभाव डालने का प्रयास किया। तुलसी का भाषा विषयक निजी दृष्टिकोण काव्य-माध्यम के रूप में लोकभाषा के व्यवहार की उपादेयता, उपयुक्तता, सहजता, स्वाभाविकता और अनिवार्यता से संबन्धित है। लोकपरक दृश्य की चारुता और सहजता की अनुभूति कराने केलिए उन्होंने काव्यों में सामान्य जनों के बीच प्रचलित पदों, उपमाओं, उक्तियों आदि का चयन बड़ी ही कुशलता से किया है, जिससे लोक-सांस्कृति की विशेषताएँ तात्विकरूप से पूर्णतया उभरकर सामने आती हैं।

---

1. रामचरितमानस 1/30/1
2. दोहावली पृ. 272

तुलसी का 'रामचरितमानस' अवधी भाषा का सुन्दर महाकाव्य है। अवध प्रदेश की आत्मीयता उनकी भाषा में कूट-कूटकर भरी हुई है। 'अवधी भाषा लोकजीवन के भाव रूपों से मिलकर अपने सौष्ठव को नित्य ही विकसित कर रही है। यहीं उसका कलात्मक रूप निखरता है।'[1] तुलसी ने मानस में जनभाषा का पक्ष ग्रहण किया है। यों कहा है

'भाषा भनिति भोरि मति मोरी।'[2]

दूसरे स्थान में

'भनिति भदेस बस्तु भलि बरनी। राम कथा जग मंगल करनी।।'[3]

इसमें जगत् का कल्याण करनेवाली रामकथारूपी उत्तम वस्तु का वर्णन किया गया है। यहाँ तुलसी ने गौरव के साथ अपने प्रबोध स्वान्तसुखाय और जगमंगल केलिए भाषा निबद्ध अपनी रघुनाथगाथा को अतिमंजुल ठहराया। मानस में यों वर्णित है

'गिरा ग्राम्य सिय राम जस गावहिं सुनहिं सुजान।'[4]

ग्राम्य-गिरा, भाषा-भनिति भदेस-भनिति आदि के द्वारा भाषा के प्रति परम्परित हीन भावना की ओर संकेत करते हुए बडे ही आत्मविश्वास और गौरव के साथ तुलसी ने लोकभाषा को महत्व देकर सबकेलिए आस्वाद की वस्तु बना दिया।

रामचरितमानस एवं अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में लोकशब्दों का प्रयोग

तुलसी की भाषा में गोंडा, बहराइच तथा अयोध्या के निकट बोले जानेवाले ग्रामीण किन्तु अपनत्वपूर्ण शब्दों का पर्याप्त प्रयोग है। तुलसी ने लोकजीवन के विविध

---

1. अवधी का लोकसाहित्य सोरजनी रोहतगी पृ. 390
2. मानस 1/8/2
3. वही 1/9/5
4. वही 1/10

क्षेत्रों में प्रचलित देशज और तद्भाव शब्दों का उसी अर्थ में बहुलता से प्रयोग किया है। जिस अर्थ में वे लोकप्रचलित है। अवध में बोले जानेवाले शब्दों में माहुर (विष), सरौं (कसरत), फूट (सच), कूटि (दिल्लगी), अनभल ताकना (बुरा मानना) आदि और चित्रकूट के समीप के जन समूह में बोले जानेवाले कुराय (बरसात के कारण होनेवाले गड्ढे), सुआर (रसोइया) आदि का उल्लेख है। इसके अलावा ग्रामीण अवधी के कोमल-कठोर शब्द प्रसंगानुकूल प्रयुक्त होकर काव्य को गौरव मण्डित करते हैं। ऐसे शब्दों में अछत, उछाहु, अवसेरी, महतारी आदि का उल्लेख है। इसके अलावा परछन, चौक, सोहर, गारी, लगन, नहछू, भावरि, कोहबर, जनवासा, जेवनार, गुहारी, बराती, बधावा, पहुनें, सगुन, कलस, भेंट, तेलु चढावहिं, जोतिसी, बघनहा जैसे अनेक शब्द मानस में देखे जा सकते हैं जो लोकजनता केलिए चिरपरिचित हैं। इन सभी शब्दों का सामान्य और विशिष्ट दोनों अर्थों में प्रयोग हुआ है। इसलिए लोकसांस्कृतिक संदर्भों में रूढ़ होने के कारण ये अपना लोकतात्विक अभिप्राय सहज ही व्यक्त करते हैं।

भाषा में शब्दों का गठन महत्वपूर्ण है। लोकजीवन के विविध सांस्कृतिक एवं व्यावहारिक आयामों में प्रयुक्त शब्द मानस में देखे जा सकते हैं। जैसे

'बधू लरिकनीं पर घर आई। राखेंहु नयन पलक की नाई।।
लरिका श्रमित उनीद बस सयन करावहु जाइ।।'[1]

यहाँ 'लरिकनी' सामान्य लोगों के द्वारा प्रयुक्त शब्द है, जिसका अर्थ 'लडकी' उसी प्रकार लरिका का मतलब लडके हैं। यह लोक शब्द है।

शब्दों के अर्थ सीधे लोक से संबन्धित है। जैसे

"नैहर जनमु भरब बस जाई। जिअत न करहि सवति सेवकाई।"[2]

---

1. मानस 1/354/4
2. वही 1/20/1

यहाँ सेवकाई शब्द सौत की चाकरी करने के अर्थ में प्रयुक्त है।

'सो दससीस स्वान की नाईं। इत उत चितइ चला भडिहाई।'[1]

यहाँ 'भडिहाई' शब्द एक विशेष प्रकार की प्रवृत्ति का द्योतक है जो रावण पर आरोपित है। यहाँ रावण सीता की खोज करते हुए चोरी चुपके इधर-उधर देखकर दबे पाँव अनेक झाडियों और कुटियों में उसी प्रकार झाँकता हुआ जाता है जिस प्रकार कुत्ता अनेक बर्तनों में मुँह डालता तथा सूँघता हुआ चलता है। 'भडिहाई' शब्द लोकव्यंजक है जो कुत्ते के एक विशिष्ट आचरण को द्योतित करता है। उसी प्रकार लोकसंस्कृति से जुडे हुए अनेक शब्द भी हैं। जैसे

'चितवनि चारु भृकुटि बर बाँकी। तिलक रेख सोभा जनु चाँकी।'[2]

यहाँ 'चाँकी' शब्द खलिहान में अनाज की राशि पर बनाए गए लम्बे खडे निशान को कहते हैं। यह कृषि संस्कृति का अपना विशिष्ट शब्द है। इसमें रामचंद्र के माथे की तिलक रेखा के सौंदर्य को चाँकने से उपमित किया गया है। यहाँ अभिप्राय यह है कि रामचन्द्र के ललाट पर तिलक की रेखा मानों उनके सौंदर्य की राशी को चाँक रही हो। जिस प्रकार अन्न की राशि ठण्डे से चाँकने के बाद सुशोभित होती है जिससे राशि के पूर्णत्व का भी बोध होता है, उसी प्रकार रामचन्द्र के ललाट की तिलक रेखा उनके सौन्दर्य राशि की भव्यता और पूर्णता का बोध कराती है। वहाँ 'चाँकी' शब्द अपने प्रयोग में कृषि संस्कृति के एक विशिष्ट बिंब को उपस्थित करने में पूर्णरूपेण सक्षम हुआ है।

तुलसी ने मानस में ऐसे अनेक शब्दों का प्रयोग करके भाषा को और सशक्त बनाया है। इन शब्दों और वाक्यों के प्रयोग लोकतत्व के व्यंजक भी है। जैसे

---

1. मानस 1/27/5
2. वही 1/298/4

"चारु चरन नख लेखनि धरनी।"[1]

यहाँ 'नख लेखनि धरनी, चरणों के नखों से धरती कुरेदने का सूचक है। यह हमारी लोकसंस्कृति का एक अभिन्न अंग है।

इसके अलावा साहेब, नेवाज (कृपालु) जैसे अरबी-फारसी शब्दों का प्रयोग भी देखा जा सकता है जो लोकप्रचलन में थे और बोलचाल के विशेष संदर्भों के साथ ग्रहीत हुए हैं। इस प्रकार तुलसी ने लोकजीवन के विविध क्षेत्रों में प्रचलित देशज और तद्‌भव शब्दों का उसी अर्थ में बहुलता से प्रयोग किया है, जिस अर्थ में वे लोकप्रचलित हैं। मानस में भाषा का जो लोकप्रचलित रूप मिलता है, वह सोलहवीं शताब्दी के उत्तरी भारतवर्ष की जनभाषा को समझने का उपयुक्त माध्यम है। 'उसका शब्दकोश, उसमें प्रयुक्त मुहावरे, लोकोक्तियाँ एवं लोककण्ठ में बसनेवाली अनेक सूक्तियाँ और अनुश्रुतियाँ कुल मिलाकर, भाषा का वही रूप प्रकट करती है, जिसे बिना किसी हिचक के लोकभाषा कहा जा सकता है।'[2] वस्तुतः तुलसी जनता के कवि थे, अस्तु उन्होंने काव्य रचना केलिए जनभाषा का समर्थन किया।

तुलसी की भाँति एषुत्तच्छन के किळिप्पाट्टु भक्तिरस से आप्लावित एवं सामान्य जनता को आकर्षित करने में सफल बन गया। जिस प्रकार मणिप्रवाल केलिए शृंगार, तुळ्ळल में हास्य आदि भावों की प्रमुखता है, उसी प्रकार पुरणेतिहास का अनुवाद करके या भाव परिवर्तन करके भाषा में भक्ति तथा आध्यात्मिक विचारधारा को प्रमुख स्थान देनेवाली एक काव्य-सरणी है किळिप्पाट्टु शाखा। एषुत्तच्छन के पहले साहित्य में पाट्टु, मणिप्रवालम् जैसी दो काव्यधाराएँ प्रचलित थीं। 'पाट्टु शाखा से विकसित किळिप्पाट्टु

---

1. मानस 1/57/3
2. पद्‌मावत में लोकतत्व डॉ. रवीन्द्र भ्रमर पृ. 112

शाखा केवल भाषा की दृष्टि से नहीं, बल्कि छन्द, इतिवृत्त आदि के आधार पर श्रेष्ठ है।'[1] किळिप्पाट्टु का अर्थ है चिडिया का गान। कवि शुकी के कण्ठ में बैठकर सारी बातों का वर्णन करता है। भारतीय काव्य जगत् में इस काव्य सरणी का प्रादुभाव बहुत पहले ही हुआ था। यहाँ वक्ता एवं श्रोता के रूप में चिडिया आती है। लेकिन संपूर्ण काव्य में इस टेकनिक को अपनाकर एषुत्तच्छन ने एक नये काव्य-संप्रदाय का समुद्घाटन किया। कई परवर्ती कवियों केलिए यह मार्ग मंजूर हो गया। मलयालम के किळिप्पाट्टु काव्य संप्रदाय के उद्भावक एषुत्तच्छन है। एषुत्तच्छन की चिडिया वक्ता है।

भाषा को परिपोषित करके उसका परिमार्जन करनेवाले एक महान् साहित्यकार हैं एषुत्तच्छन। वे संस्कृत, तमिल एवं मलयालम जाननेवाले एक त्रिभाषा पण्डित भी थे। मलयालम पदों के साथ समान रूप से संस्कृत शब्दों का मेल कराकर मलयालम भाषा की आत्मसत्ता केलिए उचित रूप प्रदान करने में एषुत्तच्छन ध्यान देते थे। सभी केलिए उपयुक्त एवं कविता को उत्कृष्ट रूप प्रदान करने में अपनी भाषा सक्षम होनी चाहिए, ऐसा एक व्यक्त विचार उनको था। जनता को जागृत करने केलिए उन्होंने भाषा को एक सशक्त माध्यम बनाया। समान्य जनता केलिए बोधगम्य तमिल एवं मलयालम मिश्रित संस्कृत में उन्होंने अपनी महत्वपूर्ण रचना अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु का सृजन किया। 'अध्यात्मरामायणम् में तीन प्रकार की भाषा-रीतियाँ दिखाई पडती हैं। ये हैं संस्कृत प्रभावित रीति, भाषा एवं संस्कृत को समान स्थान देनेवाली मणिप्रवालम् रीति, मलयालम रीति।'[2] एषुत्तच्छन ने अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में बालकाण्ड के आरंभ में स्पष्ट ही अपना उद्देश्य बताया है। जैसे

'वेदसम्मितमाय्मुंपुळ्ळा श्रीरामायणम्

बोधहीनन्मार्करियानवण्णम् चोल्लीडुन्नेन्।'[3]

---

1. किळिप्पाट्टु डॉ एन. मुकुन्दन पृ. 2
2. वही पृ. 3
3. अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु पृ. 4

(अर्थात् वेदों में वर्णित वह पुरातन रामायण संस्कृत भाषा से अनभिज्ञ मलयालियों केलिए उपयुक्त मलयालम भाषा में बताता हूँ।)

जनसाधारण की भाषा में साहित्य सृजन करने का आह्वान इसमें हुआ है, और इसी कवि ने उसकी शुरूआत भी की है। जनसाधारण केलिए बोधगम्य भाषा में काव्योपासन करना उनकी लोकहितकारी भावना को व्यक्त करता है। वास्तव में एषुत्तच्छन ने अध्यात्मरामायणम् का अनुवाद करते समय संस्कृत भाषा केलिए सहज आख्यान रीति को त्यागकर द्रविड आख्यान रीति से काव्यभाषा को सुसंपन्न किया। 'भावाभिव्यक्ति केलिए शब्द तथा वाक्यों की ताकत ही एषुत्तच्छन का औजार है।"[1] एषुत्तच्छन की भाषा सन्दर्भ के अनुसार ललित कोमल, कभी प्रौढ़ोज्वल, कभी सरस गंभीर बन जाती है। सरस सन्दर्भों का वर्णन करते समय भाषा मधुर एवं सुन्दर है तो गहन एवं आध्यात्मिक तत्वों का वर्णन करते समय गंभीर बन जाती है।

एषुत्तच्छन का 'अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु' संस्कृत के 'अध्यात्मरामायणम्' का छायानुवाद है। लेकिन मूल की अपेक्षा इसमें संस्कृत का सुधार करके उसे जनता के योग्य बनाया है। इसमें अनेक सामान्य मलयालम शब्दों का प्रयोग एषुत्तच्छन ने किया है। अडियन् (अपुन), तिरुवडि (आदरसूचक शब्द), उरचेय्तु (कहा), अरुळीडणं (कहना है), कनिव (दया), उळकाम्प (अन्तःकरण), वाषुका (जीना), परिचारिका (सेवा करनेवाली), चमयिच्चु (सजाया), तिरुवुळ्ळक्केड (गलती), कण्णुनीर्वार्कुका (अश्रु बहाना), कोत्तिविषुङ्ङुक (निगलना), पुल्कोडि (घास), परिदेवनं (रुदन), कण्णिनानन्दपूरं (आँखों केलिए आनन्द प्रदान करनेवाला) जैसे सरल मलयालम शब्दों का प्रयोग एषुत्तच्छन ने अध्यात्मरामायणम् में किया है, जिसका लोकजीवन में खास प्रयोग है। एषुत्तच्छन की कविता का जीवन

1. भाषा साहिति साहित्य पञ्चानन् पृ. 76

शब्दशक्ति है। भावप्रधान एवं अर्थपूर्ण पद उनकेलिए प्रिय हैं। राक्षस केलिए नक्तंचर, रात्रिञ्चरन् जैसे शब्दों का प्रयोग उन्होंने किया। उसी प्रकार सुनते समय कानों को माधुर्य प्रदान करनेवाले शब्द है; 'उत्पलाक्षी, मृगलोचना, पुष्कराक्षी', पक्ष्मलाक्षी'[1] आदि।

'झिल्लिझंकारनाद'[2] कहने तथा सुनने पर इसका पूरा प्रभाव मिलता है।

'निर्मलन् निराकारन् निरहंकारन् नित्यन्'[3]

यहाँ पदलालित्य देखा जा सकता है। जनता ऐसे शब्दों का बहुत मात्रा में प्रयोग करती है। अर्थ भाव पूर्णता ही वास्तव में एषुत्तच्छन की कृतियों को मलयालम साहित्य में श्रेष्ठ स्थान प्रदान करने में सहायक है। पुलर्काले (बडे सबेरे), तृक्कण्णुपार्क्कुका (देखना) जैसे शब्दों का प्रयोग भी देखा जा सकता है। अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु के माध्यम से केरल में नियमित एवं प्रौढ़ साहित्यिक भाषा का प्रयोग एषुत्तच्छन ने किया, जिससे लोकजनता लाभान्वित हुई।

संक्षेप में मलयालम भाषा के सुधारक एषुत्तच्छन के करकमलों से भाषा और कविता ने नया रूप लेकर साहित्य को एक नयी दिशा एवं गति प्रदान की। समाज के अंतरंग में छिपे हुए मोह, स्वप्न एवं विकारों को आत्मसात् करने केलिए उनकी कविता सार्थक बन गयी। तमिष़ की दासता से भाषा को मुक्त करके मलयालम प्रत्ययों को जोडकर भाषा को सुधारने का कार्य एषुत्तच्छन ने ही किया। संस्कृत के साथ मलयालम प्रत्यय जोडकर, संस्कृत छंद शास्त्र के वर्ण नियम एवं मात्रा नियमों को तमिष़ छंद से मिलाकर

---

1. अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु पृ. 233
2. वही पृ. 179
3. वही पृ. 234

नूतन किळिप्पाट्टु जैसे मलयालम छंदों को प्रयोग में लाना आदि मलयालम भाषा एवं साहित्य के विकास केलिए किया गया एषुत्तच्छन का महत्वपूर्ण योगदान था।

वस्तुतः भावाभिव्यक्ति की एक माध्यम है भाषा। भाषा तथा भाषाबोध जनता के स्वत्व को दिखानेवाला भी है। तुलसीदास तथा एषुत्तच्छन जनता की भाषा में साहित्य रचना करके अमर बन गये। तुलसीदास ने रामचरितमानस की रचना लोकभाषा अवधी में की तो एषुत्तच्छन ने संस्कृत में परिवर्तन करके अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में उस भाषा को जनता के योग्य बनाया तथा आधुनिक मलयालम भाषा के पिता कहलाये। इनकी काव्यभाषा में निहित लोकतत्व का अध्ययन लोकविशेष की सामाजिक सांस्कृतिक भावधारा विचार व्यवहार की मर्यादा और अर्थों तथा उद्देश्य के संदर्भ में किया जा सकता है। आज भी लोक में इन दोनों ग्रंथों का महत्वपूर्ण स्थान इसलिए है कि इनकी भाषा लोकभाषा है। जनहितकारी या लोकमंगलकारी तत्व इसी भाषा में होने के कारण लोकजनता आसानी से समझ सकती है। इसी से तुलसी तथा एषुत्तच्छन लोककवि बन गये।

मुहावरे और लोकोक्तियाँ वस्तुतः भाषा के लोकतात्विक उपादान हैं, साथ ही जनभाषा में लिखित काव्य की अभिव्यंजना शक्ति के प्रतीक हैं। दोनों का लक्ष्य भाषा के सौन्दर्य में वृद्धि करना है। मुहावरे भाषा के प्रभावी अंग हैं। इससे भाषा चुस्त, सुष्टु और काफी सुमधुर बनती है। संसार में मनुष्य ने अपने लोकव्यवहार में जिन-जिन वस्तुओं और विचारों को बडे कौतूहल से देखा है, समझा है तथा बार-बार उनका अनुभव किया है, उनको उसने शब्दों में बाँध दिया है। वे ही मुहावरे कहलाते हैं। कम शब्दों में अधिक भावों का प्रकाशन करने के साथ मुहावरे मानव अनुभूतियों के सजीव चित्रण से भाषा को सुन्दर एवं आकर्षक बनाते हैं।

लोकजीवन में ऐसा कोई कार्य नहीं, जिसका वर्णन मुहावरों में न हुआ हो। 'मानव की गति-प्रगति, अंग-उपांग, अनुभूति, विचार, भोजन, प्रकृति, घर-गृहस्थी आदि से लेकर हवा, पानी, पृथ्वी, आकाश पेड-पौधे जीव-जन्तु तक का संबन्ध मुहावरों से है।'[1] जनता के आर्थिक, सामाजिक, ऐतिहासिक एवं पौराणिक तथ्यों पर भी मुहावरों से काफी प्रकाश पडता है। पुत्र जन्म से लेकर मृत्यु तक से संबन्धित अनेक मुहावरे समाज में प्रचलित हैं। ताली बजाना, चौका बैठना, गाँठ जुडाना, हाथ पीले करना जैसे अनेक मुहावरे हैं, जो हमारी सामाजिक प्रथाओं के प्रतीक हैं। मतलब यह है कि मुहवारों में लोकजीवन के सभी पहलुओं का चित्रण देखने को मिलता है। बृहत् हिन्दी मुहावरा कोश में यों कहा है कि 'मुहावरे हमारी बोलचाल में जीवन्तता और स्फूर्ति की चमकती हुई छोटी-छोटी चिनगारियाँ हैं। वे हमारे भोजन को पौष्टिक और स्वास्थ्य कर बनानेवाले उन तत्वों के समान हैं, जिन्हें हम जीवन तत्व कहते हैं।'[2] सच तो यह है कि मुहावरे लोकभाषा की जीवंतता के प्रमाण और प्रवाह के परिचायक हैं।

बोलचाल की प्राकृत विशेषताओं से जो भाषा जितनी ही अभिमंडित होती है, उसमें मुहावरों का उतना ही अधिक प्रसार पाया जाता है। अवधी इस कोटि की भाषा है। इसमें मुहावरों की प्रचुरता है। तुलसी के काव्यग्रन्थों में मुहावरों का प्रयोग उक्ति को शक्ति बनाने केलिए तो हुआ है। उनसे अनुभूति की गहराई और तीव्रता को बढाने तथा भावना की मूर्त अभिव्यक्ति के साथ उसको उद्दीप्त करने में तुलसी को सफलता मिली है। ग्रामीण लोकोक्तियों एवं मुहावरों से भाषा को समृद्ध बनाना तुलसी की भाषा की प्रमुख शक्ति है। 'तुलसी की भाषा का टकसाली सौन्दर्य देखना है तो वह उनकी शब्दावली में प्रयुक्त मुहावरों

---

1. लोकसाहित्य गणेशदत्त सरस्वत पृ. 115
2. बृहत् हिन्दी मुहावरा कोश अशोक कौशिक पृ. 1

और लोकोक्तियों में विशेष रूप से मिलेगा।"[1] अर्थात् तुलसी ने अपनी भाषा में विशेष चमक-दमक और आकर्षण लाने केलिए ही मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग किया है। रामचरितमानस में मुहावरों का लक्षणिक प्रयोग देखा जा सकता है।

मुहावरे जनसाधारण से संबन्धित होते हैं। इसलिए मुहावरों से युक्त साहित्य भी जनता के अधिक निकट होता है। तुलसी का मानस ऐसा ही एक लोक काव्य है। इसमें लोकजनता को आकर्षित करनेवाले अनेक मुहावरे हैं। इन मुहावरों के सुन्दर प्रयोग से भाषा में सजीवता, सशक्तता, तथा हृदयस्पर्शिता के गुण आ गये हैं। मानस की भाषा की अभिव्यंजना शक्ति बढ़ानेवाले कुछ मुहावरे इस प्रकार हैं

'चकित विलोकत कान उठाएँ'[2]

यहाँ चौकन्ना होना मुहावरा है। सुअर को देखकर प्रतापभानु की दशा इस मुहावरे से स्पष्ट है।

'जिन्ह के लहहिं न रिपु रन पीठी'[3]

यहाँ रण में शत्रु जिनकी पीठ नहीं देख पाते। अर्थात् जो लडाई के मैदान से भागते नहीं।

भामिनि भइहु दूध कइ माखी।'[4]

---

1. तुलसीदास की भाषा डॉ. देवकीनन्दन श्रीवास्तव पृ. 307
2. मानस 1/156/4
3. वही 1/230/4
4. वही 2/18/4

लोकजीवन में इस मुहावरे का महत्वपूर्ण स्थान है। यहाँ मंथरा कैकेयी से कहती है कि तुम तो अब दूध की मक्खी हो गयीं। जैसे दूध में पडी हुई मक्खी को लोग निकालकर फेंक देते हैं, वैसे ही तुम्हें भी लोग घर से निकाल बाहर करेंगे।

'मोरसि मोहि कुठायँ।'[1]

यहाँ 'बडे कुठौर मारना' मुहावरे का प्रयोग है। कैकेयी के कठोर वचन सुनते समय ऐसी कठिन परिस्थिति उत्पन्न हुई जिससे दशरथ के मुंह से वचन निकालना कठिन हो गया।

'जरि तुम्हारि चह सवति अखारी।'[2]

यहाँ मंथरा का कथन है कि कौशल्या कैकेयी की जड़ उखाडना चाहती है। यह मुहावरा लोक में बहु प्रचलित है।

लकीर खींचकर बलपूर्वक कहने केलिए तुलसी ने इस मुहावरे का प्रयोग किया है कि-

'रेख खँचाइ कहउँ बलु भाषी।'[3]

'आँखों की पुतली बना लेना' एक प्रसिद्ध मुहावरा है, जिसका प्रयोग तुलसी ने यों किया है

'करों तोहि चख पुतरि आली।'[4]

---

1. मानस 2/30
2. वही 2/6/4
3. वही 2/18/4
4. वही 2/22/2

कैकेयी का कथन है कि मंथरा को आँखों की पुतली बना लूँ।

'तृन समान सुग्रीवहि जानी।'[1]

यहाँ तिनके के समान मानना मुहावरा प्रसिद्ध है।

'सूखत धान परा जनु पानि।'[2]

सूखते हुए धान पर पानी पडना मुहावरा यहाँ देखा जा सकता है।

इसके अलावा बहुत सारे मुहावरे मानस में है, जिनका सीधा संबन्ध लोकजीवन से है। जैसे

'देखि मोहि जियँ भेद बढ़ावा'[3]

'पालव बैठि पेड़ एहिं काटा।'[4]

'छुअत चढी जनु सब तन बीछी।'[5]

'मानहूँ लोन जरे पर देई।'[6]

'बहुत भाँति आँखि देखाए'[7]

'मनहूँ अनल आहुति घृत परई।'[8]

---

1. मानस 4/7/5
2. वही 1/262/2
3. वही 4/5/5
4. वही 2/46/3
5. वही 2/45/3
6. वही 2/29/4
7 वही 1/292
8. वही 2/32/2

ये मुहावरे लोक से लिये गये हैं। इसलिए लोकजीवन से इनका गहरा संबन्ध है। भाषा में सरसता, सरलता, प्रवाह, चमत्कार इत्यादि के वर्धन केलिए ये सहायक बन जाते हैं।

तुलसी की भाँति एषुत्तच्छन ने केरल के मुहावरों का प्रयोग अध्यात्मरामायणम् में किया है। एषुत्तच्छन की भाषा को सशक्त बनाने केलिए ये मुहावरे अत्यंत सहायक हैं। अध्यात्मरामायणम् में मुहावरों का जाल हम देख नहीं पाते। बल्कि बीच-बीच में एषुत्तच्छन ने जिन मुहावरों का प्रयोग किया है, वे सशक्त एवं अत्यंत प्रभावशाली हैं। लोकजीवन में इनका प्रयोग बहुत देखा जा सकता है। राम वनवास के बाद दशरथ महाराज की बुरी हालत में कौसल्या उसे भला-बुरा कहती है। यहाँ एक मुहावरे का प्रयोग मिलता है

'पुण्णिलोरुकोळ्ळिवय्क्कुक'[1]

उसी प्रकार कैकेयी के वचन सुनकर दशरथ की स्थिति का वर्णन करने केलिए एषुत्तच्छन ने लोकप्रचलित मुहावरे का प्रयोग किया है।

वज्रमेट्ट्द्रिपतिच्चपोल्भुवि सत्वरचेतसावीणितु भूपनुं।'[2]

मतलब यह है कि वज्रायुध के प्रहार से पर्वत नीचे गिरता है। उसी प्रकार दशरथ का भी पतन हुआ।

लक्ष्मण द्वारा कुंभकर्ण की ओर बहुत से बाण चलाये गये। ऐसी स्थिति को एषुत्तच्छन ने इस मुहावरे के माध्यम से व्यक्त किया है

'पर्वतत्तिन्मेल्मष़पोषि़युंवण्णं दुर्वारबाणगणं पोषि़च्चीडिनान्।'[3]

---

1. अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु पृ. 145
2. वही पृ. 96
3. वही पृ. 433

'पर्वत के ऊपर बरसात की तरह' इस मुहावरे से उस घटना की तीक्ष्णता देखी जा सकती है।

जब रावण सीता को रथ में बिठाकर बडी उतावली से आकाश मार्ग से चला, उसी समय जटायु का जो मुहावरेदार कथन है, अत्यंत लोकप्रचलित है। अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में यों कहा है

'अद्वारत्तिंकल् चेन्नुशुनकन्मंत्रंकोण्डु शुद्धमां पुरोडाशं कोण्डुपोकुन्नपोले'[1]

अर्थात् कुत्ता यागशाला में प्रवेश करके मंत्रशुद्ध होमद्रव्य चुराकर जिस प्रकार ले जाता है।

मानस में तुलसी ने इसकेलिए ऐसे मुहावरे का प्रयोग किया है

"पुरोडास चह रासभ खावा।।'[2]

यज्ञ के अन्न को गदहा खाना चाहता है।

इस प्रकार रामचरितमानस तथा अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में तुलसीदास तथा एषुत्तच्छन ने ऐसे अनेक मुहावरों का उल्लेख किया है जिनका प्रयोग आज भी लोकजीवन में होता है। इनका जितना अधिक प्रयोग ग्रामीणलोगों की बातचीत में मिलता है, उतना शहरी लोगों के कृत्रिम वार्तालाप में नहीं। आज ये मुहावरे ग्रामीण समाज से ऊपर उठकर सभ्य समाज तक पहुँचते हैं और आभिजात साहित्य में व्यवहृत होने लगते हैं। इनके व्यवहार से साहित्य को दुहरा लाभ होता है। एक तो उसमें लोकभाषा की मिठास आ जाती है तो दूसरे लोकाभिव्यक्ति का सीधापन। इसका प्रमाण है तुलसीदास का रामचरितमानस

---

1. अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु - पृ. 228
2. मानस 3/28/3

तथा एषुत्तच्छन का अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु। लोकजनता ने इन ग्रन्थों के महान् मोतियों को स्वीकार करके अपने दैनंदिन जीवन केलिए उपयुक्त बनाया।

मुहावरे की भाँति लोकोक्ति जन सामान्य की व्यवहारपटुता और उसकी सामान्य बुद्धि का निदर्शन है, जिसमें नीति की बातें तथा जीवन के सत्य को बडी खूबी से प्रकट किया जाता है। लोकोक्ति को ग्रामीण जनता का नीतिशास्त्र भी कहा जा सकता है तथा इसमें गागर में सागर भरने की प्रवृत्ति है। लोकोक्तियाँ संक्षिप्त अर्थपूर्ण और रोचक होती हैं। जनता की यथार्थ भाषा में इसका चित्रण होता है। लोकोक्तियाँ और कहावतें दोनों पर्यायवाची भी हैं। 'हिन्दी शब्दकोश में कहा गया है लोकोक्तियाँ मानवज्ञान के घनीभूत रत्न हैं, जिन्हें बुद्धि और अनुभव की किरणें फूटनेवाली ज्योति प्राप्त है।'[1] ऐसा लगता है कि मनुष्य ने जबसे वाणी का व्यवहार करना सीखा होगा, तभी से वह लोकोक्तियों का प्रयोग करने लगा। जन-जीवन के चित्रण इसमें उपलब्ध होने के कारण लोकोक्तियों का वर्ण्य विषय समस्त मानव जीवन है। वास्तव में लोकोक्तियों के प्रयोग का उद्देश्य उपदेश देना, व्यंग्य विनोद के द्वारा समाज सुधार एवं मनोरंजन करना, अनुभव सिद्ध कथनों के द्वारा लोकजीवन का मार्गदर्शन करना तथा समय-समय पर अपने तर्क की पुष्टि करना है।

उत्कृष्ट काव्य स्वयमेव बहुआयामी अर्थ रखनेवाली लोकोक्तियों का खजाना भी बन जाता है। ये उक्तियाँ कवि की कुशाग्रबुद्धि जीवन की सूझबूझ और श्रेष्ठ काव्य कला का परिचायक हैं। रामचरितमानस तथा अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु की भाषा में प्रभावपूर्ण अभिव्यंजना शक्ति केलिए जिस प्रकार ये मुहावरे बडे ही कारगर सिद्ध हुए हैं, उसी प्रकार लोकोक्तियाँ और कहावतें भी लोक के अनुभव तथा ज्ञान के विविध रूपों में भाषा की प्रकृति के साथ पिरोई रहती हैं। लोकोक्तियों से अनुभूति की गहराई और तीव्रता

---

1. हिन्दी साहित्य कोश डॉ. धीरेन्द्र वर्मा पृ. 692

को बढाने तथा भावना की मूर्त अभिव्यक्ति के साथ उसकी दीप्ति को मूर्तता प्रदान करने में तुलसी को अद्‌भुत सफलता मिली है। मानस में कुछ लोकोक्तियाँ इस प्रकार हैं

'का बरषा जब कृषी सुखानें। समय चुकें पुनि का पछितानें।।'[1]

सारी खेती के सूख जाने पर वर्षा किस काम की? समय बीत जाने पर फिर पछताने से क्या लाभ? यह लोकोक्ति श्रीरामजी के धनुष प्रसंग में देखी जा सकती है। इस लोकोक्ति का लोकजनता पर बहुत प्रभाव है। दूसरी एक लोकोक्ति है

'कोउ नृप होइ हमहिं का हानी।'[2]

कैकेयी से मंथरा का कथन है कि कोई भी राजा हो हमारी क्या हानि? यह लोकोक्ति आज भी बहुत प्रासंगिक है।

'चोरहि चाँदनि राति न भावा'[3]

चोर को चाँदनी रात नहीं भाती। यह एक लोकप्रचलित लोकोक्ति है।

'जस काछिअ तस चाहिअ नाचा।'[4]

इस लोकोक्ति का मतलब है कि जो कुछ कहते, करते हैं, वह सब सत्य (उचित) है। क्योंकि जैसा स्वाँग भरे वैसा ही नाचना भी तो चाहिए।

यह लोकोक्ति अत्यंत प्रसिद्ध है

'अति संघरषन जौं कर कोई। अनल प्रगट चंदन ते होई।[5]

---

1. मानस 1/260/2
2. वही 215/3
3. वही 2/10/4
4. वही 2/126/4
5. वही 7/110/8

बहुत अपमान करने पर ज्ञानी को भी क्रोध उत्पन्न हो जाता है। यदि कोई चन्दन की लकडी को बहुत अधिक रगडे तो उससे भी आग प्रकट हो जायेगी। तुलसी ने इस लोकोक्ति को कितने सुन्दर ढंग से चित्रित किया है, जिसका भी प्रयोग लोक में बहुत है। यह लोकोक्ति अत्यंत प्रसिद्ध है

'अस कवन सठ हठि काटि सुरतरु बारि करिहि बबूरही।।'[1]

यहाँ राम से बालि का जो कथन है, लोकोक्ति के माध्यम से व्यक्त हुआ है। ऐसा मूर्ख कौन होगा जो हठपूर्वक कल्पवृक्ष को काटकर उससे बबूर के पेड लगावेगा। अर्थात् पूर्णकाम बना देनेवाले आपको छोडकर अपने इस नश्वर शरीर की रक्षा चाहेगा?

इसके अलावा लोकोक्ति से संबन्धित अनेक उदाहरण मानस में है, जिनका सीधा संबन्ध लोकजीवन से है। जैसे

'बाँझ कि जान प्रसव कै पीरा।'[2]

'पेड काटि तैं पालउ सींचा। मीन जिअन निति बारि उलीचा।।'[3]

'लातहूँ मरा चढ़ति सिर नीच को धूरि समान।'[4]

चलइ जोंक जल बक्रगति जद्यपि सलिल समान।'[5]

'अंतहु कीच तहाँ जहाँ पानी।'[6]

(जहाँ पानी होता है, वहाँ कीचड ही होता है।

---

1. मानस 4/10 छन्द
2. वही 1/96/2
3. वही 2/160/4
4. वही 2/249
5. वही 2/42
6. वही 2/181/2

इस प्रकार तुलसी ने जनमानस में प्रयुक्त लोकोक्तियों का प्रयोग किया। तुलसी की भाँति एषुत्तच्छन ने भी अध्यात्मरामायणम् में लोकोक्तियों का बहुत प्रयोग किया है। उनकी लोकोक्तियाँ तत्व-प्रधान हैं। उपदेशात्मक अनेक रत्न इससे मिलते हैं। ये मोतियाँ एषुत्तच्छन की भाषा में सुगमता एवं सौंदर्य बढ़ाते हैं। एक लोकोक्ति देखिए

'तान्तान् निरंतर चेय्युन्न कर्मङ्ल
तान्ताननुभविच्चीडुकेन्नेवरू।'[1]

यहाँ वाल्मीकि की कथा का उल्लेख करके इसे सही साबित करते हैं। मतलब है कि इनसान निरंतर जो कर्म करता है वह उसके फल का भोक्ता भी होता है। यह एक सार्थक लोकोक्ति है। अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में यो कहा है

'नित्यवुं चेय्युन्न कर्मफलगुणं कर्तावोषिञ्ञु मट्ट्न्यन भुजिक्कुमो।'[2]

(कर्म का फल स्वयं भोगना पडता है।) इसका मानस में भी उल्लेख है। जैसे

'जो जस करइ सो तस फलु चाखा।'[3]

जो जैसा करता है, वह वैसा ही फल भोगता है।

मंथरा की कुटिलता में फँसकर कैकेयी भी कुचाल चलनेवाली बन जाती है। उस समय प्रयुक्त यह लोलोक्ति

'कज्जलंपट्टियाल् स्वर्णवुं निष्प्रभं।'[4]

(अर्थात् कीचड में पडने पर स्वर्ण भी निष्प्रभ हो जाता है।)

---

1. अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु पृ. 139
2. वही पृ. 139
3. मानस 2/218/2
4. अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु पृ. 94

इसी अर्थ की एक कहावत हिन्दी में इस प्रकार चलती है। 'काजल की कोठरी में कैसेहु सयानो जाय एक लीक काजल की लागी है पै लागी है।' आज भी प्रचलित है। कीचड से कनक का रंग भी नष्ट हो जाता है। इसी भाव को कहने के लिए इस लोकोक्ति का प्रयोग हुआ है।

एषुत्तच्छन की यह लोकोक्ति भी अत्यंत प्रसिद्ध है।

'प्रत्युपकारं मऱक्कुन्न पूरुषन्
चत्ततिनोक्कुमे जीविच्चिरिक्किलुं।'[1]

अर्थात् प्रत्युपकार को भूलनेवाले मनुष्य केलिए जीना और मरना दोनों बराबर है। लोकजीवन में इस लोकोक्ति का महत्वपूर्ण स्थान है। एक अन्य लोकोक्ति है

"इष्टं पऱयुन्न बंधुक्कळारुमे
कष्टकालत्तिंकलिल्लेन्नु निर्णयं।'[2]

कोई भी शुभेच्छु रिश्तेदार मुसीवत के अवसर पर हमारी मदद नहीं करेगा। ये उक्तियाँ हमेशा लोककंठ में होती हैं। उसी प्रकार की और एक उक्ति है।

'शत्रुक्कळल्ला शत्रुक्कळाकुन्नतु
मित्रभावत्तोडरिकेवरुविना
शत्रुक्कळ् शत्रुक्कळाकुन्नतेवनुं
मृत्युवरुमवरेन्नु निर्णयं।'[3]

---

1. अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु पृ. 283
2. वही पृ. 43
3. वही पृ. 385

(शत्रु लोग हमारे शत्रु नहीं बनते, बल्कि मित्र के रूप में आनेवाले शत्रु ही वास्तव में हमारे घातक बन जाते हैं।) इस प्रकार लोकजीवन केलिए लाभदायक अनेक लोकोक्तियाँ एषुत्तच्छन ने जनता के सामने रखीं। वर्तमान मनुष्य केलिए ये तत्वप्रधान उक्तियाँ बहु उपयोगी होंगी। इसमें कीचड में पडे हुए मानव को बचाने योग्य संजीवनी शक्ति है। उसी प्रकार की एक लोकोक्ति देखिए

'मृत्युवशगतनाय पुरुषनु सिद्धौषधङ्ङळुमल्कयिल्लेतुम्।'[1]

(मृत्यु के वश में पडे हुए व्यक्ति को औषधों के प्रयोग से क्या लाभ?)

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि मानस तथा अध्यात्मरामायणम् में प्रयुक्त लोकोक्तियाँ बोलचाल में प्रचलित भाषा की शक्तियाँ हैं जिनके प्रयोग द्वारा गोस्वामी जी तथा एषुत्तच्छन ने अपने काव्यों में लोकजीवन तथा व्यवहार की लोकतात्विक भावनाओं, विचारों, नीतियों और वृत्तियों की अभिव्यक्ति की है। आदिम असभ्य समाज से लेकर आज के शिष्ट समाज में भी इन लोकोक्तियों का प्रयोग है। ये लोकोक्तियाँ मानव-स्वभाव तथा व्यवहार-कुशलता की ऐसी धरोहर हैं जो मानव को उत्तराधिकार में पीढ़ी दर पीढ़ी मिलती आ रही है।

इस प्रकार लोकप्रचलित मुहावरे, लोकोक्तियाँ आदि के प्रयोग से तुलसी एवं एषुत्तच्छन ने लोकजनता से अटूट संबन्ध स्थापित किया। इन उक्तियों से आभिजात साहित्य की लोकतात्विक विशेषता में वृद्धि होती है, साथ ही बोलचाल की अभिव्यक्ति विधि से संयोग होने से उसकी अभिव्यंजना को लोकप्रियता, सहजता और संप्रेषणीयता प्राप्त होती है। मानस एवं अध्यात्मरामायणम् में लोकवाणी की इन प्रचलित लघुवार्ताओं का बडी

---

1. अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु पृ. 385

कुशलता से प्रयोग किया। इससे काव्यभाषा में लोकतात्विक व्यंजना शक्ति का पूरा-पूरा प्रभाव भी मिलता है। इसके अलावा एषुत्तच्छन के अध्यात्मरामायणम् में सारोक्तिपूर्ण लोकोक्तियाँ मिल जाती हैं, जो अत्यंत उपदेशात्मक एवं लोकजनता केलिए स्वीकार्य हैं। लोक में ये उक्तियाँ प्राचीनकाल से लेकर आज तक चल रही हैं। इसलिए मानस एवं अध्यात्मरामायणम् को इसी दृष्टि से महान् ख्याति भी मिल जाती है।

अलंकार योजना

मानव जब से प्रभावोत्पादक आकर्षक रीति से आत्माभिव्यक्ति का प्रयास करने लगा, तब से अलंकारों का उदय हुआ। रचना में शब्द और अर्थगत चमत्कार लाने तथा सौंदर्य सृष्टि करने केलिए अप्रस्तुतों की योजना कविगण करते रहे हैं। काव्य में रमणीयता, रचना वैचित्र्य, सौंदर्य विधान जैसे शिल्पगत सौंदर्य की सृष्टि अलंकारों, प्रतीकों और बिम्बों के द्वारा होती रही है। आचार्य भामह ने सर्वप्रथम काव्यसौंदर्य केलिए अलंकार तत्व को आवश्यक बताया। जिस प्रकार भावों की अभिव्यक्ति का माध्यम भाषा है, उसी प्रकार सबल रीति से अपनी बात को कहने केलिए कवि लोग अलंकारों का प्रयोग करते आये हैं। शिप्ले ने लिखा है 'अलंकार वाणी के विभूषण हैं, अभिव्यक्ति में स्पष्टता, भावों में प्रभावोद्पादन की शक्ति, भाषा में सौंदर्य तथा श्रोताओं का मनोविनोद आदि इनके फल हैं।'[1] अर्थात् अलंकार काव्यक्षेत्र में भावों के उत्कर्ष का तथा वस्तुओं के रूप, गुण एवं क्रिया की तीव्र अनुभूति कराने का एक सशक्त एवं पुष्ट माध्यम है। जिन तत्वों के आधार पर अलंकार का अस्तित्व होता है, उनमें लोकमानस की पृष्ठभूमि सदैव उपस्थित रहती है। डॉ. सत्येन्द्र का मत है कि 'जब तक हमारा चेतन मानस वर्तमान मात्र से संबंधित रहता है, और लोकोत्तर होता है। वर्तमान से हटकर चेतनमानस जब मानस के अन्य पर्तों से

---

1. डिक्शनरी ऑफ वर्ल्ड लिटरेचर फिगर ऑफ शिप्ले जॉसफ शिप्ले पृ. 159

किसी प्रकार की प्रेरणा ग्रहण करता है तो हम उसे कल्पना का सहारा लेते हुए देखते हैं। उस प्रेरणा की उपलब्धि का रहस्य मूलतः लोकमानस से ही सम्बद्ध है। लोकोत्तरता घनिष्ठ रूपेण लोकतत्व के मूल संस्थान से संबंधित है।'[1] इससे यह अर्थ निकाला है कि अलंकार की लोकोत्तरता का मूल संबंध लोकमानस की वह पृष्ठभूमि है, जो लोकतात्विक बिम्बों से निर्मित है।

लोककवि के मन में प्रस्फुटित अनायास भाव ही वास्तव में लोककाव्य है। इसमें कृत्रिमता के बदले जन हृदय का उद्‌गार होता है। लोककवि जब अपने मन के भाव-तरंगों को वाणी का रूप देते हैं, तब काव्य में अलंकारों का प्रवेश अनायास हो जाता है। लोककाव्य के अलंकार प्रायः मौलिक एवं नूतन होते हैं। लोककवि जिस वातावरण में जन्म लेता और पलता है, उसके हृदय पर उसका स्पष्ट और स्थायी भाव पड़ता है। यही कारण है कि अपने भावों को स्पष्ट करने केलिए वह जिन उपमानों का सहारा लेता है, वे लोकजीवन से गृहीत होते हैं तथा जन-साधारण केलिए परिचित होते हैं। ऐसे लोककवि थे तुलसीदास और एषुत्तच्छन।

मानस एवं अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में चित्रित अलंकार

मनुष्य स्वभावत सौन्दर्यानुरागी है। लोकजीवन में बहुत पहले से ही उपमेयों तथा उपमानों का प्रयोग देखा जा सकता है। किसी वस्तु, व्यक्ति सभी में किसी न किसी आलंकारिकता के साथ प्रयोग करने की रीति प्राचीनकाल से लेकर आज भी विद्यमान है। उपमेय और उपमान प्रायः सभी अलंकारों में देखे जा सकते हैं। अतः सभी अलंकार लोकमूलक है। लेकिन कुछ अलंकार ऐसे हैं, जिनका लोक से सीधा संबन्ध है। साथ ही इन अलंकारों का बहुमात्रा में प्रयोग किया जाता है। काव्य के अन्तर्गत शब्द और अर्थ के सौन्दर्यवर्धन को लेकर अलंकारों की दो कोटियाँ हो जाती हैं शब्दालंकार और

---

1. मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का लोकतात्विक अध्ययन डॉ. सत्येन्द्र पृ. 486

अर्थालंकार। काव्य शिल्प के उपादानों में अलंकार विधान के प्रति तुलसी एवं एषुत्तच्छन की विशेष अभिरुचि परिलक्षित होती है। मानस तथा अध्यात्मरामायणम् में बहुत से अलंकारों का प्रयोग मिलता है। इन अलंकारों में अनुप्रास, उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, लोकोक्ति, दृष्टान्त आदि का महत्व सबसे अधिक है और इनका प्रयोग विशेष रूप से हुआ है। प्रायः लोक से ही इनका ग्रहण हुआ है। सामान्य जनता केलिए ये प्रिय अलंकार भी हैं।

शब्दालंकारों में लोकजीवन के निकट का अलंकार है अनुप्रास। मनुष्य अपने कथन की ताल-लयात्मकता केलिए अनुप्रास अलंकार का बहुत प्रयोग करता है। मानस एवं अध्यात्मरामायणम् में इसका भरपूर प्रयोग देखा जा सकता है। श्रीराम के साथ वन में रहनेवाली सीता केलिए वहाँ की सभी चीज़ें सुखदायक थीं। इसे तुलसी ने अनुप्रास के द्वारा व्यक्त किया है। देखिए

'परनकुटी प्रिय प्रियतम संगा। प्रिय परिवारु कुरंग बिहंगा।।
सासु ससुर सम मुनितिय मुनिवर। आसनु अमिअ सम कंद मूल फर।।
नाथ साथ साँथरी सुहाई। मयन सयन सय सम सुखदाई।।
लोकप होहिं बिलोकत जासू। तोहि के मोहि सक विषय बिलासू।।'[1]

श्रीराम के साथ होने के कारण वन की सारी चीज़ें कुटुम्ब के सदस्यों की तरह सीता को लगती हैं। पशु-पक्षी कुटुम्बियों जैसे, मुनियों की स्त्रियाँ सास के समान, श्रेष्ठ मुनि ससुर के समान लगते हैं। कन्दमूल फलों का आहार अमृत के समान, कुश और पत्तों की साथरी सैकडों कामदेव की सेजों के समान सुख देनेवाली हैं। ये दृश्य अनुप्रास के द्वारा कितने सुन्दर ढंग से तुलसी ने चित्रित किये हैं।

श्रीरामजी के घोडे का हिकर-हिकरकर उसकी ओर देखने का दृश्य तुलसी ने रोचक ढंग से वर्णित किया है। यहाँ शब्दों का एक मायाजाल ही देखा जा सकता है। जैसे-

'हिंकारि हिंकरि हित हेरहिं तेही।'[1]

पशु-पक्षियों के कठोर शब्द इस अनुप्रास में वर्णित है देखिए

'खग कंक काक सृगाल। कटकटहिं कठिन कराल।।'[2]

पुष्पवाटिका में सीता के आभूषणों की ध्वनि सुनकर ही राम उसे देखता है। जैसे-

'कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि।'[3]

प्राकृतिक दृश्यों को भी तुलसी ने अनुप्रास के ज़रिए चित्रित किया है। एक उदाहरण देखिए

'बन बाग उपबन बाटिका सर कूप बापी सोहहीं।'[4]

इस प्रकार तुलसी ने मानस में लोकजीवन से जुडे प्राकृतिक, पशु-पक्षी संबन्धी सभी को अनुप्रास के ज़रिए प्रभावपूर्ण एवं मनमोहक बनाया है।

तुलसी के समान एषुत्तच्छन भी अध्यात्मरामायण में अनुप्रास का बहुत उपयोग करते हैं। शब्दों के मायाजाल में जनता को लेकर अनुप्रास के ज़रिए आनन्द प्रदान करने में वे सक्षम बने। एक अनुप्रास देखिए

---

1. मानस 2/142/4
2. वही 3/11/7
3. वही 1/229/1
4. वही 5/ छंद

'सुन्दरनिन्दिरामन्दिरवत्सनानन्दस्वरूपनिन्दिन्दर विग्रहन

इन्दीवराक्षनिद्रादिवृन्दारक वृन्दवन्दयांघ्रीयुग्मरिविन्दन् ।।'[1]

अर्थात् श्रीरामचन्द्र जी के शरीर की शोभा की, लक्ष्मी, भौंरे, कुवलय के फूल, इन्द्र जैसे देव समूह आदि से तुलना करके अनुप्रास का सुन्दर चित्रण किया है। लोकजनता के कण्ठ में इसका मीठापन भरा हुआ है। श्रीरामचन्द्रजी की महिमा का चित्रण दिखानेवाला यह अनुप्रास अत्यंत आकर्षक रहता है।

अध्यात्मरामायणम् का सुन्दरकाण्ड अनुप्रास का मायाजाल है। यहाँ लंका नगरी का चित्रण एषुत्तच्छन ने एक अनुप्रास के ज़रिए सुन्दर ढंग से किया है देखिए

'दशवदननगरमतिविमलविपुलस्थलम् दक्षिणवारिधिमध्ये मनोहरं।

बहुल फलकुसुमदलयुतविटपिसंकुलं वल्लीकुलावृतं पक्षी मृगान्वितं।।

मणिकनकमयममरपुरसदृशमंबुधिमध्येत्रिकूटाचलोपरिमारुति

कमलमकल्चरितमरिवतिनु चेन्नन्पोड्डुकण्डितु लंकानगरं निरुपमं।'[2]

अर्थात् चारों ओर लहरों से भरे समुद्र से घिरी हुई लंका नगरी पवित्र एवं विस्तृत प्रदेशों से सुशोभित है। फल-फूलों से लदे हुए पेड़-पौधे तथा पशु-पक्षियों की विविध चेष्टाओं से युक्त त्रिकूट पर्वत के ऊपर सुवर्णरत्न के समान वह सुन्दर नगर बहुत सजा हुआ है।

लंका में सीता की दयनीय स्थिति का चित्रण देखिए

'मलिनतरचिकुरवसनंपूण्डुदीनयाय् मैथिलितान्कृशगात्रियायेत्रयुम्।

भयविवशमवनियिलुरुण्डुंसदाहृदि भर्तावुतन्ने निनच्चु निनच्चलम्।।

नयनजलमनवरतमोषुकियोषुकिपतिनामत्तेरामरामेतिजपिक्कयुम्।

निशिचरिकळ् नडुविलष्लोडुमरुवुमीश्वरी नित्यस्वरूपिणियेक्कण्डुमारुती।।[3]

---

1. अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु पृ. 108
2. वही पृ. 324
3. वही पृ. 328

यहाँ सीता मलिन वेश पहनकर अत्यंत दुबली-पतली बनकर पति-पियोग के दुःख में राम-नाम का जप करके धरती पर गिरकर तथा राक्षसियों के बीच में निस्सहाय बनकर दीन विलाप करती है। अनुप्रास के ज़रिए प्राकृतिक, वैयक्तिक एवं पशु-पक्षियों के भावों को प्रकट करने में एषुत्तच्छन भी सफले रहे।

उपमा

अर्थालंकारों में उपमा लोकजीवन का प्राण है। रामचरितमानस में उपमा के अनेक उदाहरण हैं। श्रीराम को मनाने केलिए कटंकाकीर्ण पथ पर चलते हुए भरत के चरणों का चित्र प्रस्तुत करने केलिए प्रयुक्त एक छोटी सी किन्तु उपयुक्त और प्रभावशाली उपमा इस प्रकार है

'झलका झलकत पायन्ह कैसे। पंकज कोस ओस कन जैसे।।'[1]

यहाँ 'पंकज' और ओस की बूँदें प्राकृतिक उपमान हैं, जो लोकजनता केलिए प्रिय हैं। भरत के चरणों के छाल जिस प्रकार चमकते हैं, उसी प्रकार कमल की कली पर ओस की बूँदें चमकती हैं। एक दूसरी उपमा देखिए

'नील जलज तनु स्याम तमाला।'[2]

यहाँ राम के शरीर को नील कमल तथा तमाल के वृक्ष से उपमित किया है। पेड-पौधों से संबन्धित उपमान लोकजीवन से अटूट संवन्ध रखते हैं। ऐसे ही उपमान सहज एवं लोगों के लिए प्रिय होते हैं। लोकजीवन से संबन्धित उपमानों का प्रयोग तुलसी के लोकमूलक दृष्टिकोण को व्यक्त करता है। जैसे

---

1. मानस 2/203/1
2. वही 1/208/1

'कीरति भनिति भूति भलि सोई। सुरसरि सम सब कहँ हित होई।'[1]

इस उपमा में लोकमंगल की भावना भी है। अर्थात् कीर्ति, कविता और संपत्ति वही भली है जो गंगा की तरह सबका हित करती है। यहाँ श्रीराम की कीर्ति बडी सुन्दर एवं सबको अनन्त कल्याण प्रदान करनेवाली है। गंगा तो लोकजीवन से अत्यधिक संबन्धित है। गंगा के नाम से ही पवित्रता का भाव होता रहता है।

भरत का राम के प्रति प्रेम को दिखाने केलिए प्रयुक्त एक सुन्दर उपमा देखिए-

'रामहि बंधु सोच दिन राती। अंडन्हिं कमठ हृदउ जेहि भाँति।'[2]

भरत के दिन-रात के सोच को यहाँ पर कछुए का हृदय अंडों में रहने के समान कहकर उपमित किया है। 'अंडन्हि कमठ हृदय जेहि भाँति।' में लोकोपमान का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

इसी प्रकार सीता की ओर देखते हुए राम के मन में आनेवाले भावों का अलंकारों के सहारे तुलसीदास ने सुन्दर चित्र प्रस्तुत किये हैं।

'सियहि बिलोकि तकेउ धनु कैसे। चितव गरुरु लघु व्यालहि जैसे।'[3]

यहाँ राम को गरुड से और धनुष को साँप से उपमित किया गया है। गरुड जिस प्रकार साँप को देखता रहता है, उसी प्रकार सीता को देखने के बाद राम ने धनुष की ओर देखा। इसमें तुलसीदास ने सामान्य लोक में दिखाई पडनेवाले साँप एवं गरुड के उपमानों का सुन्दरता के साथ प्रयोग किया है। उसी प्रकार कटहल के फल को भी उपमान बनाया गया है। देखिए

---

1. मानस 1/13/5
2. वही 2/6/4
3. वही 1/258/4

'मुनि मग माझ अचल होइ वैसा। पुलक सरीर पनस फल जैसा।'[1]

यहाँ राम को देखने पर अगस्त्य मुनि का शरीर रोमाञ्च से कटहल के फल के समान हो गया। कटहल का फल काँटों से भरा रहता है। यह बात हर किसी को विदित है। कटहल का फल लोकप्रिय फल है और इस प्रकार के उपमान का प्रयोग यह साबित करने में सक्षम है कि तुलसी की अलंकार योजना में लोकतत्व की प्रमुखता रही है।

एषुत्तच्छन भी प्राकृतिक उपादानों को उपमान के रूप में प्रयुक्त करने में सफल रहे। उदाहरण देखिए

'सहस्रकिरणन्मारोरुमिच्चोरुनेरम् सहस्रायुतमुदिच्चुयरुन्नतु पोले।'[2]

अर्थात् श्रीराम के जन्म पर ऐसा प्रतीत हुआ कि करोडों सूर्य एक साथ उदय हो गए हैं। यहाँ प्राकृतिक शक्ति 'सूर्य' उपमान है, जो लोक से बहुत संबद्ध है।

एक सुन्दर उपमा देखिए

'मैथिलिमयिल्पेडपोले संतोषंपूण्डाळ्।'[3]

अर्थात् मैथिली (सीता) मोरनी की तरह हर्षित हुई। यहाँ श्रीराम द्वारा धनुष तोडने पर जानकी की जो खुशी है, उसे मोरनी से उपमित किया है। इससे सुन्दर उपमान का प्रयोग इस संदर्भ में दूसरा कोई नहीं हो सकता।

उसी प्रकार ताटका के धरती पर गिरने की स्थिति को एषुत्तच्छन ने एक सुन्दर उपमा के द्वारा चित्रित किया है। जैसे

---

1. मानस 3/9/8
2. अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु - पृ. 27
2, वही 57

'पारतिल्मलचिरकट्टुवीणतुपोले

घोररूपिणियायताडकवीणाळल्ले।'[1]

वज्रायुद्ध के प्रहार से पर्वत जिस प्रकार पंखविहीन हो गिर पडा इसी प्रकार ताटका राम-बाण से भयंकर रूप के साथ धरती पर गिर पडी। यहाँ राम बाण की वज्रायुध के प्रहार तथा ताडका के गिरने को पर्वत के गिरने से उपमित किया है। अत्यंत सुन्दर ढंग से जनता के परिचित उपमानों का प्रयोग एषुत्तच्छन ने किया है। यहाँ पर प्रयुक्त पर्वत का उपमान पुराण कथा से संबन्धित है जो लोक के अत्यधिक निकट है।

अध्यात्मरामायणम् में उपमाओं का जाल भी देखा जा सकता है। जैसे

'पंकजलोचनन् भक्त परायणन्

नीलोत्पलदलश्यामलविग्रहन्। नीलोत्पदललोल विलोचनन्

* * * * * * *

नीलोल्पलाभन् निरुपमन् निर्मलन्। नीलगलप्रियन् नित्यन् निरामयन्।'[2]

(अर्थात् कमल, कुवलय की पंखुडी आदि अनेक उपमानों से विभूषित भक्तों को मुक्ति देनेवाला, निरुपम, नील ग्रीवा से युक्त श्रीरामजी की शोभा का चित्रण यहाँ हुआ है।)

उत्पेक्षा :- सादृश्यमूलक अलंकारों की श्रेणी में उत्प्रेक्षा अलंकार का भी महत्वपूर्ण स्थान है। इनके प्रयोग में भी तुलसी और एषुत्तच्छन अत्यन्त सफल रहे हैं। मानस में उत्प्रेक्षाओं का प्रयोग अनेक जगहों पर हुआ है। वनवास जाने का संकल्प करती हुई। सीता के नूपुरों की दीन याचना सचेत कलाकार गोस्वामीजी की निम्न पंक्तियों में देखी जा सकती है।

---

1. अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु - पृ. 41
2. वही पृ. 77

'चारु चरन नख लेखति धरनी। नुपुर मुखर मधुर कवि बरनी।
मनहुँ प्रेम बस बिनती करहीं। हमहि सीय पद जनि परिहरहिं।'[1]

इस चौपाई के एक-एक शब्द से सौन्दर्य का उत्स छलक रहा है। नूपुरों की याचना से सीता के वनगमन की करुण परिस्थिति का बडा ही हृदयस्पर्शी चित्रण तुलसी ने किया है। यह लोकजनता केलिए अत्यंत प्रिय बन जाता है। लोकजीवन का सहज चित्रण इन पंक्तियों में अलंकार के ज़रिये और भी सुन्दर बन पडा है।

तुलसी ने एक उत्प्रेक्षा के द्वारा पौराणिक आख्यान के माध्यम से भारतीय संस्कृति की मर्यादावादिता दिखायी है। देखिए

'अस कहि फिर चितए तेहि ओरा। सिय मुख ससि भए नयन चकोरा।
भए बिलोचन चारु अचंचल। मनहूँ सकुचि निमि तजे दिगंचल।।'[2]

यहाँ सीताजी के मुखरूपी चन्द्रमा को निहारने केलिए श्रीराम के नेत्र चकोर बन गये। यहाँ निमि का उल्लेख है जिनका सबकी पलकों मे निवास माना गया है, लडकी दामाद के मिलन प्रसंग को देखना उचित नहीं, इस भाव से सकुचाकर निमि ने मानो पलकें गिरना छोड दीं। (पलकों में रहना छोड दिया, जिससे पलकों का गिरना रुक गया।) यहाँ इस उत्पेक्षा के माध्यम से पौराणिक आख्यान से तुलसी ने लोक संस्कृति को भी जोड दिया है।

अभीष्टप्राप्ति की सीमाहीनता को दिखानेवाली इस उत्पेक्षा को देखिए

'अस अनंदु अचिरिजु प्रति ग्रामा। जनु मरुभूमि कल्पतरु जामा।।'[3]

---

1. मानस 2/57/3
2. वही 1/229/2
3. वही 2/222/4

आनन्द और आश्चर्य गाँव-गाँव में हो रहा है मानों मरुभूमि में कल्पवृक्ष उग आया हो। यहाँ कैकेयी तथा भरत को मरुभूमि एवं कल्पवृक्ष माना गया है। अत्यंत रोचक उत्प्रेक्षा का प्रयोग यहाँ पर हुआ है।

राम वनवास की बात सुनते समय राजा की स्थिति इस उत्प्रेक्षा अलंकार के माध्यम से देखी जा सकती है।

'ब्याकुल राउ सिथिल सब गाता। करिनि कलपतरु मनहुँ निपाता।।
कंठु सूख मुख आव न बानी। जनु पाठीनु दीन बिनु पानी।।'[1]

व्याकुल राजा की अवस्था को हथिनी ने कल्पवृक्ष को उखाड फेंकने तथा पानी के बिना मछली के तडपते रहने के माध्यम से व्यक्त किया है। ये सब लोकजनता केलिए अत्यन्त परिचित उपमान हैं जिन के प्रयोग से प्रसंग में प्रभावात्मकता आई है।

सीताजी के चंचल नेत्रों का सौंदर्य निम्नलिखित उत्प्रेक्षा में दिखाया गया है। जैसे

'प्रभुहि चितइ पुनि चितव महि राजत लोचन लोल।
खेलत मनसिज मीन जुग जनु बिधुमंडल डोल।।'[2]

यहाँ सीता के नेत्र इस प्रकार शोभित हो रहे है कि चन्द्रमण्डलरूपी डोल में कामदेव की दो मछलियाँ खेल रही हों। ये प्राकृतिक उपमान वर्णन की तीव्रता को बढाते हैं।

---

1. मानस 2/34/1
2. वही 1/258

अध्यात्मरामायणम् में एषुत्तच्छन ने भी उत्प्रेक्षा का सुन्दर प्रयोग किया है। जैसे-

एन्नुकैकेयिपर‌ञ्ञानन्तरं मन्नवन्मोहिच्चु वीणानवनियिल्

वज्रमेट्ट्राद्रिपतिच्चपोलेभुवि सत्वरचेतसावीणितुभूपनुं।'[1]

(अर्थात् जब कैकेयी ने राजा दशरथ से राम को वन भेजने केलिए कहा, तब राजा बेहोश होकर धरती पर गिर पडा, मानों कोई पर्वत वज्र के प्रहार से गिरा हो।) यहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार देखा जा सकता है, जो प्रसंग के सौंदर्य एवं गांभीर्य का बढ़ाता है।

दूसरी एक उत्प्रेक्षा देखिए

'अध्वरत्तिंकल्चेन्नु शुनकन् मंत्रंकोण्डुशुद्धमां पुरोडाशंकोण्डुपोकुन्नपोले।'[2]

(अर्थात् जब रावण सीता को चुराकर ले जाता है, उसी समय जटायु का कथन है कि कुत्ता जिस प्रकार यज्ञशाला में प्रवेश करके मंत्रशुद्ध यज्ञ के अन्न को ले जाता है, यह उसी तरह है।) यज्ञशाला की पवित्रता एवं मंत्र के ज़रिए पवित्र बनाए हुए यज्ञान्न का परिचय आम लोगों के बहुत हुआ करता है। सीता की पवित्रता का चित्रण इसमें जितना सशक्त बन गया है उतना और किसी उपमान की सहायता से संभव नहीं हो सकता था। यहाँ प्रभावशाली ढंग से उत्प्रेक्षा का चित्रण किया है।

राम-लक्ष्मण की शोभा का वर्णन इस उत्प्रेक्षा के सहारे यों चित्रित है। जैसे

'नक्षत्रमण्डलमध्येविळङ्ङुन्न नक्षत्रनाथनुं भास्करदेवनुं

आकाशमार्गे विळङ्ङुन्नतुपोले लोकनाथन्मार तेळिञ्ञुविळङ्ङिनार्।'[3]

---

1. अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु पृ. 96
2. वही पृ. 228
3. वही पृ. 375

(तारों से घिरे सूर्य-चन्द्र जिस प्रकार आकाश में दिखाई पडते हैं, उसी प्रकार सेना के बीच में राम-लक्ष्मण शोभित हुए।) उत्प्रेक्षा का चमत्कार यहाँ प्रभावपूर्ण रहा है।

रूपक

तुलसी साहित्य में रूपकों की जैसी स्वाभाविकता, व्यापकता और पूर्णता दृष्टिगत होती है, वैसी हिन्दी साहित्य के किसी भी कवि में दृष्टिगत नहीं होती।

'रिधि सिधि संपति नदी सुहाई। उमगि अवध अंबुधि कहुँ आई।।
मीनगन पुर नर नारि सुजाती। सुचि अमोल सुन्दर सब भाँति।'[1]

मानस की इन पंक्तियों में प्राकृतिक उपमानों का वर्णन है। ऋद्धि-सिद्धि और संपत्तिरूपी सुहावनी नदियाँ उमड़-उमड़कर अयोध्यारूपी समुद्र में आ मिलीं। नगर के स्त्री-पुरुष मणिगण के समान सब प्रकार से पवित्र, अमूल्य एवं सुन्दर हैं। ये रूपक लोकजीवन को गति प्रदान करने वाला है।

रूपक अलंकार का एक श्रेष्ठ रूप निम्नलिखित उदाहरण में देखा जा सकता है। जैसे

'रामकथा कलि पन्नग भरनी। पुनि बिबेक पावक कहुँ अरनी।'[2]

यहाँ रामकथा कलियुगरूपी साँप केलिए मोरनी है। और विवेकरूपी अग्नि को प्रकट करने केलिए अरणी (मन्थन की जानेवाली लकडी) है। इसमें दो रूपक हैं। एक तो कील और पन्नग में दूसरा रामकथा और भरनी में स्थिर हो गया है। यहाँ रामकथा भरनी की एकरूपता रूपक कलिपन्नग पर निर्भर है।

---

1. मानस 2/1/2
2. वही 1/30/3

और एक रूपक देखिए

'नाम पाहरू दिवस निसि ध्यान तुम्हारा कपाट।
लोचन निज पद जंत्रित जाहिं प्रान केहिं बाट।।'[1]

यहाँ विरह-विधुरा सीता की निःसहाय दशा का चित्रण कारागर में पडे हुए एक बन्दी के स्वरूप को लेकर कारागर की संपूर्ण परिपार्श्विक स्थितियों के साथ जिस कुशलता से कर दिखाया है, वह देखते ही बनता है। 'तिस पर लोचन निज पद जंत्रित' की कल्पना के द्वारा कवि ने इस संपूर्ण आलंकारिक अभिव्यक्ति को एक ठोस सांस्कृतिक आधार पर देकर अधिक मर्मस्पर्शी बना दिया है।

उपमेय-उपमानों की भरमार इस रूपक में देखी जा सकती है। जैसे

'बिपति बीजु बरषा रितु चेरी। भुइँ भइ कुमति कैकेई केरी।।
पाइ कपट जलु अंकुर जामा। बर दोउ दल दुःख फल परिनामा।।'[2]

यहाँ विपत्ति बीज है तो दासी वर्षा-ऋतु है, कैकेयी की कुबुद्धि उस बीज के बोने केलिए ज़मीन हो गयी। कपटरूपी जल पाकर उसमें अङ्कुर फूट निकला। दोनों वरदान उस अङ्कुर के पत्ते हैं और अंत में इसका दुखरूपी फल भी है। पारिवारिक स्थिति को प्राकृतिक दृश्य से उपमित करने पर रूपक अलंकार की सुन्दरता ओर बढ़ गई है।

अध्यात्मरामायणम् में भी रूपक का प्रयोग है। उदाहरण केलिए

'राघवनित्थं पऱञ्ञतुकेट्टोरु राकशशिमुखितानुमरुळचेय्तु।'[3]

---

1. मानस 1/5/30
2. मानस 2/22/3
3. अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु पृ. 116

(अर्थात् श्रीरामचन्द्रजी के वचन सुनकर सीता का जो कथन है, इसका चित्रण है। यहाँ सीता को 'चन्द्रमुखी' कहा है।) यह रूपक अलंकार का एक उत्तम उदाहरण है। रूपक अलंकार की गरिमा इन पंक्तियों में और अधिक स्पष्ट हुई है

'वैतरण्याख्ययाकुन्नतु तृष्णयुं
संतोषमाकुन्नतुनंदनवनं संततंशांतियेकामसुरभिकेळ्।'[1]

(अर्थात् प्रेतलोक की नदी वैतरणी आशा है। सुरलोक का नंदन वन संतोष है। इच्छित वस्तुओं को प्रदान करनेवाली सामसुरभी मन की शांति है।) इस रूपक के माध्यम से हमारी मानसिक गतिविधियों का चित्रण देखा जा सकता है।

इन अलंकारों के अलावा लोक से जुडे हुए कुछ अलंकार भी हैं। जैसे दृष्टांत, अर्थान्तरन्यास, लोकोक्ति, अतिशयोक्ति आदि। लोकमन को प्रभावित करने केलिए ये अलंकार सक्षम रहे हैं। मानस एवं अध्यात्मरामायणम् में प्रयुक्त अलंकारों में 'दृष्टांत' अलंकार का महत्वपूर्ण स्थान है। इस अलंकार में बिंब-प्रतिबिंब भाव की प्रतिष्ठापना देखी जा सकती है। मानस के अयोध्याकाण्ड में सीता के वनगमन् की असंगति का तीव्र अनुभव करनेवाला यह दृष्टांत सटीक है।

'हंसगमनि तुम्ह नहिं बन जोगू। सुनि अपयसु मोहिदेइहि लोगु।।
मानस सलिल सुधाँ प्रतिपाली। जिअइ कि लवन पयोधि मरालि।।
नव रसाल बन बिहरनसीला। सोह कि कोकिल विपिन करीला।।'[2]

यह अलंकार लोकजीवन से अधिक मात्रा में जुडा हुआ है। क्योंकि हँसिनी, कोयल जैसी निरीह चिडियों से सीता की तुलना की गई है। इसी प्रकार भरत के सौजन्य

---

1. अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु पृ. 109
2. मानस 2/62/3-4

पर अविचल भाव से टिके हुए राम के आत्मविश्वास को मूर्तिमान करनेवाले इस मानसी दृष्टांत पर भी एक दृष्टि डाली जा सकती है

'भरतहि होइ न राजमदु बिधि हरि हर पद पाइ।

कबहुँ कि काँजी सीकरनि छीरसिंधु बिनसाइ।।'[1]

अध्यात्मरामायणम् में देखिए

'भोगड़ळेल्लां क्षणप्रभाच्चलं वेगेननष्टमामायुस्सु मोर्कनी

वह्नि संतप्तलोहस्थांबुबिन्दुना सन्निभंमर्त्यजन्मं क्षणभंगुरम्।'[2]

(अर्थात् सांसारिक सुख-सुविधाएँ क्षणिक हैं। जल्दी से आयु भी घट जाती है। मानव जीवन तप्त लोहे पर पडे हुए जलकण के समान नष्ट हो जाता है।) यहाँ मनुष्य की क्षणभंगुरता का बिंब दृष्टांत अलंकार के ज़रिए प्रस्तुत किया है। पहले वाक्य का बिंब दूसरे वाक्य के तप्त लोहे पर पडे हुए जलकण में प्रतिबिंबित होने के कारण यहाँ दृष्टांत अलंकार है। दृष्टांत के जरिये इसमें एक महत्वपूर्ण लोकसत्य की अभिव्यक्ति हुई है।

दूसरा उदाहरण देखिए

मृत्युवशगतनाय पुरुषनुसिद्धौषधङ्ङळुमेल्क्कयिल्लेतुमे।

(मृत्यु के वश में आनेवालों को औषधियों से भी कोई फायदा नहीं होता।) यहाँ रावण से विभीषण का कथन है। यहाँ बिंब-प्रतिबिंब का भाव है। इस अलंकार के ज़रिए भावों की अभिव्यक्ति में प्रभावात्मकता आ गयी है।

मानस एवं अध्यात्मारामायणम् में अर्थान्तरन्यास अलंकार का प्रयोग अधिक मात्र में है। लोक से जुडा हुआ एक अलंकार है यह। विशेष का सामान्य के ज़रिए समर्थन,

---

1. मानस 2/231
2. अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु पृ. 108

और सामान्य का विशेष के जरिए समर्थन इसकी विशेषता है। मानस में इस अलंकार का प्रयोग देखिए

'होहि कुठायँ सुबंधु सुहाए। ओड़िअहिं हाथ असनिहु के धाए।'[1]

यहाँ रामचन्द्रजी ने चित्रकूट में भरत को पिता की आज्ञा का पालन करके चौदह वर्ष तक वनवास करने में सहायक रहने का अनुरोध करते हुए पहले विशेष बात कही कि अच्छे भाई कठिन समय में सहायक होते हैं, फिर एक सामान्य प्रमाण के ज़रिए उसकी पुष्टि की गई कि वज्र के भी प्रहार से देह की रक्षा करने केलिए उसे हाथ से रोका जाता है।

विशेष का सामान्य से समर्थन करनेवाला और एक उदाहरण देखिए

'टेढ़ जानि सब बंदह काहू। बक्र चंद्रमहि ग्रसइ न राहू।।'[2]

यहाँ 'टेढ़ जानि शंका सब काहू' सामान्य कथन है। इस सामान्य कथन का समर्थक 'बक्र चंद्रमहि ग्रसै न राहू' जैसे विशेष कथन से किया है।

अध्यात्मरामायण में प्रयुक्त एक अर्थान्तरन्यास इस प्रकार है

'दुर्जनसंसर्गमेट्ट्म्कलवे वर्णिक्कवेणं प्रयत्नेनसल्पुमान
कज्जलंपट्टियाल् स्वर्णवुंनिष्प्रभं।'[3]

यहाँ मंथरा के दुरुपदेश से ही मलिन बनने वाली कैकेयी की स्थिति और इस गन्दगी के दूर रहने पर वह किस प्रकार ठीक हो जायेगी इस का चित्रण हुआ है। यहाँ प्रस्तुत

---

1. मानस 2/305/4
2. मानस 1/280/3
3. अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु - पृ. 94

अर्थ का अप्रस्तुत अन्य अर्थ के स्थापन (कीचड से स्वर्ण भी निष्प्रभ बन जाता है।) से समर्थन हो जाता है।

लोकोक्तियों का प्रयोग करनेवाले लोकोक्ति अलंकार का लोकजीवन में महत्वपूर्ण स्थान है। मानस में इसका उदाहरण देखिए

'करि कुरूप बिधि परबस कीन्हा। बवा सो लुनिअ लहिअ जो दीन्हा।।
कोउ नृप होउ हमहि का हानी। चेरि छाड़ि अब होब कि रानी।।'[1]

यहां मंथरा के कथन में लोकोक्ति है कि जो बोया सो काटना पडेगा। उसी प्रकार दूसरी एक लोकोक्ति है

'ऊँच निवासु नीचि करतूती। देखि न सकहिं पराइ बिभूती।।'[2]

देवताओं की बुद्धि ओछी है इस पर यह उक्ति है कि इनका निवास तो ऊँचा है पर इनकी करनी नीची है। यह अत्यंत लोकमूलक उक्ति है।

अध्यात्मरामायणम् में ही लोकोक्ति अलंकार का एक उदाहरण देखिए

'कज्जलंपट्ट्रियाल स्वर्णवुं निष्प्रभं।'[3]

(अर्थात् कीचड में पडने पर स्वर्ण भी निष्प्रभ हो जाता है।) यहां मंथरा की कुटिलता में फँसकर कैकेयी कुचाल चलती है। इसको इस लोकोक्ति से युक्त अलंकार के माध्यम से व्यक्त किया है।

दूसरा एक उदाहरण देखिए

'नित्यवुं चेय्युन्न कर्मफलगुणं कर्तावोषिञ्ञु मट्ट्रन्यन् भुजिक्कुमो।'[4]

---

1. मानस 2/15/3
2. वही 2/11/3
3. अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु पृ. 94
4. वही प-. 139

यहाँ कर्मफल के महत्व पर जोर दिया गया है। किसी भी व्यक्ति को कर्म का फल स्वयं भोगना पडता है। यह तत्व लोक में अत्यंत प्रसिद्ध है।

लोकमूलक अलंकारों में अतिशयोक्ति अलंकार का भी प्रयोग तुलसी तथा एषुत्तच्छन ने किया है। तुलसी ने अतिशयोक्ति के द्वारा अपने विशिष्ट पात्रों एवं उनसे संबद्ध वस्तुओं का बडा ही भव्य तथा लोकातिशयी वर्णन किया है। जैसे

'उपरोहित जेवनार बनाई। छरस चारि बिधि जसि श्रुति गाई।।
मायामय जेहि कीन्ही रसोई। बिंजन बहु गनि सकइ न कोई।।'

यहाँ मायामयी रसोई का तथा उसमें बनाये गये व्यंजनों का वर्णन है।

वस्तुतः तुलसी और एषुत्तच्छन ने मानस और अध्यात्मरामायणम् में अलंकारों के प्रयोग केलिए लोकतत्व का सहारा ग्रहण किया। लोकजीवन के प्राकृतिक, पशु पक्षियों से संबंधित सभी उपमानों को ग्रहण करते हुए उन्हें यथास्थान प्रयुक्त करके जनता के मन को प्रभावित करने में तुलसी तथा एषुत्तच्छन सफल रहे। उनके अधिकांश अलंकार लोकमूलक रहे। इनमें अनुप्रास, उपमा, उत्प्रेक्षा एवं रूपक बडे महत्व के रहे।

प्रतीक योजना

काव्य में अलंकार, छंद आदि की तरह सौंदर्य बढानेवाला एक तत्व है प्रतीक। जिस तथ्य को साधारण भाषा व्यक्त नहीं करती, प्रतीक उसे सहज ही अभिव्यक्त करता है। काव्य में प्रतीकों की उपयोगिता तथा महत्ता का आधार है कम से कम शब्दों द्वारा अधिक से अधिक भावों की सुन्दर व्यंजना करने की उनकी शक्ति। 'सांकेतिकता, सन्दर्भगर्भत्व और संक्षिप्तता के कारण उनमें लक्षणा का चमत्कार सर्वाधिक होता है।'[1] वास्तव में

---

1. तुलसी काव्य की लोकतात्विक संरचना - गया सिंह - पृ. 172

प्रतीक अमूर्त अथवा उद्देश्य का मूर्त या दृश्यविधान है। 'प्रतीक यद्यपि अलंकार का ही एक रूप माना गया है फिर भी इसका महत्व इतना अधिक है कि पाश्चात्य काव्यशास्त्र में इसे शिल्पविधि के महत्वपूर्ण अंग के रूप में स्वीकार किया गया है।'[1]

जब से मानव ने प्रतीक से काम लेना सीखा, तबसे भाषा का विकास भी धीरे-धीरे हुआ। अभिव्यक्ति में विशदता, संक्षिप्तता और व्यापकता के आने के साथ ही इन प्रतीकों की आत्मा से लोकसंस्कृति झाँकती दीखती है। पं. रामचन्द्रशुक्ल का कथन बहुत उपयुक्त माना जा सकता है कि 'किसी देवता का प्रतीक सामने आने पर जिस प्रकार उसके स्वरूप और विभूति की भावना सामने आ जाती है, उसी प्रकार काव्य में आये हुए कुछ विशेष मनोविकार भावनाओं को जागृत करते हैं कुमुदिनी शुभ्रहास की, चन्द्र मृदुल आभा की, आकाश सूक्ष्मता और अनन्तता की। इसी प्रकार सर्प से क्रूरता और कुटिलता का, अग्नि से तेज और क्रोध का, चातक से निस्वार्थ प्रेम का संकेत मिलता है।'[2] अर्थात् प्रतीक मानव मन की असीम गहराइयों से उत्पन्न आत्माभिव्यक्ति का सूक्ष्म माध्यम है।

लोककाव्य में प्रतीक का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। लोककवि अपनी साधनात्मक अनुभूति केलिए जनमानस से गृहीत प्रतीकों के माध्यम से मानस की गहराइयों में उफनते विचारों अथवा भावों को अभिव्यक्त करता है। वही लोककवि जनमानस में प्रचलित उनके दैनंदिन जीवन से गृहीत प्रतीकों के माध्यम से अपने विचारों और भावों की अभिव्यक्ति करता है। तुलसीदास के रामचरितमानस और एषुत्तच्छन के अध्यात्मरामायणम् में लोक से संबन्धित अनेक प्रतीक देखे जा सकते हैं। वर्ण्य विषय को ग्राह्य बनाने केलिए कवि ने जिन कल्पनाओं, प्रतीकों और उपमानों का सहारा लिया है, वे सब जनजीवन के

1. आधुनिक हिन्दी कविता में शिल्प-कैलाश वाजपेयी - पृ. 51
2. चिन्तामणि भाग-2 पं शमचन्द्र शुक्ल पृ. 118

अत्यधिक निकट हैं। परंपरित, समाजशास्त्रीय एवं मनोवैज्ञानिक प्रतीकों का उल्लेख रामचरितमानस एवं अध्यात्मरामायणम् को और सुन्दर बनाता है।

परंपरित प्रतीकों में पात्र-प्रतीक तथा प्रकृति के परंपरागत या पशु-पक्षियों से संबन्धित प्रतीक मिल जाते हैं। मानस तथा अध्यात्मरामायणम् में लोकनायक राम का चित्र है, जो मर्यादा, ब्रह्म ओर सत् के प्रतीक हैं। भ्रातृप्रेम और त्याग के प्रतीक के रूप में भरत आता है तो कर्तव्यनिष्ठा, प्रेम की अनन्यता और बलिदान भावना के प्रतीक लक्ष्मण हैं। वीरता और आज्ञापालन के प्रतीक शत्रुघ्न हैं। सत्य-रक्षा और दृढ़व्रत के प्रतीक है दशरथ। पतिव्रता का प्रतीक सीता, कुटिलता एवं ईर्ष्या का प्रतीक मंथरा, सौतियाडाह का प्रतीक कैकेयी, अहंकार, तमोगुण और आसुरी प्रकृति का प्रतीक रावण, सेवा भावना और वीरत्व का प्रतीक हनुमान, वात्सल्यप्रेम और मातृत्व-भावना का प्रतीक कौशल्या, वैराग्य और ज्ञान का प्रतीक जनक ये सब लोक के पात्र हैं। अतः लोकजीवन में आज भी इनका महत्व है। ये सब आदर्श पात्र-प्रतीक भी हैं।

मानस में कुछ परंपरित प्रतीकों को नए ढंग से उपस्थित किया गया है। इसमें सुधाकर भाग्य का और राहू क्रमशः अभाग्य, अमंगल और अपशकुन का प्रतीक है। मानस के अयोध्याकाण्ड में इसका उल्लेख इस प्रकार है कि

'लिखत सुधाकर गा लिखि राहू। बिधि गति बाम सदा सब काहू।'[1]

'गंगा' नदी को हम पवित्रता, कष्ट निवारण, आदि का प्रतीक मानते हैं। यह सब प्रकार से सुख देनेवाली है। जैसे

'गंगा सकल मुद मंगल मूला। सब सुख करनि हरनि सब सूला।'[2]

---

1. मानस 2/54/2
2. वही 2/86/2

गंगा आनंद-मंगलों का मूल तथा सब पीडाओं को हरनेवाली हैं।

अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में भी सीता द्वारा गंगा की वन्दना की गई है। जैसे

'गंगे! भगवती! देवी! नमोस्तुते।'[1]

चिंतामणि, कल्पतरु, कामधेनु, काँच, मणि, अमृत आदि परंपरागत एवं पौराणिक प्रतीक हैं।

चिंतामणि संतोष प्रदान करनेवाला है। अध्यात्मरामायणम् में यों कहा हैं

'संतोषसंतानसंतानमे! चिंतामणे।'[2]

मनचाहे पदार्थ प्रदान करनेवाले या इच्छित फल देनेवाले के प्रतीक हैं कल्पतरु और कामधेनु। मानस में इनका उल्लेख है

'नामु राम को कल्पतरु कील कल्यान निवासु'[4]

यहाँ कलियुग में राम का नाम कल्पतरु के समान होगा। अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में यों वर्णित है

'संततं शांतिये कामसुरभिकेळ्।'[5]

यहाँ कामसुरभि हमारे मन को शांति प्रदान करके इच्छित फल देती है।

---

1. मानस 2/86/2
2. अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु पृ. 132
3. वही पृ. 47
4. मानस 1/26
5. अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु - पृ. 109

जब भरत आदि भरद्वाज मुनि के आश्रम में पहुँचते हैं, तब उन्हें भोजन देने केलिए मुनि कामधेनु का स्मरण करते हैं।

'ध्यानवुं चेय्तितु कामसुरभियेतल्क्षणेकाननं।'[1]

इस प्रकार इच्छित फल प्रदान करनेवाले या मनुष्य के सारे मनोरथों को पूर्ण करनेवाले कल्पवृक्ष और कामधेनु हमारी संस्कृति के अक्षयकोष हैं।

प्रकाश के प्रतीक के रूप में मरकतमणि को मानते हैं। मानस में यों कहा है:-

'मरकत सयल पर लरत दामिनि कोटि सों जुग भुजग ज्यों।।'[2]

मृत्युरूपी संसार से उबारने का प्रतीक है अमृत। जैसे

'सुधा सुरा सम साधु असाधु।'[3]

अमृत हमें अत्यंत मीठापन प्रदान करता हैं।

अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में यों कहा है

पीयुषसाम्यमधुद्रोणीसंयुतपेयभक्ष्यान्नसहितङ्ङळायुळ्ळ।[4]

अमृत के समान स्वादिष्ट मधु तथा भोजन सामग्री का उल्लेख है। यहाँ मीठेपन का प्रतीक भी है।

इसके अलावा लोकजीवन से गृहीत और लोकवाणी से मिलते-जुलते कुछ प्रतीक हैं। प्राचीनकाल से ही इनका प्रयोग होता रहा है। मानस तथा अध्यात्मरामायणम् में

---

1. अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु - पृ. 164
2. मानस 3/6
3. वही 1/4/3
4. अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु पृ. 296

तुलसी तथा एषुत्तच्छन ने भी इसका उल्लेख किया है। मछली, मोर, कौआ, हंस, जोंक, चकोर, उल्लू, साँप, कोकिल, बादल, कमल आदि प्रतीकों से भाषा की व्यंजनाशक्ति का संबन्ध है, साथ ही ये कवि की लोकतात्विक चेतना के प्रमाण भी हैं। मानस तथा अध्यात्मरामायणम् में इन प्रतीकों के माध्यम से हमारा सांस्कृतिक तथा प्राकृतिक अवबोध ओर बढ जाता है। मानस में देखिए

'बिकसे सरसिज नाना रंगा। मधुर मुखर गुंजत बहु भृंगा।।
बोलत जलकुक्कुट कलहंसा। प्रभु बिलोकि जनु करत प्रसंसा।।'[1]

यहाँ कमल निर्मलता का प्रतीक है। इसके स्पर्श तथा दर्शन से सुख मिल जाता हैं। भारतीय संस्कृति में इसका श्रेष्ठ स्थान है। पंकज, पद्म, नलिन, राजीव, अरविंद आदि अनेक नाम बताए गए है। उसी प्रकार हंस विवेक, निर्मलता, पावनता और निष्कपटता का प्रतीक है।

प्रेम के प्रतीक के रूप में चक्रवाक या चकोर पक्षी को मानते हैं। जैसे

'सरद इंदु तन चितवत मानहुँ निकर चकोर।'[2]

यहाँ चकोर चन्द्रमा की ओर देख रहा है। अध्यात्मरामायणम् में भी इन पक्षियों का उल्लेख है। देखिए

'आर्द्रपक्षक्रौंचहंसादिपक्षिकळूर्ध्वदेश परन्नारतिल्निन्नुडन्।'[3]

---

1. मानस 3/39/1-2
2. वही 3/12
3. अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु - पृ. 295

यहाँ झील से उडनेवाले क्रौंच, हंस आदि पक्षियों का उल्लेख है। ये उस नीर क्षीर जल के समान निर्मलता के प्रतीक भी हैं। नागिन को दुष्टता एवं कुटिलता का प्रतीक माना जाता है। मानस में देखिए

'सूपनखा रावन कै बहिनी। दुष्ट हृदय दारुन जस अहिनी।'[1]

यहाँ शूर्पणखा नागिन जैसी चाल चलनेवाली है।

इस प्रकार सिंह-शौर्य का, अग्नि तेज का, गुरु-ज्ञान का, मक्खी काम में बाधा डालने का, नदी गतिशीलता का, सूर्य तेज या प्रकाश का, उल्लू मूर्खता का प्रतीक है। हमारी संस्कृति में बंसीनाद को आकर्षण का प्रतीक भी मानते हैं। जैसे

'बनसी सम प्रिय कहहिं प्रबीना।'[2]

ओसकण को तुच्छता या क्षणिकता का प्रतीक मानते हैं। अध्यात्मरामायण में इसका सुन्दर उदाहरण देखिए

'वह्निसंतप्तलोहस्थांबुबिन्दुना सन्निभंमर्त्यजन्मं क्षणभंगुरं।'[3]

यहाँ मनुष्य का जीवन तप्त लोहे पर पडे हुए ओसकण की तरह क्षणिक है। यहाँ ओसकण क्षणिकता का प्रतीक है।

समाजशास्त्रीय प्रतीकों में सबसे पहले अंगद-सुग्रीव तथा हनुमान आते हैं। 'समाजशास्त्र की दृष्टि से ये बानर 'टोटेम वर्ग' के पात्र हैं। 'रामकथा में इनकी सहायता और सेवा आर्यसंस्कृति का समर्थन और स्वीकृति व्यक्त करती है।'[4] अतः सामाजिक

---

1. मानस 3/16/2
2. वही 3/43/4
3. अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु पृ. 108
4. तुलसी काव्य की लोकतात्त्विक संरचना डॉ. गया सिंह - पृ. 175

प्रतीक के रूप में ये सान्धि और मित्रता के प्रतीक बन गए हैं। जनजातियों के प्रतीक के रूप में निषाद गुह कोल भिल्ल किरातवर्ग आते हैं। ये भी सेवाधर्म और समर्पणमूलक प्रवृत्ति के द्वारा रामकथा में ग्राम्य संस्कृति तथा वन्य संस्कृति का प्रतिनिधित्व करते हैं। हमारे समाजविरोधी तत्वों के प्रतीक के रूप में रावण आदि राक्षसवर्ग आते हैं। षड्यंत्र और संघर्ष में लिप्त रहने के कारण ये अकल्याणकारी शक्तियों के रूप में मान्य हुए हैं। इन प्रतीकों का विकास लोकचेतना और लोकानुभव के रूढ़ संस्कारों से हुआ है।

मनोवैज्ञानिक प्रतीकों में पात्रों के चरित्रों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया जाय तो कथा की प्रतीकात्मक स्थिति को और अधिक व्यक्त किया जा सकता है। मानस तथा अध्यात्मरामायणम् में काम अहं और वात्सल्य जैसे मनोविज्ञान की तीन मुख्य वृत्तियों का क्रियात्मक विस्तार मिलता है। इन वृत्तियों के बाधित होने पर क्रोध का उदय होता है। राम और रावण की शत्रुता का मूल कारण सीता स्वयंवर था, जिसमें राम सफल तथा रावण असफल हुए। इसके बाद वैर का आरंभ शूर्पणखा का क्रोध था, जो काम की बाधा से उत्पन्न हुआ। उस समय शूर्पणखा कुछ भी करने केलिए तैयार बन जाती है। मानस में कहा है

'तब खिसिआनि राम पहिं गई। रूप भयंकर प्रगटत भई।।'[1]

यह काम क्रोध में परिणत हो गया। अध्यात्मरामायण में भी इसका उल्लेख है

'कामवुमाशाभंगंकोण्डुकोपवुमतिप्रेमवुमालस्यवुं पूण्डु राक्षसियप्पोळ्।'[2]

(यहाँ काम एवं आशा का भंग होने पर शूर्पणखा के मन में क्रोध उत्पन्न हो जाता है।)

---

1. मानस 3/16/10
2. अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु पृ. 207

कैकेयी का क्रोध वात्सल्य और अहं की बाधा का परिणाम भी है। रावण का क्रोध एक स्वार्थी और अत्याचारी का दंभ है तो राम का क्रोध समाजिक न्याय के संरक्षक का अमर्ष है। मानस में काम, क्रोध लोभ आदि को अज्ञान की प्रबल सेना माना गया हैं। जैसे

'काम क्रोध लोभादि मद प्रबल मोह कै धारि।'[1]

अध्यात्मरामायण में यों कहा है

'तत्रकामक्रोधलोभमोहादिकळ् शत्रुक्कळाकुन्नतेत्रु मरिक नी।'[2]

(काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि हमारे शत्रु हैं।) इच्छा, क्रोध, अहं, बुद्धिहीनता अत्याशा आदि बुरी प्रवृत्तियों का प्रतीक है।)

मानस में इसको अत्यंत गंभीर एवं सुन्दर उदाहरण के माध्यम से तुलसी ने व्यक्त किया है। 'काम को वात रोग, लोभ को कफ, क्रोध को पित्त, ईर्ष्या को खुजली, ममता को दाद, हर्ष-विषाद को गले के रोगों की अधिकता, पराये सुख से जलन को क्षय, दुष्टता और मन की कुटिलता को कोढ़ के रूप में वे मानते हैं।'[3]

अहंकार के बारे में एषुत्तच्छन ने यों कहा है

'नित्यमायुळ्ळोरविद्यासमुत्भववस्तुवायुळ्ळोन्नहंकारमोर्क्कनी।'[4]

यहाँ अहंकार मिथ्यारूपी अविद्या का प्रतीक है। तुलसी के अनुसार

---

1. मानस 3/43
2. अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु पृ. 109
3. मानस 7/120/18
4. अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु - पृ. 310

'अहंकार अति दुखद दमरुआ। दंभ कपट मद मान नेहरुआ।

तुस्ना उदरबुद्धि अति भारी। त्रिविध ईषना तरुन तिजारी।'[1]

यहाँ अहंकार को अत्यंत दुख देनेवाले डमरू (गाँठ का) रोग का प्रतीक मानते है तो दम्भ, कपट, मद और मान नहरुआ रोग का तृष्णा बडी भारी उदरवृद्धि रोग का भी प्रतीक है। इस प्रकार मानस तथा अध्यात्मरामायण में मानव की मूल वृत्तियाँ ही अवरोध के भिन्न-भिन्न रूपों और माध्यमों में चरितार्थ हुई हैं।

हम अपने दैनिक जीवन में प्रतीकों का आश्रय लेकर भी बोलते सुनते और समझते हैं। आज हमारे सांस्कृतिक और धार्मिक अनुष्ठानों में ऐसे अनेक प्रतीक हैं, जो हमें परंपरा से ही प्राप्त हैं। इसके अलावा समाजशास्त्रीय एवं मनोवैज्ञानिक प्रतीकों का उल्लेख भी है। लोकंजीवन में, मानव मन पर प्रभाव डालने में इन प्रतीकों का महत्वपूर्ण स्थान है। तुलसी और एषुत्तच्छन इसके प्रयोग में भी सफल बन गये।

बिंब योजना

काव्य वास्तव में कवि की रचनात्मक प्रतिभा का वरदान एवं कवि की अनुभूतियों का सहज प्रकाशन है। संसार की विभिन्न भाषाओं का साहित्य सदैव बिंब प्रधान ही है। बिंब कवि के समग्र व्यक्तित्व का प्रतिफलन है। भाषा की शक्ति, गरिमा और ऊर्जा के संपादन में बिंब योगदान देते हैं। बहुशः बिंब का तात्पर्य काव्य-भाषा की ऐसी शक्ति से हो सकता है, जो मूर्त हो, विशेषीकरण में सक्षम हो तथा सामान्य बोलचाल की भाषा से भिन्न हो। संकीर्णतर अर्थ में इसे कवि द्वारा प्रयुक्त अलंकार भी कहा जा सकता है। संक्षेप में 'बिंब कवि की अनुभूतियों, मानस छवियों, भावों आदि का इन्द्रियग्राह्य रूप खडा

---

1. मानस 7/120/18

करनेवाला वह तत्व है, जो वस्तुविशेष के आसन्न सन्दर्भों के परिप्रेक्ष्य में उच्चकोटि की सादृश्य विधायनी कारयत्री प्रतिभा के योग से उद्भूत होता है।'[1] स्वभावतः बिंब काव्य का अनिवार्य तत्व बन जाता है। 'डॉ नगेन्द्र बिंब को एक प्रकार का चित्र मानते हैं जो किसी पदार्थ के साथ विभिन्न इन्द्रियों के सन्निकर्ष से प्रमाता के चित्त में उद्बुद्ध हो जाता है।'[2] वस्तुतः एक ओर तो बिंब कविता में प्रयुक्त शब्द चित्र है, दूसरी ओर उसे विस्तृत सम्बद्ध और विच्छिन्न ऐन्द्रिक संवेदनों का शब्दिक पर्याय कहा जा सकता है।

मानस एवं अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में बिंब योजना

तुलसीदास और एषुत्तच्छन की प्रतिभा वहाँ विशेष चमत्कार उत्पन्न करती है, जहाँ उन्होंने काव्यगत परंपरित उपमानों को छोडकर लोकजीवन के टटके उपमानों या बिंबों को लिया है। तुलसी तथा एषुत्तच्छन अपने आसपास के जीवन के विविध उपकरणों से भी बिंबों को ग्रहण करते हैं तथा परंपरा से प्राप्त विंबों का विधान भी करते हैं। एषुत्तच्छन की अपेक्षा तुलसी के बिंबों की संख्या बहुत विशाल है। परंपरागत उपमानों के साथ नई उपमानों का सुन्दर मिश्रण हुआ है। वनवास प्रसंग में राम को जाने की आज्ञा प्रदान करने में दशरथ के मन की व्याकुलता और उनके अस्तित्व को झकझोर देनेवाली व्यथा को सम्मूर्तित करने केलिए पीपल के पत्ते को उपमान रूप में प्रस्तुत किया गया है। पीपल का पत्ता थोडी हवा में ही हिलने डुलने लगता है। दशरथ के मन के भावोद्वेग को प्रत्यक्ष करने केलिए यह बिंब सार्थक है।

'अस मन गुनइ राउ नहिं बोला पीपर पात सरिस मन डोला।'[3]

---

1. तुलसी साहित्य में बिंब योजना डॉ. सुशीला शर्मा पृ. 287
2. काव्य बिंब नगेन्द्र पृ. 5
3. रामचरितमानस 2/44/2

अध्यात्मरामायण में एषुत्तच्छन ने दशरथ की दुःखपूर्ण स्थिति को इस मुहावरेदार बिंब के माध्यम से व्यक्त किया है

'वज्रमेट्ट्द्रिपतिच्चपोलेभूविसत्वरचेतसावीणितु भूपनुं।'[1]

यहाँ कैकेयी के कठोर वचन सुनकर वज्र के प्रहार से समुद्र के गिरने के समान राजा के गिरने की बात कही है। यहाँ कैकेयी के लिए वज्र का तथा दशरथ केलिए समुद्र का बिंब देखा जा सकता है। यहाँ इन्द्र के वज्रायुध का प्रयोग करने के कारण पौराणिक बिंब भी है।

तुलसी ने मानस में इसी स्थिति को दिखाने केलिए 'बाज' का बिंब लिया है। कैकेई के वरों की बात सुनकर वचनबद्ध राजा ऐसे सहम जाते हैं, मानो वन में लावा पक्षी पर बाज झपट पडा दो। जैसे

'गयउ सहमि नहीं कछु कहि आवा। जनु सचान बन झपटेउ लावा।।'[2]

कौए के शंकालु तथा अविश्वासी स्वभाव का बिंब भी तुलसी ने दिया है। जैसे

'सत्य बचन बिस्वास न करही। बासय इव सहबी ते डरही।।'[3]

तुलसी चक्रवाक युगल के बिंब का व्यवहार भी करते हैं। देखिए

'चक्क चक्कि जिमि पुर नर नारी। चहत प्राप्त उर आरत भारी।।'[4]

---

1. अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु पृ. 96
2. मानस 2/28/3
3. वही 7/111/7
4. वही 2/186/1

चकवा चकवी के समान ही अयोध्या के नर-नारी अत्यंत व्याकुलता से प्रातः काल की प्रतीक्षा करते हैं।

भक्तिहीन पुरुषों केलिए जलहीन बादलों का बिंब दिया गया है। जैसे

'भगतिहीन नर सोरइ कैसा। बिनु जल बारिद देखिअ जैसा।'[1]

यहाँ प्राकृतिक बिंब देखा जा सकता है।

लोकजीवन में दृश्यबिंबों का महत्वपूर्ण स्थान है। मानस तथा अध्यात्मरामायणम् में ऐसे अनेक बिंब देखे जा सकते हैं, जिनका आधार लोक है। मानस में देखिए

'खेलत मनसिज मीन जुग जनु बिधु मंडल डोल'[2]

यहाँ श्रीराम को देखते समय सीता जी के चञ्चल नेत्रों केलिए यहाँ दो मछलियों का बिंब दिया है।

दूसरा एक दृश्यबिंब देखिए

'अधिक सनेह देह भै भोरी। सरद ससिहि जनु चितव चकोरी।।'[3]

यहाँ श्रीराम केलिए शरद ऋतु के चन्द्र का तथा सीता केलिए चकोरी का बिंब दिया है। उसी प्रकार

'मुख सरोज मकरंद छबि करइ मधुप इव पान।'[4]

---

1. मानस 3/34/3
2. वही 1/258
3. वही 1/231/3
4. वही 1/23

यहाँ सीता के मुख को कमल का, छवि या शोभा केलिए मकरन्द रस तथा श्रीराम केलिए भौरे का बिंब दिया है।

अध्यात्मरामायणम् में दृश्य बिंब देखिए

मैथिलिमयिल्पेडपोलेसंतोषंपूण्डाळ्'1

यहाँ मैथिली (सीता) के लिए मोरनी का बिंब दिया है। मोरनी की तरह वह हर्षित हुई।

उसी प्रकार वानरों की सेना देखने पर ऐसे बिंब की प्रतीति होती है जैसे

'धात्रियिलोक्केनिरञ्जुपरन्नोरुवार्द्धिनडन्नङ्ङडुक्कुन्नतुपोले।'[2]

यहाँ लहरों से उछलकर पृथ्वी पर व्याप्त समुद्र का बिंब दिया गया है। मेघनाद द्वारा भेजे अस्त्रों केलिए मेघजाल बरसने का बिंब दिया।

'मेघजालंवर्षिक्कुन्नतुपोले मेघनादन् कणतूकित्तुडङ्ङिनार्।'[3]

दशरथ के सामने कैकेई के मुख केलिए व्याघ्र का बिंब दिया गया है। जैसे

'व्याघ्रियेप्पोल्समीपेवसिक्कुन्नमूर्खमतियाय कैकेयीतन्मुखं।'[4]

ये दृश्य बिंब (लहरों से उछलते सागर, मेघजाल का बरसना, व्याघ्री) आदि लोकजीवन को प्रभावित करनेवाले दृश्य बिंब हैं।

श्रव्य बिंब लोकजनता केलिए कोमल एवं कठोर भाव को भी प्रदान करते हैं। मानस में एक श्रव्यबिंब देखिए

---

1. अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु पृ. 57
2. वही पृ. 376
3. वही पृ. 439
4. वही पृ. 97

कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि। कहत लखन सन रामु हृदयँ गुनि।[1]

यहाँ कंकन, किंकिनी, नूपुर आदि की ध्वनि के माध्यम से तुलसी कोमल श्रव्य बिंब की स्थापना कर रहे हैं। ये जनता केलिए अत्यंत आकर्षक भी हैं।

मानस में एक श्रव्य बिंब ऐसा है

'दादुर धुनि चहुँ दिसा सुहाई। बेद पढ़हि जनु बटु समुदाई।।'[2]

यहाँ मोढ़कों की ध्वनि का बिंब अत्यंत लोकमूलक है।

एक कठोर श्रव्य बिंब देखिए

'घन घमंड नभ गरजत घोरा।'[3]

यहाँ आकाश में बादल के उमड-घुमड कर घोर गर्जना करने के श्रव्य बिंब का चित्रण है।

अध्यात्मरामायणम् में एक कोमल श्रव्यबिंब देखिए

'पाट्टुमाट्टवुंकूत्तुंपुष्पवृष्टियुमोरोकूट्टमेवाद्यङ्ङ्ळुं'[4]

गीत, नृत्य, वाद्ययंत्रों की ध्वनि आदि हमारे कानों को माधुर्य प्रदान करते हैं। इसलिए यह एक कोमल श्रव्यबिंब है।

कठोर श्रव्य बिंब का उदाहरण देखिए

---

1. मानस 1/229/1
2. वही 4/14/1
3. मानस 4/13/1
4. अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु पृ. 57

राम द्वारा धनुष तोडते समय का शब्द

'इडिवेट्टीडुंवण्णंविल्मुरिञ्ञोच्चकेट्टु नडुङ्ङीराजाक्कन्मारुरगड्ङळेप्पोले।'[1]

यहाँ घनुष तोडते समय के शब्द के मेघगर्जन का बिंब दिया है। यह एक कठोर श्रव्य बिंब भी है।

अनेक स्पर्श बिंबों का ग्रहण भी मानस में देखा जा सकता है, जो लोक से लिए गये हैं।

उदाहरण केलिए

'दलकि उठेउ सुनि हृदउ कठोरू। जनु छुइ गयउ पाक बरतोरू।'[2]

यहाँ कठोर हृदय के दलक उठना दिखाने केलिए पका हुआ बालतोड का बिंब लिया। यह एक स्पर्शबिंब भी है।

रोमाञ्चित शरीर के लिए कटहल के बिंब को देखिए

'पुलक सरीर पनस फल जैसा।'[3]

इन सब के अलावा एक ऐसा बिंब देखिए जो सिंह तथा गज से संबन्धित है

'जाइ दीख रघुबंसमनि नरपति निपट कुसाजु।
सहमि परेउ लखि सिंघिनिहि मनहुँ बृद्ध गजराजु।।'[4]

---

1. अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु पृ. 57
2. मानस 2/26/2
3. वही 3/9/8
4. वही 2/39

यहाँ कैकेई को देखकर राजा दशरथ की अवस्था को चित्रित करने केलिए सिंहनी तथा गजराज का बिंब दिया है।

अध्यात्मरामायणम् में यों कहा है

'व्याघ्रियेपोले समीपेवसिक्कुन्नमूर्खमतियाय कैकेयी तन्मुखं'[1]

यहाँ कैकेई के लिए व्याघ्रि का बिंब दिया है।

अध्यात्मरामायणम् में श्रीराम स्वयं एक बिंब हैं। राम की सुन्दरता दिखाने केलिए कामदेव का बिंब लिया है। जैसे

'पुष्पास्तरणतुल्यङ्ङ्ळे निक्केतुं पुष्पबाणोपम्।'[2]

इस प्रकार अलंकारों, मुहावरों, लोकोक्तियों द्वारा भी बिंबों का सृजन होता है। राजा की वेदना एवं असहनीय तीव्रता दिखाने केलिए मानस में 'जले पर नमक छिडकना' जैसे मुहावरेदार बिंब का प्रयोग है तो उसी अर्थ में 'पुण्णिलोरुकोळ्ळिवय्क्कुक' बिंब का प्रयोग अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में भी देखा जा सकता है। प्रकाश तेज आदि को दिखाने केलिए सूर्य के बिंब का प्रयोग किया गया है।

तुलसी और एषुत्तच्छन की बिंब योजना पारंपरिक उपमानों के साथ ही अधिक मौलिक, नवीन, हृदयस्पर्शी और विषय तथा भाषा की प्रवृत्ति के अनुकूल होने के कारण सहज है। लोकजीवन से गृहीत ऐसे दृश्य, श्रव्य, स्पर्श संबन्धित उपमान, भाषा, भाव और विचार के लोकप्रचलित बिंबों का प्रतिनिधित्व करते हैं। भाव तथा रूप सौंदर्य के उद्घाटन में इन संकेतात्मक तथा बिंब विधायक अप्रस्तुतों का बडा महत्व है क्योंकि ये एक ओर तो कवि की मौलिकता का प्रतिपादन करते हैं तो दूसरी ओर लोकभाषा और लोकजीवन में प्रचलित उक्तियों का आंशिक प्रतिनिधित्व करते हैं।

---

1. अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु पृ. 97
2. वही पृ. 117

छंद योजना

छन्द वास्तव में भाषा की अभिव्यक्ति में संतुलन रखनेवाला एक रागतत्व है। काव्य में भावगीत के सम्मूर्तन में भाषा के साथ छंद योजना की भी महत्वपूर्ण भूमिका रही है। कविता को गोचर रूप प्रदान करनेवाला छंद काव्यशिल्प का एक महत्वपूर्ण अंग है। काव्यभाषा में सौन्दर्य और वर्ण्यविषय में प्रभाव उत्पन्न करने केलिए छंद एक अनिवार्य तत्व है। 'काव्याभिव्यक्ति में स्वर लहरियों के इसी भावालम्बित लयात्मक नियमन द्वारा छंद विधान किया जाता है। अर्थात् लयात्मक नियमन छंद है।'[1] लोकजीवन में इन लयात्मक गीतों का महत्वपूर्ण स्थान है। आदिमकाल में मनोभावों को व्यक्त करनेवाली अनेक प्रकार की ध्वनियों की एक मिश्रित अभिव्यक्ति का प्रवाह मात्र थी भाषा। उस समय भाषा के जन्म के साथ मानवीय भावों की अभिव्यक्ति का प्रकाशन लयात्मक संगीतात्मक ध्वनियों द्वारा होता रहा। इन ध्वनियों से लोकजनता अवश्य ही प्रभावित होती थी। लोकजीवन में प्रभावित छंदों को लेकर काव्यजगत् में आये हुए दो महान् व्यक्तित्व के धनी थे तुलसी और एषुत्तच्छन। लोकजनता द्वारा आसानी से समझने लायक दोहा चौपाई छंद को तुलसी ने स्वीकृत किया तो एषुत्तच्छन ने केरलीय जनता को आकर्षित करनेवाली किळिप्पाट्टु शैली को अपनाया।

रामचरितमानस एवं अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में प्रयुक्त छंद

परमभक्त महाकवि तुलसीदास के जितने भी छंद हैं, वे सार्थक एवं विषयानुकूल हैं। उन्होंने अपने काव्यों में जिन छंदों और पदों का प्रयोग किया, वे प्रायः लोकमूलक हैं। तुलसी वास्तव में लोकजीवन के सच्चे कवि थे, जिसका प्रभाव उनके काव्य की विषयवस्तु के साथ ही रचना शैलियों में भी लक्षित होता है। उन्होंने लोकक्षेत्र के काव्य रूपों और छंदों

---

1. तुलसी काव्य की लोकतात्विक संरचना - गयासिंह - पृ. 185

का व्यवहार तो किया है। तुलसीदास का संपूर्ण रामचरितमानस दोहा चौपाई शैली का अनुपम काव्य है, जिसका असर अवश्य ही लोकजीवन पर पडा है। कथानक को एक गतिशील प्रवाह देनेवाले ये दोहा - चौपाई छंद अवधी के कवियों को बहुत प्यारे रहे हैं। इस प्रकार दोहा चौपाई शैली की परंपरा अवधी की अपनी परंपरा है, और तुलसी के पूर्व जायसी आदि सूफी कवियों की वाणी में इसे स्थान भी मिल चुका है। लेकिन तुलसी का छंद चयन एक गहरे कवि कौशल का परिचायक है। मानस में दोहा-चौपाई एवं सोरठा छंद का सुन्दर प्रयोग देखा जा सकता है, जिसे पढ़कर लोकजनता आनन्द सागर में डूब जाती है। तुलसी के मात्रिक छंदों में चौपाई का प्रमुख स्थान है। क्योंकि यह छंद शताब्दियों से आज तक मानव के गले का हार बना हुआ है। इस छंद में 'हर्ष-शोक, पाप-पुण्य, दिन-रात, साधु-असाधु, सुजाति-कुजाति, देव-दानव, ऊँच-नीच, अमृत-विष, माया-ब्रह्म, कवि-ईश्वर, राजा-रंक, आदि विपुल प्रवृत्तियों के टोने की अतुल शक्ति है।'[1] व्यंजनों के आरोह-अवरोह से युक्त होने के कारण वह संगीत के इतने निकट है कि लोग उसे अनेक वाद्ययंत्रों पर सुगमता से गाते तथा आनन्द लेते हैं। मानस में चित्रित एक चौपाई है

'जब तें रामु ब्याहि घर आए। नित नव मंगल मोद बधाए।
भुवन चारिदस भूधर भारी। सुकृत मेघ बरषहिं सुख बारी।।'[2]

सीता के आभूषणों की ध्वनि इस चौपाई के द्वारा व्यक्त हुई है। जैसे

'कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि। कहत लखन सन रामु हृदय गुनि।।
मानहुँ मदन दुंदुभी दीन्ही। मनसा बिस्व बिजय कहँ कीन्ही।'[3]

---

1. रामचरितमानस की काव्य भाषा डॉ रामदेव प्रसाद पृ. 149
2. मानस 2/1
3. वही 1/229/1

सीता की लज्जाशीलता को तुलसी ने निम्नलिखित चौपाई के माध्यम से चित्रित किया है।

'खंजन मंजु तिरीछे नयननि। निज पति कहेउ तिन्हहि सियँ सयननि।
भई मुदित सब ग्रामबधुटी। रंकन्ह राय रासि जनु लूटी।।'[1]

इस चौपाई छंद के माध्यम से लोक संस्कृति का एक रूप भी दिखाई पडता है। की प्राकृतिक सुषमा को तुलसी ने इस चौपाई में व्यक्त किया है। देखिए

'बिकसे सरसिज नाना रंगा। मधुर मुखर गुंजत बहु भृंगा।।
बोलत जलकुक्कुट कलहंसा। प्रभु बिलोकि जनु करत प्रसंसा।।'[2]

मानस में इस प्रकार चौपाई के ज़रिए अनेक महत्वपूर्ण प्रसंगों का ज़िक्र किया है। ये चौपाइयाँ लोकजनता केलिए अत्यंत आकर्षक हैं। गोस्वामी तुलसीदास की इतिवृत्तात्मक प्रवृत्ति का व्यापक प्रसार इन चौपाइयों में परिलक्षित होता है। अपनी इस विशिष्टता एवं व्याप्ति के कारण शब्दशक्ति, रस, रीति, ध्वनि, प्रसाद गुण, अलंकरण एवं साम्य विधान आदि के प्रचुर कलात्मक उपकरणों का समाहार भी अन्य छंदों की अपेक्षा मानस के चौपाई छंद में ही अधिक हो सका है।

चौपाई की तरह दोहा छंद भी मानस का आद्यन्त छंद है। इसके पहले और तीसरे चरणों में 13 मात्राएँ होती है तो दूसरें और चौथे चरणओं में 11 मात्राएँ है। स्थानोचित, रसोचित भाषा का लालित्य दोहे में खूब भरा है। उदाहरण केलिए

'नामु मंथरा मंदमति चेरी कैकेइ केरि।
अजस पेटारी ताहि करि गई गिरा मति फेरी।।'[3]

---

1. मानस 2/116/4
2. वही 3/39/1
3. वही 2/12

यह छोटा सा दोहा कथा प्रवाह केलिए उत्तम एवं सार्थक भी है।

राम के प्रति तुलसी की जो भक्ति है उसे इस तीक्षण एवं अत्यंत प्रभावशाली दोहे के द्वारा व्यक्त किया गया है। जैसे

'गिरा अरथ जल बीचि सम कहिअंत भिन्न न भिन्न।
बंदउँ सीता राम पद जिन्हहि परम प्रिय खिन्न।।'[1]

श्रीराम के जन्म लेते समय नगरवासियों के आनन्द उल्लास का चित्रण करनेवाला एक दोहा देखिए

'गृह गृह बाज बधाव सुभ प्रगटे सुषमा कंद।
हरषवंत सब जहँ तहँ नगर नारि नर वृंद।'[2]

जब श्रीरामजी स्वयं राजा होकर विराजमान है, उस समय अवधपुरी के निवासियों की सुख-संपत्ति को दिखानेवाला एक दोहा

'अवधपुरी बसिन्ह कर सुख संपदा समाज।
सहस शेष नहिं कहि सकहिं जहाँ नृप राम बिराज।'[3]

हमारे सांस्कृतिक आचार इस दोहे में झलकते हैं जैसे

'मातु पिता गुरू स्वामि सिख सिर धरि करहिं सुभायँ।
लहेउ लाभु तिन्ह जनम कर नतरु जनमु जग जायँ।।'

---

1. मानस 1/18
2. वही 1/194
4. वही 7/26

इस प्रकार छोटे किंतु अत्यंत मर्मस्पर्शी एवं प्रभावात्मक दोहे के माध्यम से जनता को प्रभावित करने की क्षमता तुलसी में थी। लोकजीवन में ये दोहे अमूल्य मोतियों के बराबर हैं।

दोहे का सीधा उलटा है सोरठा। इसके प्रयोग केलिए कोई विशेष स्थान नहीं। दो चौपाइयों के बीच या दो दोहों या दोहरों के बीच में भी इसका प्रयोग होता है। मानस के अयोध्या, अरण्य एवं किष्किंधाकाण्डों में ये अपना अधिकार जमाए हुए हैं और एकाध स्थल पर तो यह दोहा छंद के साथ ही अपनी अवस्थिति को ज्ञापित करता दिखाई देता है। मानस के अयोध्याकाण्ड में कैकेयी कोपभवन प्रसंग, केवट के प्रेम वर्तव्य, निषादराज की प्रार्थना, अयोध्यावासियों के चित्रकूट भ्रमण के वर्णन आदि स्थानों पर सोरठा का प्रयोग किया है। जैसे

'सुनि केवट के बैन प्रेम लपेटे अटपटे।
बिहसे करुनाएन चितइ जानकी लखन तन।।'[1]

भरत का आगमन सुनने पर श्रीराम की अवस्था का चित्रण एक सोरठे के माध्यम से किया गया है। कितना सुन्दर है देखिए

'सुनत सुमंगल बैन मन प्रमोद तन पुलक भर।
सरद सरोरुह नैन तुलसी भरे सनेह जल।।'[2]

श्रीराम के गुणों का वर्णन प्रस्तुत सोरठे में कितनी सुन्दरता के साथ चित्रित किया है देखिए

---

1. मानस 2/100
2. वही 2/226

'नीलोत्पल तन स्याम काम कोटि सोभा अधिक।

सुनिअ तासु गुन ग्राम जासु नाम अघ खग बधिक।।'[1]

श्रीराम को आने की खबर सुनने समय भरत की स्थिति को दिखानेवाला सोरठा देखिए

'भरत चरन सिरु नाइ तुरति गयउ कपि राम पहिं

कही कुसल सब जाइ हरिषि चलेउ प्रभु जान चदि।।'[2]

इस प्रकार दोहे की तरह सोरठा भी लोकहृदय में प्रभाव डालता है। एक तरह से दोहा और सोरठा मानस कथा प्रवाह के विश्राम स्थल हैं, जहाँ पाठक या श्रोता के चिन्तन और मनन का पर्याप्त और उपयुक्त अवसर मिल जाता है।

इस प्रकार तुलसीदास के दोहा, चौपाई सोरठा जैसे छंदों के पारस्परिक संबन्ध की आधारशिला पर ही मानस की मुख्य कथा आगे बढ़ती है। मानस में अन्य छंदों केलिए तुलसी ने 'छंद' संज्ञा दी है। लेकिन दोहा, चौपाई, सोरठा जैसे लोक छंदों का प्रयोग करके तुलसी ने छंदों में भावानुकूलता, लय और अन्त्यानुप्रास बढाकर अपनी सूक्ष्म छन्दबद्धता का परिचय दिया है, जिसमें उनके प्रतिपाद्य विषय की अभिव्यंजना और अधिक मनोहर एवं भव्य बन गयी है।

मलयालम काव्यजगत् में किळिप्पाट्टु शैली नामक एक नूतन शाखा का विकास वास्तव में एषुत्तच्छन के कर स्पर्श से संपन्न हुआ। यह किळिप्पाट्टु शैली एक लोकशैली है, जिसमें पक्षी के द्वारा कथा कहलवाने की रीति है। इस प्रकार पक्षी द्वारा गवाने

---

1. मानस 4/30
2. वही 7/2 (ख)

की एषुत्तच्छन की कथा शैली को सामान्यतया किळिप्पाट्टु शैली तथा उनकेलिए स्वीकृत छंदों को किळिप्पाट्टु छंद कहा जाता है। एषुत्तच्छन के पहले ही किळिप्पाट्टु छंदों का प्रयोग लोकगीत, रामचरितं, गुरुदक्षिणप्पाट्टु जैसे मलयालम के पुराने गीतों में देखा जा सकता है। लेकिन एषुत्तच्छन का पुनीत स्पर्श पाकर इन छंदों को एक विशिष्ट सौंदर्य और ऐश्वर्य की सिद्धि हुई। 'पुरानी मणिप्रवालम् शैली से भिन्न एक स्वतंत्र, मलयालम शैली का प्रयोग करना, संस्कृत को लोकशैली में नियंत्रित कर सरस ढंग से प्रतिपादित करना, आर्य-द्राविड वर्ग में व्याप्ति और दृढ़ता लाने केलिए धर्म और अधर्म, मलयालम के लोगों केलिए नित्य पढने योग्य बनाना आदि तीन सिद्धियों से युक्त सबसे महान् पुरुष है एषुत्तच्छन।'[1] काकळी, कळकाञ्ची, केका, अन्ननडा आदि प्रमुख किळिप्पाट्टु छंद हैं; जिनका सीधा संबन्ध लोक से है। अतः ये छंद लोकछंद है। केरल में प्रचलित मुहावरे और लोकोक्तियों से अवलंबित और स्वयं कल्पित हैं ये छंद। किळिप्पाट्टु में शुरू से अंत तक पूरा एक काण्ड अथवा संपूर्ण पर्व एक ही छंद में प्रयुक्त करने की रीति सबसे पहले एषुत्तच्छन ने शुरू की।

अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में प्रयुक्त होनेवाले प्रमुख छंद हैं केका, काकळी और कळकाञ्ची। ये लोकछंद हैं। अध्यात्मरामायण के बालकाण्ड और अरण्यकाण्ड में केका छंद तथा अयोध्याकाण्ड, किष्किन्धाकाण्ड और युद्धकाण्ड में काकळी और सुन्दरकाण्ड में कळकाञ्ची छंद का प्रयोग देखा जा सकता है। केका और काकळी में द्वितीयाक्षर प्रास है तो कळकाञ्ची में आद्यक्षरप्रास है। यही वास्तव में इनका आम स्वभाव है। संस्कृत छंदों के साथ-साथ भाषा छंद भी मलयालम में प्रचलित था। अधिकांश लोकछंद संस्कृत से संबन्धित न होकर तमिष़ से संबंधित थे। चूँकि मलयालम द्राविड परिवार की भाषा है

---

1. एषुत्तच्छन्टे रत्नङ्ङळ् - श्रीरामग्रन्थावली - पृ. 3

इसलिए उसके अपने छंदों की रीति तमिष़ भाषा के छंदों के समान है। मलयालम भाषा में संस्कृत या तमिष़ की अपेक्षा छंदों में या तो मात्रानियम दिखाई देता है या वर्णों का नियम देखा जा सकता है। काकळी छंद इसी प्रकार का एक लोकछंद है। किळिप्पाट्टु में अक्सर अक्षर नियम का पालन होता है। लघु का कभी-कभी दीर्घ बनाकर गुरू बनाया जाता है, और गुरु को कभी-कभी सुविधार्थ लघु भी बनाया जाता है।

काकळी एषुत्तच्छन द्वारा प्रयुक्त एक प्रमुख छंद है। अध्यात्मरामायणम् के छे काण्डों में आधा तथा महाभारत के 21 पर्वों में 8 पर्व काकळी छंद में लिखा गया है। कळकाञ्ची, मणिकाञ्ची, ऊनकाकळी आदि छंदों का मूलरूप काकळी है। यह छंद मौलिक है। इसका लक्षण है कि

'मात्रयञ्जक्षरं मून्निल वरुन्नोरु गणङ्ङळे
एट्टुचेर्तुळ्ळीरडिक्कु चोल्लां काकळियेन्नुपेर।'

तीन अक्षरों में पाँच मात्राओं सहित आनेवाले गणों से युक्त आठ पंक्तिवाले पद्य को काकळी कहा जाता है। इसमें रगण, तगण, या यगण में कोई भी हो सकता है। चार गणों के जोड के बाद यति रहती है। आठ गणों के जोड से दो पंक्तियाँ बनती हैं। मगण का प्रयोग इस छंद में नहीं होता। काकळी में सभी तीन अक्षर एक गण होने के कारण एक यति से बारह अक्षर प्रयुक्त होने का नियम है।

अध्यात्मरामायणम् के अयोध्याकाण्ड में एक काकळी इस प्रकार है

'अग्रजननतन्नेपरिचरिच्चेप्पोषुमग्रेनडन्नुकोल्लेणं पिरियाते
रामनेनित्यंदशरथनेन्नुल्लिलामोदमोडुनिरूपिच्चु कोळ्ळणं
एन्नेज्जनकात्मजयेन्नुरच्चुकोल् पिन्नेययोध्ययेन्नोर्तीडडवियें
मायाविहीनमीवण्णमुरप्पिच्चु पोयालुमेंकिले सुखमायवरिकते।'[1]

---

1. अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु पृ. 119

सुमित्रा का लक्ष्मण से जो कथन है, यह अनेक सारोक्तिपूर्ण काकळी छंद का उत्तम उदाहरण है। यह उपदेश लोकमानस को आकर्षित करने के साथ सोचने केलिए भी विवश करता है।

काकळी का दूसरा एक उदाहरण देखिए

'क्रोधमूलं मनस्तापमुण्डाय्वरुं क्रोधमूलं नृणांसंसारबन्धनं
क्रोधमल्लोनिजकर्मक्षयकरं क्रोधं परित्यजिक्केणं बुधजनं।।
क्रोधमल्लोयमनायतुनिर्णयं वैतरण्याख्ययाकुन्नतु तृष्णयुं
संतोषमाकुन्नतुनन्दनंवनं संततं शान्तियेकामसुरभि केळ।।'[1]

(अर्थात्, क्रोध से दुःख होता है। क्रोध से संसार-बन्धन होता है। क्रोध के कारण कर्म-क्षय होता है। इसलिए बुद्धिमान लोगों को क्रोध छोड देना चाहिए। क्रोधी यमराज है, वृष्णा वैतरणी है, संतृप्ति नन्दनवन है और शान्ति कामधेनु है।)

श्रीराम द्वारा लक्ष्मणोपदेश काकळी छंद के द्वारा कितने सुन्दर ढंग से चित्रित किया है।

युद्ध करने केलिए तैयार हुए रावण की अवस्था प्रस्तुत काकळी छंद के द्वारा चित्रित की गई है। जैसे

'सेनापतियुंपडयुंमरिच्चतु मानियां रावणन्केट्टु कोपान्धनाय।
आरेयुंपोरिन्नयक्कुन्नतिल्लिनि नेरेपोरुतु जयिक्कुन्नतुण्डल्लो।
नम्मोडुकूडेयुळ्ळोरकळपोन्नीडुक नम्मुडे तेरुं वरुत्तुकेन्नानवन।
वेण्मतिपोलेकुडयुंपिडिप्पिच्चु पोन्मयमायोरुतेरिल करेरिनान्।।'[2]

---

1. अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु - पृ. 109
2. अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु - पृ. 420

काकळी के अलावा किळिप्पाट्टु के भाषा छन्दों में प्रमुख स्थान 'केका' को है। यह एक प्राचीन छंद है। लोकगीतों एवं प्राचीन गेय कृतियों में यह छंद सुलभ था। आधुनिक कवियों को आकर्षित करनेवाला एक प्रमुख छंद है केका। इसका लक्षण है

'मून्नुं रण्डुं रण्डुं मून्नुं रण्डुं रण्डेन्नेषुत्तुकल
पतिन्नालिन्नारुगणं पादं रण्डिलुमोन्नुपोल
गुरुवोन्नेंकिलुवेणं माराततोरोगणत्तिलुं
नडुक्कुयति पादादिपोरुत्तमितु केकयां।'[1]

इस छंद के प्रत्येक चरण में 14 अक्षर होते हैं। एक चरण के 14 अक्षरों को छः गणों में विभाजित किया गया है और 3, 2; 2,3; 2,2; के अक्षरों के क्रम से ये छः गण आते हैं। तथा हर एक गण में एक गुरु अवश्य रखना पडता है। हर चरण के मध्यम में यति होती है या चरणों के आदिगणों में समानता रहती है। अध्यात्मरामायण के बालकाण्ड और अरण्यकाण्ड में केका छंद की भरमार देखी जा सकती है। उदाहरण केलिए

मैथिलितन्नेपरिचारिकमारु निज
माताक्कन्मारुंकूडि नन्नायिच्चमयिच्चार् ।।
स्वर्णवर्णत्तेपूण्ड मैथिलि मनोहरी
स्वर्णभूषणङ्ङळुमणिञ्ञु शोभयोडे।'[2]

अभूषणों सहित मैथिली हर्षित होने की स्थिति इस केका छंद के द्वारा चित्रित किया गया है। यहाँ मात्राओं की संख्या केलिए स्थान नहीं। लेकिन 14 अक्षर होनी चाहिए। छः गणों में विभाजित भी किया है। मध्य में यति भी है। केका का उदाहरण अरण्यकाण्ड में देखिए लक्ष्मण द्वारा पर्णशाला बनाने की बात इस केका के द्वारा व्यक्त किया गया है।

1. किळिप्पाट्टु छंद पी. रामन् पृ. 335 (तुञ्चन प्रबन्धङ्ङल)
2. अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु पृ. 58

पर्णशालयुंतीर्तुलक्ष्मणन्मनोज्ञमा

स्पर्णपुष्पङ्ङळ्कोण्डुतल्पवुमुण्डाक्किनान्।।

उत्तमगंगानदिक्कुत्तरतीरे पुरु

षोत्तमन्वसिच्चितु जानकी देवि योडुं।।'[1]

काकळी के प्रथम चरण के एक या दो गण सर्वलघु है तो वह कळकाञ्ची छंद है। तथा प्रथम चरण में एक से चार तक के गण यदि सर्वलघु बन जाये या द्वितीय चरण के प्रथम गण सर्वलघु बन जाये तो भी कळकाञ्ची मिल जाती है। यह एक प्राचीन छंद है। अध्यात्मरामायणम् का सुन्दरकाण्ड कळकाञ्ची से ओर सुन्दर बन जाती है। उदाहरण केलिए

'वदनमपिकरचरणमल्लशैर्यस्पिदं

वानरन्मार्कुवाल्मेल्शैर्यामाकुन्नु।।

वयमतिनुझडितिवसनेवाल् वेष्टिच्चु

वहिनकोलुत्तिपुरत्तिलेल्लाडवुं।।'[2]

यह कळकाञ्जी का एक सुन्दर उदाहरण है। दूसरा एक उदाहरण देखिए

'कनकमणिमयनिलयनिकरमतुवेन्तोरो

कामिनीवर्गं विलापं तुडङ्ङिनार।

चिकुरभरवसनचरणादिकळवेंताशु

जीवनुंवेरपेट्टुभूमौपतिक्कयुं।।'[3]

UNIVERSITY LIBRARY ★ COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY ★ Cochin - 682 022

1. अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु पृ. 199
2. वही पृ. 159
3. अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु - पृ. 161

इस प्रकार भाषा में किळिप्पाट्टु छंदों को प्रमुख स्थान प्रदान करनेवाले एक महान् थे एषुत्तच्छन। पक्षी के द्वारा कहानी कहवाना, नये छंद का नयी रीति में प्रयोग करना, कथोपकथन, भक्ति से परिपूर्ण करके प्रकाशित करना आदि विशेषताओं के कारण किळिप्पाट्टु भाषा साहित्य में एक नूतन शाखा के रूप में उद्भूत हुआ। और ये किळिप्पाट्टु छंद लोकजीवन को प्रभावित करने में सफल बन जाते हैं। आधुनिककाल में किळिप्पाट्टु छंद तथा उसके लघु परिवर्तित रूप प्रयोग में होते हैं।

संक्षेप में तुलसीदास तथा एषुत्तच्छन ने लोकछंदों का प्रयोग करके मानस तथा अध्यात्मरामायण जनता केलिए उपयुक्त बनाया। हिन्दी के दोहा-चौपाई, सोरठा जैसे प्राचीन छंद और केका, काकळी, कळकाञ्ची जैसे किळिप्पाट्टु छन्द जनता केलिए अत्यंत प्रिय रहे हैं। इन छंदों में भावों की तीव्रता लानेवाली जादुई शक्ति है साथ ही लोकहृदय पर प्रभाव डालनेवाले गरिमा भी है। इसी दृष्टि से तुलसी तथा एषुत्तच्छन भी प्रख्यात हुए।

निष्कर्ष

काव्य के सौन्दर्य पक्ष अर्थात् शैली पक्ष का सुन्दर चित्रण मानस और अध्यात्मरामायण में देखा जाता है। लोकजनता सौन्दर्यप्रेमी है। काव्य का सौन्दर्य उसकी भाषा, अलंकार, छंद, प्रतीक बिंब आदि होते हैं। भाषा को जनोपयोगी बनाकर हिन्दी तथा मलयालम साहित्य के क्षेत्र में अपने महत्वपूर्ण कार्य करनेवाले तुलसी और एषुत्तच्छन वास्तव में जनता के कवि याने लोककवि थे। मानस में भाषा का जो लोकप्रचलित रूप मिलता है, वह सोलहवीं शताब्दी के उत्तरी भारतवर्ष की जनभाषा को समझने का उपयुक्त माध्यम था। मुहावरे और लोकोक्तियाँ बोलचाल में प्रचलित भाषा की शक्तियाँ हैं, जिनके द्वारा तुलसी और एषुत्तच्छन ने अपने काव्यों में लोकजीवन तथा व्यवहार की लोकतात्विक भावनाओं, विचारों, नीतियों और वृत्तियों की अभिव्यक्ति की है। ये लोकोक्तियाँ मानव

स्वभाव तथा व्यवहार कुशलता की ऐसी धरोहर है जो मानव को उत्तराधिकार में पीढ़ी दर पीढ़ी से मिलती आ रही हैं। तुलसी तथा एषुत्तच्छन वास्तव में लोकभाषा में लोकजनों केलिए लोकप्रसिद्ध रामचरित द्वारा लोकधर्म का प्रचार-प्रसार करना चाहते थे। इसकेलिए तुलसी ने दोहा-चौपाई शैली को अपनाया तो एषुत्तच्छन ने किळिप्पाट्टु शैली को स्वीकार किया। दोनों लोक की निजी संपत्ति है। आद्य मानसीय बिंब आदिम मानव मन में अमिट रूप से सुरक्षित था। वही दाय-रूप में लोकमन में आज भी विद्यमान है।

.....

उपसंहार

जिस साहित्य में लोकजीवन का यथार्थ अंकन होता है, ऐसा साहित्य समाज में ही नहीं, संपूर्ण विश्व में सदा जीवित रहता है। उसका जीवन सन्देश कभी पुराना नहीं पडता। रामतत्व को संपूर्ण जीवन का सारतत्व मानकर साहित्य जगत् में पदार्पण करनेवाले दो महान् विभूति थे गोस्वामी तुलसीदास और तुंचत्तु रामानुजन एषुत्तच्छन। तुलसीदास का रामचरितमानस तथा एषुत्तच्छन का अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु लोकजीवन से संबन्धित अनेक लोकतत्वों से भरपूर ग्रन्थ हैं। उत्तरभारत के हर एक हिन्दू परिवार में रामचरितमानस की पहचान है तो एषुत्तच्छन के आध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु केरल के हर एक घर में रहता है। इसका मूल कारण यह है कि इन दोनों ग्रन्थों में ऐसे बुनियादी तत्व निहित हैं, जो सामान्य जन-जीवन से जुडे हुए हैं और जिनका अनुसरण प्रत्येक व्यक्ति के चारित्रिक गठन में अत्यंत सहायक रहता है। लोकमंगल की साधना से युक्त इन दोनों ग्रन्थों से लोकजीवन की मंगल साधना ही होती है। ये दोनों ग्रन्थ किसी विशेष वर्ग या संप्रदाय से जुडे हुए नहीं, बल्कि उनके समय के समष्टिगत विचारों का ही प्रतिफलन है। इनमें जनधर्म ही निहित है, जो नित्य सनातन कहा जा सकता है, जिनमें भारतीय संस्कृति का प्राचीन एवं नवीन समग्र रूप झलकता रहता है। राम का चरित्र प्राचीन काल से ही लोकवार्ताओं से लेकर काव्यों, नाटकों और आख्यायिकाओं से होकर महान् सन्देश के साथ प्रचलित हुआ है जिससे प्रेरणा लेकर गोस्वामी तुलसीदास एवं तुंचत्तु रामानुजन एषुत्तच्छन ने अपने मूल्यवान ग्रंथों की रचना की। उत्तर भारत के लोकगीतों और लोक नाट्यों में चित्रित रामकथा रामचरितमानस का मूल स्रोत रही और केरल में प्रचलित

लोकगीत एवं लोकनाट्यों में चित्रित रामकथा एषुत्तच्छन के अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु का मुख्य स्रोत रही।

गोस्वामी तुलसीदास का रामचरितमानस एवं एषुत्तच्छन का अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु आज भी प्रासंगिक है। किसी भी रचना की प्रासंगिकता का अर्थ वर्तमान संदर्भ में उसकी उपादेयता का विवेचन है। तुलसी के रामचरितमानस एवं एषुत्तच्छन के अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु की प्रासंगिकता का मतलब आज के समाज केलिए उनके साहित्य की उपयुक्तता से है। तुलसी तथा एषुत्तच्छन के युग में हम जिस सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक अस्थिरता एवं उथल-पुथल को देखते हैं, उससे कुछ भिन्न दूसरी तरह की अशांति आज हम अपने देश में देख रहे हैं। पारिवारिक संबन्धों में मूल्यों की तलाश, सामाजिक संस्कारों, लोकविश्वासों, रीति-रिवाज़ों के विविध रूप, हमारे सांस्कृतिक व्रत, त्योहार आदि को लेकर जीनेवाली लोकजनता तथा प्रकृति के साथ अटूट संबन्ध स्थापित करनेवाले मनुष्य, सत्य, अहिंसा, परोपकार, त्याग, आदि का महत्व एवं काम, क्रोध, लोभ आदि की वर्ज्यता, ये सब इन ग्रन्थों में मिलते हैं। भक्ति के माध्यम से मानव मंगल की स्थापना करना इन दोनों ग्रन्थों की प्रमुख विशेषता भी है।

आज के विज्ञान, औद्योगीकरण एवं उपनिवेशवाद के इस युग में मनुष्य अपने अस्तित्व को भूलकर संस्कृति के महान् मूल्यों को नष्ट करते हैं। पारिवारिक जीवन छिन्न-भिन्न हो रहा है पिता-पुत्र, भाई-भाई, पति-पत्नी के संबन्धों में एक तरह की विच्छिन्नता भी दिखाई देने लगी है। सब कहीं यांत्रिकता दिखाई पडती है। परिवार की सुख-शान्ति परिवार के सदस्यों की आपसी संबन्धगत मर्यादाओं के निर्वाह पर निर्भर करती है। रामचरितमानस एवं अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में तुलसी तथा एषुत्तच्छन ने राम और उनके भाइयों के पारस्परिक प्रेम की गहराई का चित्रण करके यह प्रमाणित किया है कि पारिवारिक एकता

के कारण ही रामराज्य की स्थापना हुई। आज इसी तथ्य को उजागर करने में ही मानस तथा अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु की प्रासंगिकता है। मानस तथा अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में भाई-भाई का प्रेम, पति-पत्नी का कर्तव्य, पिता-पुत्र का संबन्ध, गुरु-शिष्य का आचार, स्वामी-सेवक की कार्यदिशा, मित्र-मित्र का व्यवहार आदि सभी का समावेश है। ये दोनों ग्रन्थ हमें यह सिखाते हैं कि सफलतापूर्वक जीवन बिताने केलिए हमें परमावश्यक है कि अपने अग्रजों, अनुजों, निम्नवर्ग तथा उच्चवर्ग के व्यक्तियों, साधारण तथा विशिष्टाधिकार संपन्न जनों के साथ औचित्यपूर्ण व्यवहार करें। मानस तथा अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु प्रेम, ममता, करुणा, दया आदि भावों का महत्व बताते हैं और लोककल्याण की भावना को उजागर करते हैं।

रामचरितमानस तथा अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु के कथानक सर्वोत्कृष्ट इसलिए हैं कि वे मानव समाज को सत्कर्म की ओर प्रेरित करते हैं। अत्याचार को मिटाकर सदाचार को प्रतिष्ठित करने केलिए लोगों को अनुप्राणित करते हैं। तुलसी तथा एषुत्तच्छन ने रामकथा के माध्यम से संसार की कर्मचेतना का शाश्वत प्रतिमान उपस्थित कर दिया है। राम, लक्ष्मण, भरत, सीता, शबरी आदि अपने दायित्व-निर्वाह के कारण स्मरणीय हैं। केवट, कोल, किरात, भील, वानर, जटायु आदि के चरित्र कर्मोपासना के उत्कृष्ट उदाहरण बन गए हैं। निश्चय ही छोटे-बडे सभी के अच्छे आचरणों से ही समाज का उन्नयन होता है, यही रामचरितममानस एवं अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु का सन्देश है।

आधुनिकीकरण की आँधी ने भारतीय संस्कृति के सच्चे स्वरूप को नष्ट किया है। लोकसंस्कृति में एक ओर लोकजीवन की भावात्मक और वैचारिक दुनिया होती है, दूसरी ओर रीति-रिवाज़, वेश-भूषा, पर्व-त्योहार और प्राकृतिक परिवेश भी होते हैं। लेकिन

आज के मानव केलिए धर्म, दर्शन, नैतिकता, पाप-पुण्य आदि मूल्यहीन एवं पुराने पड गये हैं। आज मनुष्य सभ्यता के पीछे भागकर संस्कृति का ह्रास करता है और सांस्कृतिक एकता में बिखराव पैदा करता है। संसार के कोने-कोने में मार-काट मची हुई है और प्रतिदिन हज़ारों मनुष्यों का संहार हो रहा है। तुलसी तथा एषुत्तच्छन ने विभिन्न संस्कृतियों का समन्वय करके हमारी सांस्कृतिक एकता का परिचय दिया है। रामचरितमानस एवं अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में जिस संस्कृति का विराट रूप प्रस्तुत किया गया है, वह वेद-शास्त्र को मान्य देते हुए भी लोकानुभवों का समन्वित चित्र है, सामान्य जन के परिष्कारहीन परन्तु लोकनीति से अनुशासित जीवन सरणियों की सहज व्यंजना है। तुलसी तथा एषुत्तच्छन के लोकसमाज में ग्राम्य, निषाद, भील-वानर सभी समाहित हैं। लोकजीवन के सुख-दुःख, भाव-अभाव, लोकविश्वास और नीति, पर्वोत्सवों के मधुमय उल्लास, सामाजिक रूढ़ियों, धार्मिक अनुष्ठानों तथा सांस्कृतिक आयोजनों के न जाने कितने सही चित्र इनकी तूलिका से रंजित किये गये हैं। ये सब तुलसी एवं एषुत्तच्छन के लोकजीवन के सूक्ष्म दृष्टा होने का ही परिणाम है। इसी कारण लोकमानस पर इन ग्रन्थों का प्रभाव आज भी वर्तमान है।

धर्म मनुष्य हृदय की अत्यंत उच्च, उदात्त, पुनीत एवं पवित्र भावना है। धर्म में संस्कृति के सभी तत्व संचरित होते हैं। लोकव्यवहार और आस्था से लोकधर्म बनता है। लोकधर्म का एक अविभाज्य अंग है लोकाचार, जिसमें लोकमंगल की भावना निहित है। शिष्ट एवं सुशिक्षित समाज के लोगों में उतनी अधिक नैतिकता नहीं होती जितनी लोकजनता में होती है। मानवता की भावना का अभाव ही सामाजिक विवश का कारण है। धार्मिक भावना से मनुष्य में सात्विक प्रवृत्तियों का जन्म होता है। इससे परोपकार, समाज सेवा, सहयोग तथा सहानुभूति की भावना भी उत्पन्न होती है। इस क्षेत्र में काम, क्रोध, लोभ,

अहंकार आदि मुख्य बाधाएँ हैं। रामचरितमानस एवं अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में तुलसी तथा एषुत्तच्छन ने इन्हें मन की मलिनता कहा है। मनुष्य के अहंकार या दंभ को छोडने से लोककल्याण संभव होता है। तुलसी ने मानस में इसका चित्रण यों किया है

'अहंकार अति दुखद डमरुआ। दंभ कपट मद मन नेहरुआ।'

एषुत्तच्छन के मन में अहंकार व्यक्ति को ईश्वर से दूर रखता है। अध्यात्मरामायणम् में एषुत्तच्छन ने भी यही कहा 'नित्यमायुळ्ळोरविद्यासमुद्भववस्तुवायुळ्ळोन्नहंकारमोर्कनी' (अर्थात् अहंकार मिथ्यारूपी अविद्या से जन्म लेता है।)

रामचरितमानस एवं अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में काम क्रोध रहित आचरण पर बल दिया गया है। राम के जीवन से उदाहरण देकर काम-क्रोध रहित आचरण का चित्रण दोनों ग्रंथों में किया गया है। तुलसी तथा एषुत्तच्छन केलिए समाष्टिगत लोककल्याण ही प्रिय रहा है। काम-क्रोध रहित आचरण पर बल देकर तुलसीदास कहते हैं -

'तात तीनि अति प्रबल खल काम क्रोध अरु लोभ।'

अध्यात्मरामायणम् में एषुत्तच्छन ने यों कहा है - 'काम क्रोध लोभ मोहादिकळ् शत्रुक्कळाकुन्नतेन्नुमरिक नी।' (काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि को शत्रु मानकर इन सबका त्याग करना चाहिए) चित्तशुद्धि के साथ-साथ दया, क्षमा, दान आदि का विकास काम-क्रोध जन्य अमंगल को दूर करता है और मंगल की स्थापना करता है। संसार में सुखपूर्ण जीवन बिताने केलिए सहज ज्ञान एवं शाश्वत शांति की ज़रूरत है, इसके अतिरिक्त अत्याशा, क्रोध, वैर, ईर्ष्या आदि का त्याग भी अनिवार्य है। इस प्रकार के अनेक तत्व मानस एवं अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु के महत्व को सिद्ध करते हैं।

भारतीय संस्कृति के आध्यात्मिक स्वरूप के अंतर्गत सत्य, अहिंसा, परोपकार, दया, मर्यादा आदि उदात्त भावों का महत्वपूर्ण स्थान है। समाज में यह भावना जब विकसित होगी, तब मानवता का विकास होगा। सत्य वचन लोकमंगल, का साधक है। आधुनिक युग में रामचरितमानस तथा अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु सही अर्थों में सत्य का 'पथप्रदर्शक है। मानव को मानव बनानेवाले इन तत्वों का उल्लेख इन ग्रन्थों में तुलसी तथा एषुत्तच्छन ने किया है। सत्य ही समस्त सुकृतों की जड है। मानस एवं अध्यात्मरामायणम् में भी इसका प्रतिफलन स्पष्ट दिखाई पडता है। मानस में यों कहा है

'सत्यमूल सब सुकृत सुहाए।'

तुलसी एवं एषुत्तच्छन राम को सत्य की साकार मूर्ति मानते हैं।

अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में भी एषुत्तच्छन ने सत्य की महत्ता इस प्रकार दिखायी है। जैसे

'सत्यत्तेलंघिक्कयिल्लोरुनाळुं ञान्'

यहाँ राम सत्यस्वरूप है। किसी भी काल में सत्य का निषेध नहीं करते।

जीवन में कर्तव्य भावना जागृत करने केलिए, नैतिकता लाने केलिए तुलसी ने रामचरितमानस तथा एषुत्तच्छन ने अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु के द्वारा दिए गए सन्देश अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। यदि समाज, परिवार के अंतर्गत मर्यादा हो तो लडाई मुक्त समाज और आदर्श परिवार का निर्माण होता है। जिस दिन हम अपने को मर्यादित रखेंगे उस दिन समाज ही नहीं पूरे देश और विश्व का वातावरण बदल जाएगा। आज के विशृंखलित वातावरण में शांति के बीज बोने में इन ग्रन्थों का महत्वपूर्ण स्थान है।

तुलसी तथा एषुत्तच्छन का सामाजिक जीवन पर जो प्रभाव पडा, उसका प्रमुख कारण इनकी भक्तिमूलक दृष्टि है। 'भक्ति के बिना मुक्ति नहीं' यह सिद्धांत तुलसी एवं एषुत्तच्छन के समय में बहुत प्रबल था। तुलसी तथा एषुत्तच्छन पहले भक्त और बाद में कवि थे। प्रेम और भक्ति को औजार बनाकर मानव-मानव में एकता लाने का कार्य इन्होंने किया और साथ ही रामचरितमानस एवं अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में मानव जीवन के अधारभूत नैतिक मूल्यों को प्रतिष्ठित करने का कार्य भी इन्होंने किया। इन्होंने यह सिद्ध किया है कि मानव-मानव के बीच में ईश्वर या परमात्मा के ज़रिए प्रेम स्थापित किया जा सकता है। भक्ति के सामने किसी भी प्रकार का भेद-भाव टिक नहीं सकता; यहाँ एकता का भाव प्रबल हो जाता है। तुलसी तथा एषुत्तच्छन ने मानस तथा अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में भक्ति का ज़ोरदार प्रतिपादन तो किया है, साथ ही आराध्य राम को लोकजीवन के बीच उपस्थित कर लोकजीवन की विविध आन्तरिक और बाह्य छवियों का उद्घाटन किया। रामचरितमानस एवं अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में भक्ति अंतरंग की शुद्धता, सदाचार, समानता, निष्काम कर्म, लोकमंगल आदि को उत्पन्न करती है साथ ही इसमें अहंकार शून्यता, विनय, दैन्य, सर्वस्व समर्पण भावना आदि भी देखा जा सकता है, इनसे समाज की भलाई संभव है।

रामचरितमानस एवं अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में भक्ति के प्रेम-प्रवाह में कोल-किरात, भालू, बन्दर, निषाद, शबरी सब शामिल हैं। चित्रकूट में वशिष्ठ और निषादराज के मिलन का प्रकरण भक्ति से उत्पन्न इस अभेदभाव का सुन्दरतम उदाहरण है। दरअसल मानस एवं अध्यात्मरामायणम् के भक्ति भाव में चरम मानवीय निष्ठा और गहरी करुणा के भाव समाहित हैं। इसलिए उन्हें 'रामहु ते अधिक रामभक्त जाना' अर्थात् भक्त को भगवान से भी बडा कहकर तुलसी मनुष्य की महत्ता की ही घोषणा करते हैं। आज के

विशृंखलित वातावरण में मनुष्य को सन्मार्ग की ओर लानेवाला एकमात्र साधन 'भक्ति' है। जिस भक्ति-भावना को अपने जीवन का अभिन्न अंग बनाकर तुलसी तथा एषुत्तच्छन ने अभिव्यंजित किया, उसका तो मूल धरातल लोकजीवन ही है। इस प्रकार तुलसी तथा एषुत्तच्छन की भक्ति की आधारशिला रामकथा बनी और रामकथा की आधारशिला सामाजिक मर्यादा रही। यह सामाजिक मर्यादा तुलसी एवं एषुत्तच्छन की उदात्त कल्पना द्वारा संभव हो सकी, जिसमें एक ओर लोकतत्व और दूसरी ओर वेदतत्व का सहज समन्वय किया गया। इन्होंने अपनी इन रचनाओं के माध्यम से सर्वसामान्य जीवन के महान् आदर्शों को तत्व-चिंतन और भक्ति निरूपण से मिलाकर भारतीय संस्कृति के सर्वांगपूर्ण रूप की प्रतिष्ठा की।

संक्षेप में दोनों ग्रंथों के विशद अध्ययन के बाद यह स्पष्ट होता है कि रामचरितमानस एवं अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु के द्वारा तुलसी तथा एषुत्तच्छन ने जो मार्गनिर्देश दिये हैं, वे हर दृष्टि से अत्यंत मूल्यवान् माने जा सकते हैं। रामकथा के माध्यम से तुलसी एवं एषुत्तच्छन ने तत्कालीन मूल्यरहित समाज को मूल्यों के प्रति जागरूक बनाया। मानवता का उद्धार और लोकमंगल ही तुलसी और एषुत्तच्छन का मुख्य उद्देश्य है। वैयक्तिक एवं सामाजिक प्रगति केलिए जिन-जिन बातों पर मनुष्य को आज ध्यान देना है ये सब इन दोनों ग्रन्थों में बताये गये हैं। इसी दृष्टि से इनकी प्रासंगिकता है। तुलसी तथा एषुत्तच्छन ने सामान्य लोगों की भाषा का प्रयोग करने के साथ ही साथ अनेक लोकप्रचलित मुहावरों, प्रतीकों, बिंबों, अलंकारों आदि का प्रयोग करके अपने संदेशों को जनता केलिए उपयोगी बनाया। सामान्य जन-जीवन से जुडे तथा प्रत्येक व्यक्ति के चारित्रिक गठन में अत्यंत सहायक बुनियादी तत्व इन ग्रन्थों में निहित हैं। भारतीय संस्कृति के चिरकालीन आदर्श-वाक्य, 'सर्वे सुखिनः सन्तु', 'वसुधैव कुटुम्बकम्', आदि का प्रभाव इन ग्रंथों में

देखा जा सकता है। यह तुलसी के शब्दों में 'सुरसरि सम सब कहँ हित होई।' ही कहा जा सकता है।

तुलसी तथा एषुत्तच्छन ने मानस तथा अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में अपनी वाणी से समाज को प्रबोधित किया था जो आज के कंप्यूट्टर-युग में मनुष्य की भौतिक लालसाओं की मर्यादा को सूचित करते हुए मनुष्य को शाश्वत मंगल की चेतना प्रदान करती है। ये दोनों ग्रन्थ आज भी आत्मान्वेषण के, आत्मोद्धार के प्रेरक हैं। परस्पर अलगाव और व्यक्ति की प्रमुखता के परिवेश में दोनों ग्रन्थों के विचार मानवता का सन्देश देते हैं। तुलसी के रामचरितमानस एवं एषुत्तच्छन के अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में काफी समानताएँ हैं। दोनों कवि अतीत के ज्ञाता, वर्तमान के पारखी तथा भविष्य के द्रष्टा थे। दोनों काव्य गहरे लोकानुभवों को चित्रित करनेवाले हैं। मानवता का कल्याण दोनों रचनाओं का उद्देश्य है। गौरवपूर्ण अतीत से प्रेरणा ग्रहण करना, वर्तमान को प्रेरित करना, इन दोनों ग्रंथों का लक्ष्य है। दोनों कवियों ने रामतत्व को आधार मानकर भक्ति को प्रमुखता देकर लोकसंग्रह का कार्य किया। भाषागत एवं स्थानगत भिन्नता के होते हुए भी मूलतः ये दोनों ग्रन्थ एक ही भाव को चित्रित करते हैं।

समानताओं के साथ-साथ इन ग्रंथों में कुछ असमानताएँ भी हैं। तुंचन की अपेक्षा तुलसी का प्रभावक्षेत्र अत्यंत व्यापक है। तुलसी ने संपूर्ण रामचरितमानस सात काण्डों में चार संवादों में वर्णित किया है। एषुत्तच्छन ने छः काण्डों में उमा-महेश्वर संवाद को लेकर चिडिया के माध्यम से कथा कहलवायी है। ग्राम्य समाज का चित्रण एषुत्तच्छन के अध्यात्मरामायणम् में नहीं, बल्कि इसके अंतर्गत वन्य समाज का चित्रण है। तुलसीदास के रामचरितमानस में इन सबका विस्तृत विवरण है। अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु के हर एक काण्ड में दार्शनिक विचार देखे जा सकते हैं। लेकिन मानस में केवल उत्तरकाण्ड

में व्यापक रूप से इनका चित्रण है। राम द्वारा लक्ष्मण का क्रिया-मार्ग उपदेश किया जाता हैं, जिसका विवरण अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में है। लेकिन मानस में नहीं। अनेक लोकतत्वों से भरपूर इन दोनों ग्रंथों की कथा वास्तव में एक ही है। अपने समय में युग पुरुष के रूप में अवतरित होकर तुलसी एवं तुंचन ने अपनी रचनाओं के द्वारा अनेक वर्षों पहले के इस समाज के लोगों को जो उपदेश दिये थे, वे आज के मानव केलिए भी सार्थक रहे हैं।

प्रस्तुत शोध कार्य के परिणाम निम्नलिखित रूप में दिये जा सकते हैं।

1. तुलसीदास का रामचरितमानस जिस प्रकार उत्तर भारत के लोकजीवन को अंकित करने एवं लोकमानस को अभिभूत करने में समर्थ रहा, उसी प्रकार एषुत्तच्छन का अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु भी केरल के लोकजीवन को अंकित करने एवं लोकमानस को अभिभूत करने में समर्थ रहा।

2. उत्तर भारत के लोकगीतों एवं लोकनाट्यों में चित्रित रामकथा रामचरितमानस का मूल स्रोत रही और केरल में प्रचलित लोकगीतों एवं लोकनाट्यों में चित्रित रामकथा एषुत्तच्छन के अध्यात्मरामायण् किळिप्पाट्टु का मुख्य स्रोत रही।

3. तुलसी के रामचरितमानस एवं एषुत्तच्छन के अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में उनके समय के लोकजीवन, सामाजिक मूल्य, मानवीय संबन्ध, प्राकृतिक वातावरण, आदि का सुन्दर चित्रण अंकित किया गया है।

4. रामचरितमानस एवं अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में तत्कालीन ग्राम्य संस्कृति, वन्य संस्कृति, राक्षस संस्कृति, वानर संस्कृति आदि का चित्रण मिलता है।

5. इन दोनों ग्रन्थों में लोकजीवन पर भक्ति के प्रभाव का चित्र विभिन्न रूपों में प्रभावात्मक ढंग से खींचा गया है।

6. लोकजीवन के आधारभूत मानवमूल्यों जैसे सत्य, अहिंसा, परोपकार, त्याग, सहनशीलता, काम-क्रोध-लोभ-अहंकार आदि का वर्णन एवं धार्मिक आचरणों जैसे व्रत, त्योहार, संस्कार, विश्वास आदि का महत्व चित्रित किया गया है।

7 रामचरितमानस एवं अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु में कई लोकतत्व समान रूप से मिलते हैं। फिर भी दोनों में कुछ बातों में अंतर भी पाया जाता है।

8. शिल्प की दृष्टि से देखा जाय तो इन ग्रन्थों में लोकभाषा एवं कई ऐसे छंद, अलंकार, मुहावरे और लोकोक्तियाँ मिलती हैं, जो पूर्ण रूप से लोकजीवन पर आधारित हैं।

9. सोलहवीं शती में उत्तरभारत एवं केरल में रचे गये रामचरितमानस एवं अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु लोकजीवन पर आज भी महान् प्रभाव डालते रहे हैं। इनके विचार इतने अमूल्य हैं कि आज की नयी पीढ़ी केलिए उपयुक्त एवं प्रेरक हैं।

.....📖.....

संदर्भ-ग्रंथ-सूची

मूल ग्रंथ

1. अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु — श्रीरामविलासम् प्रेस
कोल्लम
द्वितीय संस्करण 1955
2. रामचरितमानस — गीता प्रेस
गोरखपुर
बीसवाँ संस्करण सं. 2053

संस्कृत-ग्रंथ

3. कालिदास ग्रंथावली (रघुवंश) — सीताराम चतुर्वेदी
अखिल भारतीय विक्रम परिषद्
काशी
द्वितीय संस्करण सं 2007
4. नीतिशतक (भर्तृहरि) — डॉ. वेंकटराव रायसम् गांधी
दुनिया प्रकाशन
हैदराबाद
प्रथम संस्करण सन् 1964
5. श्रीमद्भगवद्गीता — गीता प्रेस
गोरखपुर
सं 2016
6. अध्यात्मरामायण — गीता प्रेस
गोरखपुर, त्रयोदश संस्करण
सं. 2020

हिन्दी-ग्रंथ

7 अयोध्याकाण्ड का अनुशीलन — हरेन्द्रप्रताप सिन्हा
किसलय प्रकाशन
इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 1980

8. अवधी का लोकसाहित्य — सरोजनी रोहतगी
नेशनल पब्लिशिंग हाउस
दिल्ली, प्रथम संस्करण 1971

9. अशोक के फूल — डॉ. हज़ारीप्रसाद द्विवेदी
लोकभारती प्रकाशन
इलाहाबाद, दूसरा संस्करण 1970

10. आधुनिक हिन्दी कविता में शिल्प — कैलाश वाजपेयी
आत्माराम एण्ड सण्स
दिल्ली, प्रथम संस्करण 1963

11. कम्बरामायण और रामचरितमानस — डॉ. रामेश्वर दयालु अग्रवाल
कल्पना प्रकाशन
मेरठ, प्रथम संस्करण 1973

12. काव्य बिंब — डॉ. नगेन्द्र
नेशनल पब्लिसिंह हाउस, दिल्ली

13. काव्य में वैष्णव व्यक्तित्व — नरेश मेहता
लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद-1973

14. केरल पाणिनीयम् — ए.आर. राजराजवर्मा
पूर्णप्रकाशन, कालिकट
द्वितीय संस्करण 1990

15. खडीबोली का लोक साहित्य — डॉ. सत्यागुप्त
इलाहाबाद 1965

16. गढ़वाली लोकगीत एक संस्कृतिक अध्ययन — गोविन्द चातक
राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली 1968

17 गोस्वामी तुलसीदास — आचार्य रामचन्द्रशुक्ल
नागरी प्रचारणी सभा, काशी-1980

18. गोस्वामी तुलसीदास — डॉ. माताप्रसाद गप्त
हिन्दी परिषद्, प्रयाग 1953

19 चिंतामणि (भाग 1,2) — पं. रामचन्द्र शुक्ल
सरस्वती मन्दिर, काशी
द्वितीय संस्करण

20. तुलसी आधुनिक वातायन से — डॉ. रमेशकुंतल मेघ
भारतीय ज्ञानपीठ, वारणासी-1967

21. तुलसी और तुंचन — रामचन्द्र देव
कावेरि प्रकाशन
नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-1969

22. तुलसीदास और उनका युग	डॉ. राजपति दीक्षित ज्ञानमण्डल लिमिटेड, बनारस संस्करण-सं-2001
23. तुलसीदास और उनका काव्य	डॉ. रामनरेश त्रिपाठी राजपाल एण्ड सण्स दिल्ली 1953
24. तुलसीदास और युगीन संदर्भ	डॉ. भगीरथ मिश्र साहित्य भवन निमिटेड इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 1980
25. तुलसी का मानस	डॉ. मुंशीराम शर्मा ग्रंथम प्रकाशन कानपुर
27 तुलसी काव्यमणि	डॉ. नरेन्द्रकुमार शर्मा उमेश, दिल्ली 1978
28. तुलसी का प्रतिपक्ष	डॉ. युगेश्वर हिन्दी प्रचारक संस्थान वारणासी, प्रथम संस्करण-1982
29 तुलसी काव्य-मीमांसा	डॉ. उदयभानुसिंह राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली-1963
30. तुलसी काव्य की लोकतात्विक संरचना	डॉ. गयासिंह संजय प्रकाशन, वारणासी
31 तुलसी काव्य में प्रकृति, भूगोल तथा खगोल	डॉ. जनक खन्ना सूर्यभारती प्रकाशन दिल्ली, प्रथमसंस्करण 1998
32. तुलसी काव्य नये-पुराने संदर्भ	डॉ. रामबाबू शर्मा वाणी प्रकाशन, दिल्ली प्रथम संस्करण 1984
33. तुलसीदास की भाषा	डॉ. देवकीनन्दन श्रीवास्तव लखनाउ विश्वविद्यालय, सं-2014
34. तुलसीदास की कारयत्री प्रतिभा का अध्ययन	डॉ. श्रीधर सिंह हिन्दी प्रचारक, वारणासी-1968
35. तुलसीदास के काव्य में नैतिक मूल्य	डॉ. चरणदास शर्मा (शास्त्री) भारतीय ग्रंथ निकेतन, दिल्ली प्रथम प्रकाशन 1971

36. तुलसी ग्रंथावली — सं. माताप्रसाद गुप्त, हिन्दुस्तानी अकादमी, प्रयाग

37 तुलसी ग्रंथावली (दूसरा खण्ड) — नागरी प्रचारणी सभा, काशी 1947

38. तुलसी ग्रंथावली (तीसरा खण्ड) — रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारणी सभा, काशी, सं. 2033

39. तुलसी पूर्व राम साहित्य — डॉ. अमरपाल सिंह, रचना प्रकाशन, इलाहाबाद-1998

40. तुलसी रसायन — डॉ. भगीरथ मिश्र, साहित्य भवन लिमिटेड, इलाहाबाद 1966

41. तुलसी संदर्भ और दृष्टि — डॉ. केशवप्रसाद सिंह, हिन्दी प्रचारक संस्थान, वारणासी

42. तुलसी साहित्य बदलते प्रतिमान — चन्द्रभान रावत, जवाहर पुस्तकालय, मथुरा, प्रथम संस्करण 1971

43. तुलसी साहित्य के सर्वोत्तम अंश — डॉ. रामप्रसाद मिश्र, जीवन ज्योति, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-1988

44. तुलसीदास साहित्य और दायित्व दर्शन — डॉ. सीताराम झा 'श्याम', ताराश्याम, पटना, सं. 2000

45. तुलसी साहित्य में बिंब योजना — डॉ. सुशील शर्मा, कोणार्क प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1972

46. पद्मावत का लोकतात्विक अध्ययन — डॉ. नृपेन्द्र प्रसाद वर्मा, अनुपम प्रकाशन, पटना, प्रथम संस्करण 1979

47 प्रकृति और हिन्दी काव्य — डॉ. रघुवंश, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली सं 2017

48. पृथ्विराजरासो में कथानक रूढियाँ — डॉ. ब्रजविलास श्रीवास्तव, बम्बई 1995

49. ब्रज लोकसाहित्य का अध्ययन — डॉ. सत्येन्द्र, आगरा 1949

50. भक्तिकाव्य और लोकजीवन	शिवकुमार मिश्र पिपुल्स लिटेरसी, दिल्ली प्रथम संस्करण
51. भक्तिकाव्य का समाजदर्शन	प्रेमशंकर वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-2000
52. भक्तिकाव्य का अंतर्दर्शन	डॉ वेंकट शर्मा पल्लव प्रकाशन, दिल्ली
53. भक्ति आन्दोलन और लोकसंस्कृति	कुंवरपालसिंह
54. भक्तिकालीन काव्य में नारी	डॉ. गजनन शर्मा रचना प्रकाशन इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 1972
55. भारतीय लोकसाहित्य	डॉ. श्याम परमार राजकमल प्रकाशन, बम्बई-1954
56. भारत में लोकसाहित्य	डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय साहित्य भवन, इलाहाबाद 1978
57 भारतीय जीवन मूल्य	कामिनी कामायनी ज्ञान गंगा, दिल्ली 2001
58. भारतीय सांस्कृतिक प्रतीककोश	शोभानाथ पाठक प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली 2001
59 भारतीय वाङ्मय में सीता का स्वरूप	डॉ. कृष्णदत्त अवस्थी प्रतिभा प्रकाशन, इलाहाबाद प्रथम संस्करण 1974
60. भारतेन्दुयुगीन हिन्दी काव्य में लोकतत्व	डॉ. विमलेश कान्ति दिग्दर्शनचरण जैन दिल्ली, प्रथम संस्करण 1974
61 भाषा का लोकपक्ष	डॉ. रामस्वार्थ ठाकुर नवचेतन प्रकाशन, दिल्ली, सं. 2003
62. भोजपुरी लोकसाहित्य का अध्ययन	कृष्णदेव उपाध्यायन भारतीय लोकसाहित्य, इलाहाबाद
63. मध्यकालीन धर्म-साधना	डॉ. हज़ारीप्रसाद द्विवेदी साहित्य भवन, इलाहाबाद 1952

64. मध्ययुगीन वैष्णव संस्कृति और तुलसीदास — रामरतन भटनागर, हिन्दी साहित्य संसार, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1962

65. मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का लोकतात्विक अध्ययन — डॉ. सत्येन्द्र, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, प्रथम संस्करण 1960

66. मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य में नारी भावना - डॉ. उषा पाण्डेय, हिन्दी साहित्य संसार, दिल्ली

67 महाभारतकालीन समाज — सुखमय भट्टाचार्य, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, प्रथमसंस्करण 1966

68. मानस पंचामृत — विष्णु त्रिपाठी, मानस चतुर्थ शताब्दी समारोह समिति कानपुर, सं. 2030

69. मानस पीयूष — श्री अंजनीनन्दन शरण, गीताप्रेस, गोरखपुर, सं. 2017

70. मानस मंथन — डॉ. स्वामिनाथ शर्मा, अशुतोष प्रकाशन, वारणासी-1966

71. रामकथा (उत्पत्ति और विकास) — रेवरेंड फादर कामिल बुल्के, हिन्दी परिषद् प्रकाशन, प्रयाग, द्वितीय संस्करण 1962

72. रामकथा और तुलसी — डॉ. भ.ह. राजूरकर, पुस्तक संस्थान, कानपुर 1974

73. रामकथा विविध आयाम — डॉ. रमानाथ त्रिपाठी, अभिनन्दन समिति, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1987

74. रामकथा के नारी पात्र — डॉ. आशा भारती, शारदा प्रकाशन, नई दिल्ली

75. रामकाव्य परंपरा का विकास और प्रभाव — डॉ. आशाभारती, शारदा प्रकाशन, प्रथम संस्करण 1984

76. रामचरितमानस का काव्यशास्त्रीय अनुशीलन — डॉ. राजकुमार पाण्डेय, अनुसन्धान प्रकाशन, कानपुर-1963

77 रामचरितमानस की काव्यभाषा	डॉ. रामदेव प्रसाद वि.भू. प्रकाशन, साहिबाबाद प्रथम संस्करण 1978
78. रामचरितमानस की लोकप्रियता का विवेचनात्मक अध्ययन	रामचरित्रसिंह इन्दु प्रकाशन, प्रतापगढ 1984
79. रामचरितमानस तुलनात्मक अध्ययन	डॉ. नगेन्द्र राधाकृष्णप्रकाशन, दिल्ली प्रथम संस्करण 1974
80. रामचरितमानस में अलंकार योजना	डॉ. वचनदेव कुमार हिन्दी साहित्य संसार, पटन प्रथम संस्करण 1971
81. रामचरितमानस में लोकवार्ता	चन्द्रभान आगरा 1955
82. रामचरितमानस में जीवन मूल्य	अमितारानी सिंह जयभारती प्रकाशन, इलाहाबाद प्रथम संस्करण 1993
83. रामचरितमानस विविध सन्दर्भ	मुकुंदलाल मुंशी नवोदय सेल्स, दिल्ली प्रथम संस्करण 1993
84. रामचरितमानस साहित्यिक मूल्यांकन	सुधाकर पाण्डेय राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली 1972
85. लोक और लोक का स्वर	विद्यानिवास मिश्र प्रभात प्रकाशन, दिल्ली 2000
86. लोककवि तुलसी	सरला शुक्ल हिमांशु प्रकाशन, लखनऊ 1977
87 लोककवि अहबदबख्श और उनकी रामायण	डॉ. कृष्णचन्द रल्हान सूर्यभारती प्रकाशन प्रथम संस्करण 1993
88. लोककथा विज्ञान	श्रीचन्द्र जैन मंगल प्रकाशन, जयपुर 1977

89 लोकगीतों में समाज — पूर्णिमा श्रीवास्तव
मंगल प्रकाशन, जयपुर 1991

90. लोकचेतना और हिन्दी कविता — डॉ. हरिशर्मा
निर्मल प्रकाशन, दिल्ली
प्रथम संस्करण 1997

91. लोकजीवन और साहित्य — डॉ. रामविलास शर्मा
विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा
प्रथम संस्करण 1955

92. लोकधर्मी नाट्य परंपरा — आचार्य श्याम परमार
हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय
वारणासी, प्रथम संस्करण

93. लोकवादी तुलसीदास — विश्वनाथ प्रसाद त्रिपाठी
राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली
द्वितीय संस्करण 1991

94. लोकसंस्कृति — वसन्त निर्गुणे
हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल
तृतीय संस्करण 1997

95. लेकसंस्कृति की रूपरेखा — डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय
लोकभारती प्रकाशन, 1988

96. लोकसाहित्य और संस्कृति — दिनेश्वर प्रसाद
जयभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
द्वितीय संस्करण 1989

97 लोकसाहित्य के प्रतिमान — डॉ. कुन्दनलाल उप्रेती
भारत प्रकाशन मन्दिर
अलीगढ़ 1971

98. वाल्मीकि रामायण और रामचरितमानस : सौन्दर्यविधान का तुलनात्मक अध्ययन — डॉ. जगदीश शर्मा
भारतीय शोध संस्थान
गांधी शिक्षण समिति, गुलाबपुरा
प्रथम संस्करण 1969

99. सनातन रामवृत्त और गोस्वामी तुलसीदास — डॉ. लक्ष्मी नारायण
चिंता प्रकाशन, दिल्ली
प्रथम संस्करण 1987

100. समकालीन साहित्य चिन्तन — रामदरश मिश्र
प्रभात प्रकाशन, दिल्ली
प्रथम संस्करण 1986

101. समाज और संस्कृति — डॉ. सावित्री चन्द्रशोभा
नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली
प्रथम संस्करण 1976

102. सूर काव्य में लोकदृष्टि का विश्लेषण - डॉ. मीरा गौतम
निर्मल प्रकाशन, दिल्ली
प्रथम संस्करण 2000

103. सूर साहित्य में लोकसंस्कृति — आद्याप्रसाद त्रिपाठी
हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
प्रथम संस्करण 1967

104. हिन्दी उपन्यासों में लोकतत्व — डॉ. इन्दिरा जोशी

105 हिन्दी काव्य में युद्धवर्णन वैशिष्ट्य — डॉ. मदनलाल वर्मा
कुमार प्रकाशन, नई दिल्ली
प्रथम संस्करण 1979

106. हिन्दी भक्ति साहित्य में लोकतत्व — डॉ. रवीन्द्र भ्रमर
भारती साहित्य मन्दिर, दिल्ली-1965

107 हिन्दी सगुण काव्य की सांस्कृतिक भूमिका — रामनरेश वर्मा
नागरी प्रचारिणी सभा
काशी,. सं 2020

108. हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास (षोडश भाग) — राहुल सांकृत्यायन
नागरी प्रचारणी सभा, काशी-1960

मलयालम-ग्रन्थ

109 अवगाहनम् (निरूपणं) — एम. वी.पी. नंपूतिरि
पूर्ण प्रकाश, कालिकट
प्रथम संस्करण 1992

110. अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु तुञ्चत्तेषुत्तच्छन — संशो वि.एस. चन्द्रशेखर वारियर
डी.सी. बुक्स, कोट्टयम
दसवाँ संस्करण 1996

111. अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु तुञ्चत्तेषुत्तच्छन — एस.सी. प्रकाशन
बारहवाँ संस्करण 1992

112. अध्यात्मरामायणम् (वृत्तानवृत्त परिभाषा)	कप्रश्शेरि अप्पुण्णि कैमळ् नेशनल बुक्स स्टॉल, कोट्टयम प्रथम संस्करण 1978
113. अध्यात्मरामायणम् ओरु पठनं	डॉ. के.आर.सी. पिल्लै श्रीवर्धनं प्रकाशन 1982
114. अय्यप्पिल्लि आशान्टे रामकथप्पाट्टु	डॉ. के. नारायणपिल्लै नेशनल बुक्स स्टॉल, कोट्टयम
115. आधुनिक मलयालम साहित्य	पी.के. परमेश्वरन् नायर केरल साहित्य अकादमी प्रकाशन तृशूर तृतीय संस्करण 1991
116. आशान् कवितयुं मट्टुं	करिम्पुष़ा रामकृष्णन् करिम्पुष़ा रामन् मेम्मोरियल् प्रकाशन कालिकट 1983
117 इन्नत्ते साहित्यकारन्मार्	सी.वी. श्रीधरन साहित्यवेदी, कोट्टयम प्रथम संस्करण 1969
118. ईश्वरन्टे यक्षिक्क्कथा	एम. षण्मुखदास साहित्य प्रवर्तक सहकरण संघं-1992
119. उषःपूजा	षोरणूर कार्तिकेयन नेशनल वुक्स स्टॉल, कोट्टयम
120. एषुत्तच्छन्टे रामायणम् ओरु पठनं	मुखत्तला गोपालकृष्णन् नायर मोर्डण वुक्स, कोट्टयम प्रथम संस्करण 1965
121. एषुत्तच्छन्टे कविता (ओरु पठनं)	पाला गोपालन् नायर प्रथम संस्करण 1957
122. एषुत्तच्छनुं हरिनामकीर्त्तनवुं	एम.के. रामकृष्णन् सहृदय सख्यम, प्रथम संस्करण 1977
123. एषुत्तच्छन्टे कला चिल व्यास भारत पठनङ्ङळुं	पी.के. वालकृष्णन नवधारा प्रकाशन 1982
124. एषुत्तच्छन मुंपुं पिंपुं	सी.के. चन्द्रशेखरन् नायर साहित्य प्रवर्तक सहकरण संघं कोट्टयं

125. एषुत्तच्छन्टे रत्नङ्ङळ्	श्रीराम ग्रंथावली केरल साहत्य अकादमी द्वितीय संस्करण 1960
126. एषुत्तच्छनु ओरु अवतारिका	प्रो. पी. कुञ्ञिकृष्ण मेनोन नेशनल बुक्स स्टॉल, कोट्टयं
127 एषुत्तच्छन्टे रामायणवुं मट्टु रामायणङ्ङळुं	एन. मुकुन्दन साहित्य प्रवर्तक सहकरण संघ नेशनल बुक्स स्टॉल, कोट्टयं प्रथम संस्करण 1971
128. कण्णश्शन्मारुं एषुत्तच्छनुं	आर.इ. नारायणपिल्लै वी.वी. बुक डिप्पो प्रथम संस्करण सं. 1112
129 काव्यपथङ्ङळ् (साहित्य विमर्शनङ्ङळ्)	डॉ तोन्नक्कल नारायणन् नेशनल बुक्स स्टॉल, कोट्टयं-2000
130. कुट्टनाटिन्टे तनिमयुं पाट्टुकळुं	कावालं विश्वनाथक्कुरुप्पु केरल साहित्य अकादमी, तृश्शूर प्रथम संस्करण 1989
131. केरल चरित्रम्	एम. श्रीधर मेनोन् साहित्य प्रवर्तक सहकरण संघं कोट्टयं, द्वितीय संस्करण 1993
132. केरल चरित्रम्	राघववारियर, राजन गुरुक्कळ् वळ्ळत्तोळ् विद्यापीठं, सुकपुरम् द्वितीय संस्करण 1992
133. कैरलीसाहित्य चरित्रम् (वाल्यम-7)	उल्लूर एस. परमेश्वर अय्यर केरल विश्वविद्यालय द्वितीय संस्करण 1967
134. किळिप्पाट्टु	डॉ एन. मुकुन्दन केरल भाषा संस्था, तिरुवनन्तपुरम् तृतीय संस्करण 1998
135. तुञ्चत्तेषुत्तच्छन	संशो. पी. करुणाकरन् नायर डी.सी. बुक्स, कोट्टयं द्वितीय संस्करण 1985

136. तुञ्चत्ताचार्यन् — पी.के. परमेश्वर अय्यर, वी.पी. बुक्स डिप्पो, तिरुवनन्तपुरं

137 तुञ्चन प्रबन्धङ्ङळ् — संशो. एस. गुप्तन् नायर, साहित्य अकादमीस, तृश्शूर, प्रथम संस्करण 1985

138. तेरञ्ञेटुत्त प्रबन्धङ्ङळ् — के.एन. एषुत्तच्छन, केरल साहित्य अकादमी, तृश्शूर, संस्करण 1990

139. तोट्टुं पाट्टुकळ् (ओरु पठनं) — डॉ एम. विष्णु नम्पूतिरि, प्रथम संस्करण 1990

140. नाडन् पाट्टुकळ् — वेट्टियार प्रेंनाथ, केरल साहित्य अक्कादमी, तृश्शूर, प्रथम संस्करण 1979

141. नाडोडि पारंपर्यम् (तुञ्चन्टेयुं कुञ्चन्टेयुं कृतिकळिल्) — शशिधरन क्लारी, पाप्पियोण, कालिक्कट, प्रथम संस्करण 2002

142. पञ्चाननन्टे विमर्शनत्रयम् — साहित्य पञ्चांननन् पी.के. नारायणपिल्लै, केरल साहित्य अकादमी, तृश्शूर 1986

143. पद्य साहित्य चरित्रं — टी.एम. चुम्मार, नेशनल बुक्स स्टॉल, कोट्टयं, पाँचवाँ संस्करण 1973

144. पाट्टुकळ् — राघवन पिल्लै, केरल विश्वविद्यालयं

145. पाट्टु कवितकळुडे सामूहिक प्रसक्ति — संशो सुकुमार अषीक्कोड, सी. राधाकृष्णन, केरल भाषा समिति 1994

146. पूरक्कळि — डॉ. एम. विष्णु नंपूतिरि, करन्ट बुक्स, कोट्टयम्, प्रथण संस्करण 1998

147 फ़ोकलोर पठनङ्ङळ् — पी.के. शिवशंकरपिल्लै, केरल भाषा समिति, तिरुवनन्तपुरम, प्रथम संस्करण 1997

148. फ़ोकलोर वषि़युं पोरुळुं — एम.के. संतोष
संस्कृति प्रकाशन, कण्णूर
प्रथम संस्करण 1998

149. भारतीय साहित्य समीक्षा — डॉ. के.एम. जार्ज
केरल भाषा समिति, तिरुवनन्तपुरम
प्रथम संस्करण 1994

150. भारतीय साहित्य शिल्पिकळ् (एषुत्तच्छन) — के. राघवपिल्लै
साहित्य अकादमी, तृश्शूर
प्रथम संस्करण 1997

151. मध्यकाल मलयाळ कविता — अय्यप्पपणिक्कर
नेशनल बुक् ट्रस्ट, इन्डिया-1998

152. मलयाळ कविता साहित्य चरित्रम् — डॉ. एम. लीलावती
केरल साहित्य अकादमी, तृश्शूर
प्रथम संस्करण 1991

153. मलयाळ साहित्य नायकन्मार् (एषुत्तच्छन) — ओ.एन.वी. कुरुप्प
केरल विश्वविद्यालय, तिरुवनन्तपुरम
प्रथम संस्करण 1993

154. मारारुं मलयाळ साहित्यवुं सिंपोसियम्) — कुट्टिकृष्ण मारार
साहित्य प्रवर्त्तक सहकरण संघं
कोट्टयं, प्रथम संस्करण 1963

155. मून्नु भाषा कविकळ् — नारायणपिल्लै
साहित्य परिषत्, एरणाकुलम
प्रथम संस्करण 1958

156. राजाङ्गणं — कुट्टिकृष्णमारार
मारार साहित्य प्रकाशन, कालिकट
आठवाँ संस्करण 1989

157 रामकथा मलयाळत्तिल् (पठनं) — सी.के. मूस्सत्
केरल साहत्य अकादमी, तृश्शूर

158. रामानुजन् एषुत्तच्छन — आर. ईश्वरपिल्लै
कृष्णन नायर् पुस्तकालय
चेर्तला, संस्करण-सं 1090

159. वडक्कन् पाट्टुकळुडे पणियाला	एम.आर. राघव वारियर वल्लत्तोल् विद्यापीठम् एडप्पाल्, प्रथम संस्करण 1996
160. श्री रामानुजन एषुत्तच्छन	आर. नारायण पणिक्कर वी.वी. बुक्स स्टॉल तिरुवनन्तपुरम 1955
161. साहित्य चरित्रं प्रस्थानङ्ङळिलूडे	सं. डॉ. के.एम. जार्ज नेशनल बुक्स स्टॉल कोट्टयं 1973

अंग्रेज़ी ग्रन्थ

162 An Outline of Indian Folklore	Durgabhagavath Published - 1956
163. Critical Approach to Literature-	David Dauches Lodman's green and Company Limited - 1961
164. Ezhuttachan and His Age	Dr. Achutha Menon, Chelanath Madras University Madras - 1940
165. Imagery in Tulasidas	Nandalal Tulasidas Riliance Publishing House New Delhi, Ist Published - 1997
166. Makers of Indian Literature Ezhuttachan	K. Raghavan Pillai Sahitya Academi Publications Ist Edition - 1986
167. Society - An Introductory Analysis	K.M. Maciver & Charles
168. Sociology	Lapier
169. The Cultural Heritage of India - (Vol II)	Swami Akunthananda The Ramakrishna Mission Institute of Culture, Culcutta IInd Edition - 1962.
170. The Popular Religion and Folklore of Northern India (Part I)	William Crook IInd Edition - 1896

पत्र पत्रिकाएँ

1.	आजकल (मासिक)	नवंबर 1951
2.	कल्याण (मासिक)	दिसंबर 1968
3.	केरल भारती	फरवरी 1963
4.	गगनाञ्चल (त्रैमासिक)	जनवरी-मार्च 2002
5.	छत्तीसगढ़ टुडे (त्रैमासिक)	सितंबर अक्तूबर 2002
6.	जनपद	अक्तूबर 1952
7	ज्योत्सना	अगस्त 1988
8.	दस्तावेज़ 80 (तुलसीदास अंक)	सं. विश्वनाथ प्रसाद त्रिपाठी
9	नवभारत टाइम्स (दैनिक)	अगस्त 1, 2002
10.	परंपरा (त्रैमासिक)	लोकगीत अंक
11	भाषा (त्रैमासिक)	दिसंबर 1999
12.	माध्यम (त्रैमासिक)	अप्रैल-जून 2003
13.	मानस चन्दन (त्रैमासिक)	अक्तूबर-दिसंबर 2001
14.	वागर्थ (मासिक)	मार्च 2003
15.	संग्रथन (मासिक)	जनवरी 2005
16.	समीक्षा (त्रैमासिक)	अक्तूबर-दिसंबर 1994
17	सरस्वती (प्राचीनतम हिन्दी मासिक पत्रिका)	जनवरी 1974
18.	साहित्य अमृत (मासिक)	अगस्त 2000, जुलाई 2000, दिसंबर 2002, अक्तूबर 2004
19.	भाषापोषिणी (मासिक)	अगस्त 2002, दिसंबर 2002
20.	अक्षर कळरी (मासिक)	नवंबर 2002
21	भाषा साहिती (त्रैमासिक)	दिसंबर 1983
22.	मातृभूमि (साप्ताहिक)	सितंबर 1997, अक्तूबर 2002

कोश-ग्रन्थ

1.	अलंकार कोश	ब्रह्ममित्र अवस्थी **इन्दु प्रकाशन, दिल्ली** द्वितीय संस्करण 1989
2.	अवधी कोश	रामाज्ञा द्विवेदी समीर हिन्दुस्थानी अकादमी, उत्तरप्रदेश
3.	इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका (भाग 1)	ग्रिम
4.	इनसाइक्लोपीडिया ऑफ रिलीज़न-एण्ड एथिक्स (वा.6)	जेयम्स हास्टिंग्स 1951
5.	डिक्शनरी ऑफ वेल्ड लिटररी टेम्स	टी. शिप्ले लंदन, 1955
6.	तुलसी शब्द कोश	आचार्य बच्चुलाल अवस्थी बुक्स एन बुक्स, दिल्ली प्रथम संस्करण 1991
7.	तुलसी शब्द सागर	डॉ. हरगोविन्द तिवारी **हिन्दुस्थानी अकादमी**, **इलाहाबाद** 1954
8.	पुराणकोश (वा.1)	वेट्टं माणी गुरुनाथ बुक्स स्टॉल द्वितीय संस्करण 1968
9.	मलयाळम-अंग्रेज़ी-हिन्दी कोश	वी. रामकुमार सिसो बुक्स, तिरुवनन्तपुरम पाँचवाँ संस्करण
10.	संस्कृत-हिन्दी कोश	आप्टे
11.	हिन्दी साहित्य-कोश	डॉ. धीरेन्द्रवर्मा प्रयाग विश्वविद्यालय 1958